उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जनवरी-मार्च, 2016

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** हरनाम सिंह	1
कुमारी तोषना गौड़ और अन्य **बनाम** प्रेम प्रकाश और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 105)	
कुमारी शिवांगनी गौड़ **बनाम** प्रेम प्रकाश और अन्य	105
दि ओरियंटल इंश्योरेंस कं. लि. **बनाम** कुमारी तोषना गौड़ और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 105)	
धमेश्वर **बनाम** गीश पति और अन्य	125
नितेश गौड़ **बनाम** प्रेम प्रकाश और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 105)	
पी. सुन्दर राज **बनाम** पी. सारिका राज	34
प्रवीण टंक (श्रीमती) **बनाम** अरविन्द कुमार टंक	81
राज रानी (श्रीमती) **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य	134
लक्ष्मीधर साहू **बनाम** बतक्रुश्ना साहू	18
शिवचरण लाल शर्मा **बनाम** इलाहाबाद बैंक	10
सनफ्लैग आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड, नागपुर **बनाम** राज्य सूचना आयोग, नागपुर और अन्य	71

संसद् के अधिनियम

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 30

जनवरी-मार्च, 2016 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
कमला कांत

महत्वपूर्ण निर्णय

हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (1956 का 32) – धारा 8 [सपठित हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 15, 16] – अवयस्क का सांपत्तिक अधिकार – संयुक्त परिवार संपत्ति में अवयस्क का अधिकार – संयुक्त परिवार संपत्ति के मामले में अवयस्क के अविभाजित भाग के बाबत उसका नैसर्गिक संरक्षक (पिता या माता) कार्यवाही कर सकता है ।

लक्ष्मीधर साहू बनाम **बतक्रुश्ना साहू** 18

संसद् के अधिनियम

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (30)

पृष्ठ संख्या 1 – 151 **(2016) 1 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – जनवरी-मार्च, 2016 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 1 – 151)

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. एन. आर. बट्टू, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री जुगल किशोर,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान भवन

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री अविनाश शुक्ला, असलम खान, पुण्डरीक शर्मा और जगमाल सिंह

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2016 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 7 [सपठित हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख] – कुटुम्ब न्यायालय कुटुम्ब से संबंधित विवादों पर विचार करते समय ऐसा दृष्टिकोण अपनाएगा जो सामान्य न्यायालयों द्वारा अंगीकृत किए जाने वाले दृष्टिकोण से पूर्णतया भिन्न होगा और उनको विचारण आरंभ करने के पूर्व कुटुम्ब विवाद के शांतिपूर्ण निपटारे के लिए युक्तिसंगत प्रयास करने होंगे, कुटुम्ब न्यायालय का प्राथमिक उद्देश्य वैवाहिक और कुटुम्ब विवादों से संबंधित मामलों के न्यायिक न्यायनिर्णयन के बजाय सुलह और शांतिपूर्ण निपटारे को प्रोन्नत करना है, कुटुम्ब न्यायालय सीमित अधिकारिता वाला अधिकरण होता है जिसको धारा 7(1) और उसके स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट कार्यवाहियों के न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होती हैं और न्यायिक शक्ति के प्रयोजनार्थ यह सिविल अधिकारिता के न्यायालयों के सामान्य पदानुक्रम का भाग होता है ।

पी. सुन्दर राज बनाम **पी. सारिका राज** 34

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26)

– धारा 34 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5] – माध्यस्थम् पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन – जहां अधिनियम में अपील की परिसीमा अवधि के प्रयोजनार्थ 60 दिनों की विशेष परिसीमा विहित की है तो 60 दिनों की गणना परिसीमा अधिनियम की धारा 45 और 12 की सहायता लेते हुए की जाएगी – इन धाराओं को विनिर्दिष्ट रूप से सम्मिलित किए जाने का अर्थ यह है कि उस सीमा तक केवल परिसीमा अधिनियम के उपबंध अपवर्जित

पृष्ठ संख्या

रहेंगे और अन्य उपबंधों की प्रयोज्यता आवश्यक विवक्षा द्वारा अपवर्जित रहेगी ।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **हरनाम सिंह** 1

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 173 – यान दुर्घटना – क्षतिपूर्ति – दावेदार की प्रास्थिति – आयु – आय के स्रोत – आश्रितों की संख्या – यदि न्यायालय द्वारा उपर्युक्त बातों के साथ ही अन्य सम्यक् बातों पर विचार करते हुए, युक्तियुक्त और संगत क्षतिपूर्ति अभिनिर्धारित की जाती है तो ऐसे आदेश में तब तक हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं होता है जब तक कि संदत्त क्षतिपूर्ति के बारे में, पीड़ित पक्षकार के साथ घोर अन्याय होना या अन्यायोचितता साबित नहीं कर दी जाती है ।

कुमारी शिवांगनी गौड़ बनाम **प्रेम प्रकाश और अन्य** 105

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और वित्तीय हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54)

– धारा 14(1)(क) – प्रतिभूत लेनदार द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा प्राप्त किया जाना – जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट प्रतिभूत लेनदार को प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा दिलाने में सहायता प्रदान करने के लिए सशक्त हैं – धारा 14(1)(क) के परंतुक की आज्ञा है कि प्रतिभूत लेनदार द्वारा प्रतिभूत आस्ति का कब्जा प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन के साथ शपथपत्र भी फाइल किया जाएगा ।

शिवचरण लाल शर्मा बनाम **इलाहाबाद बैंक** 10

– धारा 14(1)(क) – प्रतिभूत लेनदार द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा प्राप्त किया जाना – जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट उनके अधीनस्थ किसी अधिकारी

पृष्ठ संख्या

को प्रतिभूत आस्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा लेने और उन आस्तियों और दस्तावेजों को प्रतिभूत लेनदार को उपलब्ध कराए जाने के लिए प्राधिकृत कर सकता है ।

शिवचरण लाल शर्मा बनाम **इलाहाबाद बैंक** 10

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 100 [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 59 और 63 तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 67 और 68] – द्वितीय अपील – विल निष्पादित होना – विल का असम्यक् प्रभाव, मिथ्या व्यपदेशन और प्रपीड़न के आधार पर चुनौती देना – विल को प्रेम और स्नेह के वशीभूत होकर निष्पादित करना – विलकर्ता का विल करते समय स्वस्थचित्त और विवेकशील होना – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि विलकर्ता, विल निष्पादित करते समय पूर्णरूपेण सक्षम, स्वस्थचित्त और विवेकशील था तथा उसने प्रेम और स्नेहवश विल निष्पादित किया था तो ऐसे विल को असम्यक् प्रभाव, मिथ्या व्यपदेशन और प्रपीड़न के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है और ऐसा विल युक्तियुक्त और विधिमान्य होगा ।

धमेश्वर बनाम **गीश पति और अन्य** 125

– धारा 100 [सपठित संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 69 और हिमाचल प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 की धारा 3] – द्वितीय अपील – ऋण – ऋण के एवज में प्रश्नगत भूमि के एक भाग को बंधक में रखना – ऋण की वापसी करने में असफल रहना – बंधक भूमि के बजाय सम्पूर्ण प्रश्नगत भूमि का ऋण की वसूली करने के लिए विक्रय करना – अवैध, अकृत और मनमाना अभिनिर्धारित करना – यदि ऋण

पृष्ठ संख्या

की वसूली में बंधक भूमि के अतिरिक्त भूमि का विक्रय किया जाता है तो यह अवैध, अकृत और मनमाना होगा क्योंकि बंधक भूमि से अधिक भूमि का विक्रय तभी किया जा सकता है जब अभिलेख पर यह दर्शित कर दिया जाता है कि सम्पूर्ण ऋण की वसूली मात्र बंधक भूमि से नहीं हो सकती है ।

राज रानी (श्रीमती) बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 134

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22)

– धारा 8(1)(क)(घ) और (ङ) और धारा 11(3) [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 74] – ईप्सित सूचना का याची (तृतीय पक्ष) से संबंधित होना – याची द्वारा ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने का विरोध इस आधार पर किया जाना कि सूचना उससे अनन्य रूप से संबंधित है और गोपनीय प्रकृति की है – यदि ईप्सित सूचना किसी लोक दस्तावेज से संबंधित है और उस लोक दस्तावेज में समाविष्ट सूचना गोपनीय व्यापार या वाणिज्यिक की परिधि के अंतर्गत नहीं आती तो ऐसे दस्तावेज में समाविष्ट सूचना उपलब्ध कराई जा सकती है ।

सनफ्लैग आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड, नागपुर बनाम **राज्य सूचना आयोग, नागपुर और अन्य** 71

– धारा 19(4) – अपील – तृतीय पक्ष, जिससे सूचना संबंधित है, को सुने बिना राज्य सूचना आयोग द्वारा अपील का निस्तारण – धारा 19(4) राज्य सूचना आयोग पर यह बाध्यता अधिरोपित करती है कि उस पक्ष को, जिससे सूचना संबंधित है को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए और उसकी आपत्तियों पर विचार किया

पृष्ठ संख्या

जाना चाहिए ।

सनफ्लैग आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड, नागपुर बनाम **राज्य सूचना आयोग, नागपुर और अन्य** 71

हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (1956 का 32)

– धारा 8 [सपठित हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 15, 16] – अवयस्क का सांपत्तिक अधिकार – संयुक्त परिवार संपत्ति में अवयस्क का अधिकार – संयुक्त परिवार संपत्ति के मामले में अवयस्क के अविभाजित भाग के बाबत उसका नैसर्गिक संरक्षक (पिता या माता) कार्यवाही कर सकता है ।

लक्ष्मीधर साहू बनाम **बतक्रुश्ना साहू** 18

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30)

– धारा 15, 16 [सपठित हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 8] – निर्वसीयत मरने वाली हिन्दू नारी की संपत्ति का उत्तराधिकार – निर्वसीयत मरने वाली हिन्दू नारी की संपत्ति जिसको उसने अपने पिता-माता से विरासत में प्राप्त किया, का उत्तराधिकार उसके पुत्र, पुत्री (पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के बच्चों को सम्मिलित करते हुए) और उसके पति को एक साथ न्यागत होगा – यदि संपत्ति अविभाजित है तो उत्तराधिकार में प्राप्त करने वाले पक्ष उसका अंतरण तब तक नहीं कर सकेंगे जब तक कि संपत्ति का विभाजन न हो जाए ।

लक्ष्मीधर साहू बनाम **बतक्रुश्ना साहू** 18

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13ख – पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद – विवाह के दोनों पक्षकारों द्वारा पारस्परिक सहमति के आधार

पृष्ठ संख्या

पर विवाह के विघटन के लिए अर्जी प्रस्तुत किया जाना – न्यायालय अर्जी पेश किए जाने की तारीख से छह माह की प्रतीक्षा अवधि के पश्चात् और उस तारीख से अठारह माह के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर पक्षकारों को सुनने और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह उचित समझे, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा, इसलिए छह माह की प्रतीक्षा अवधि आज्ञापक है ।

पी. सुन्दर राज बनाम **पी. सारिका राज** 34

– धारा 13ख [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 23, नियम 3] – पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद – हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के विशिष्ट उपबंधों का आश्रय लेते हुए पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की जा सकती है और इस धारा के विशिष्ट उपबंधों का सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 जैसी अन्य प्रक्रियाओं का पालन किए जाने के द्वारा लघुकरण नहीं किया जाना चाहिए ।

पी. सुन्दर राज बनाम **पी. सारिका राज** 34

– धारा 13(1)(ik) – विवाह-विच्छेद – क्रूरता – जहां अपीलार्थी-पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी-पति के चरित्र पर काफी गंभीर लांछन लगाकर पक्षकारों के बीच विवाह को असुधार्य बना दिया हो और दोनों पक्षकारों का एक साथ जीवन-यापन करना असंभव हो वहां क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर किया जाना उचित और न्यायसंगत है ।

प्रवीण टंक (श्रीमती) बनाम **अरविन्द कुमार टंक** 81

———

उत्तर प्रदेश राज्य

बनाम

हरनाम सिंह

तारीख 24 मार्च, 2015

न्यायमूर्ति प्रत्यूष कुमार

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 34 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5] – माध्यस्थम् पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन – जहां अधिनियम में अपील की परिसीमा अवधि के प्रयोजनार्थ 60 दिनों की विशेष परिसीमा विहित की है तो 60 दिनों की गणना परिसीमा अधिनियम की धारा 45 और 12 की सहायता लेते हुए की जाएगी – इन धाराओं को विनिर्दिष्ट रूप से सम्मिलित किए जाने का अर्थ यह है कि उस सीमा तक केवल परिसीमा अधिनियम के उपबंध अपवर्जित रहेंगे और अन्य उपबंधों की प्रयोज्यता आवश्यक विवक्षा द्वारा अपवर्जित रहेगी ।

मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि "ऊसर भूमि सुधार योजना" के अन्तर्गत नाली, और निरीक्षण पथ के संबंध में तथा सड़कों, नालों और भूमिगत नालों के निर्माण के संबंध में तारीख 25 नवम्बर, 1997 और तारीख 19 जून, 1999 के दो करार अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के मध्य निष्पादित किए गए थे । करार में माध्यस्थम् खंड समाविष्ट था । पक्षों के मध्य विवाद उत्पन्न हुआ और मामले में 1996 के अधिनियम की धारा 11 के अधीन एकल मध्यस्थ के रूप में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को नियुक्त किया गया । मध्यस्थ ने तारीख 22 दिसम्बर, 2010 को पंचाट पारित कर दिया । अपीलार्थी ने इस पंचाट को चुनौती देते हुए तारीख 10 दिसम्बर, 2014 को 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन फाइल किया और साथ में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन एक आवेदन भी फाइल किया जिसके द्वारा आवेदन फाइल किए जाने में कारित विलंब को क्षमा किए जाने की ईप्सा की गई ।

जिला न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के उपबंध लागू नहीं होते, इसलिए आवेदन फाइल किए जाने में किया गया विलंब क्षमा नहीं किया जा सकता और आवेदन को पोषणीय न होने के कारण अस्वीकृत कर दिया । इससे व्यथित होकर अपीलार्थी ने प्रस्तुत अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – जहां विधान-मंडल ने अपील की परिसीमा की अवधि के प्रयोजनार्थ 60 दिन के लिए विशेष परिसीमा विहित की है, तो 60 दिनों की गणना परिसीमा अधिनियम की धारा 4, 5 और 12 की सहायता लेते हुए की जाएगी, इन धाराओं के विनिर्दिष्ट रूप से सम्मिलित किए जाने का अर्थ यह है कि उस सीमा तक केवल परिसीमा अधिनियम के उपबंध अपवर्जित रहेंगे और अन्य उपबंधों की प्रयोज्यता आवश्यक विवक्षा द्वारा अपवर्जित रहेगी । जहां तक 1996 के अधिनियम की धारा 34 की भाषा का संबंध है, उपधारा (3) के परंतुक में प्रयुक्त महत्वपूर्ण शब्द हैं "किन्तु उसके पश्चात् नहीं" । हमारे विचार में यह वाक्यांश परिसीमा अधिनियम की धारा (2) के अर्थान्तर्गत अभिव्यक्त रूप से अपवर्जन करता है और इसलिए उस अधिनियम की धारा 5 की प्रयोज्यता को वर्जित करता है । संसद् को इससे आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं थी । यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि न्यायालय पंचाट को अपास्त किए जाने के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन पर परंतुक के अधीन विस्तारित अवधि के परे विचार करते समय वाक्यांश "परंतु इसके पश्चात् नहीं" को पूर्णतया निरर्थक कर देगा । निर्वचन का कोई भी सिद्धांत ऐसे परिणाम को न्यायानुमत नहीं ठहरा सकता । (पैरा 8)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2001] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 4010 :
भारत संघ बनाम **मैसर्स पापुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी** ; 7, 9

[1964] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1099 :
विद्याचरण शुक्ला बनाम **खुबचंद बघेल** । 8

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की प्रथम अपील सं. 763.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एस. के. मेहरोत्रा

प्रत्यर्थी की ओर से कोई नहीं

आदेश

यह प्रथम अपील कानपुर देहात के जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 10 दिसम्बर, 2014 को पारित आदेश के विरुद्ध निदेशित है जिसके द्वारा अपीलार्थी द्वारा 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम (संक्षेप में "अधिनियम, 1996" कहा गया है) की धारा 34 के अधीन अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए आवेदन, जिसके द्वारा तारीख 22 दिसम्बर, 2010 के पंचाट को अपास्त किए जाने की ईप्सा की गई थी, को अस्वीकृत कर दिया गया ।

2. हमने अपीलार्थी के विद्वान् स्थायी काउंसेल श्री एस. के. मेहरोत्रा को सुना ।

3. प्रश्न जो विचारार्थ उत्पन्न हुआ है, यह है कि क्या 1963 के परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के उपबंध किसी ऐसे आवेदन, जिसे परिसीमा के विहित अवधि के पश्चात् फाइल किया गया है, के मामले में आकर्षित होते हैं जिसके द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन पंचाट को चुनौती दी गई है ।

4. अनावश्यक विवरण को छोड़ते हुए मामले के प्रयोजनार्थ सुसंगत तथ्य निम्नलिखित हैं :–

> "ऊसर भूमि सुधार योजना" के अन्तर्गत नाली और निरीक्षण पथ के निर्माण के संबंध में तथा सड़कों, नालों और भूमिगत नालों के निर्माण के संबंध में तारीख 25 नवम्बर, 1997 और तारीख 19 जून, 1999 के दो करार अपीलार्थी और दावाकर्ता-प्रत्यर्थी के मध्य निष्पादित किए गए थे । करार में माध्यस्थम् खंड समाविष्ट था । पक्षों के मध्य विवाद उत्पन्न हुआ और मामले में 1996 के अधिनियम की धारा 11 के अधीन एकल मध्यस्थ के रूप में इस न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को नियुक्त किया गया । मध्यस्थ ने तारीख 22 दिसम्बर, 2010 को अंतिम पंचाट पारित किया । अपीलार्थी ने इस पंचाट को चुनौती देते हुए तारीख 10 दिसम्बर, 2014 को 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन फाइल किया और साथ में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन एक आवेदन भी फाइल

किया जिसके द्वारा आवेदन फाइल किए जाने में कारित विलंब को क्षमा किए जाने की ईप्सा की गई थी । जिला न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के उपबंध लागू नहीं होते, इसलिए आवेदन फाइल किए जाने में किया गया विलंब को क्षमा नहीं किया जा सकता और परिणामस्वरूप आवेदन को पोषणीय न होने के कारण अस्वीकृत कर दिया । इस प्रक्रम पर यह सुसंगत होगा कि धारा 34 को उद्धृत किया जाए जो इस प्रकार है –

> "**34. माध्यस्थम् पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन** – (1) माध्यस्थम् पंचाट के विरुद्ध, न्यायालय का आश्रय केवल उपधारा (2) या उपधारा (3) के अनुसार, ऐसे पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन करके ही लिया जा सकेगा ।
>
> (2) कोई माध्यस्थम् पंचाट न्यायालय द्वारा तभी अपास्त किया जा सकेगा, यदि –
>
> (क) आवेदन करने वाला पक्षकार यह सबूत देता है कि –
>
> (i) कोई पक्षकार किसी असमर्थता से ग्रस्त था ; या
>
> (ii) माध्यस्थम् करार उस विधि के, जिसके अधीन पक्षकारों ने उसे किया है या इस बारे में कोई संकेत न होने पर, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन विधिमान्य नहीं है, या
>
> (iii) आवेदन करने वाले पक्षकार को, मध्यस्थ की नियुक्ति की या माध्यस्थम् कार्यवाहियों की उचित सूचना नहीं दी गई थी, या वह अपना मामला प्रस्तुत करने में अन्यथा असमर्थ था ; या
>
> (iv) माध्यस्थम् पंचाट ऐसे विवाद से संबंधित है जो अनुध्यात नहीं किया गया है या माध्यस्थम् के लिए निवेदन करने के लिए रखे गए निबंधनों के भीतर नहीं आता है या उसमें ऐसी बातों के बारे में विनिश्चय है जो माध्यस्थम् के लिए निवेदित विषय क्षेत्र से बाहर है :
>
> परन्तु यदि, माध्यस्थम् के लिए निवेदित किए गए विषयों पर विनिश्चयों को उन विषयों के बारे में किए गए

विनिश्चयों से पृथक् किया जा सकता है, जिन्हें निवेदित नहीं किया गया है, तो माध्यस्थम् पंचाट के केवल उस भाग को, जिसमें माध्यस्थम् के लिए निवेदित न किए गए विषयों पर विनिश्चय है, अपास्त किया जा सकेगा ; या

(v) माध्यस्थम् अधिकरण की संरचना या माध्यस्थम् प्रक्रिया, पक्षकारों के करार के अनुसार नहीं थी, जब तक कि ऐसा करार इस भाग के उपबंधों के विरोध में न हो और जिससे पक्षकार नहीं हट सकते थे, या ऐसे करार के अभाव में, इस भाग के अनुसार नहीं थी ; या

(ख) न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि –

(i) विवाद की विषयवस्तु, तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन माध्यस्थम् द्वारा निपटाए जाने योग्य नहीं है, या

(ii) माध्यस्थम् पंचाट भारत की लोक नीति के विरुद्ध है ।

स्पष्टीकरण – उपखंड (ii) की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, किसी शंका को दूर करने लिए यह घोषित किया जाता है कि कोई पंचाट भारत की लोक नीति के विरुद्ध है यदि पंचाट का दिया जाना कपट या भ्रष्ट आचरण द्वारा उत्प्रेरित या प्रभावित किया गया था या धारा 75 अथवा धारा 81 के अतिक्रमण में था ।

(3) अपास्त करने के लिए कोई आवेदन, उस तारीख से, जिसको आवेदन करने वाले पक्षकार ने माध्यस्थम् पंचाट प्राप्त किया था या यदि अनुरोध धारा 33 के अधीन किया गया है तो उस तारीख से, जिसको माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा अनुरोध का निपटारा किया गया था, तीन मास के अवसान के पश्चात् नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह कि जहां न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि आवेदक उक्त तीन मास की अवधि के भीतर आवेदन करने से पर्याप्त कारणों से निर्धारित किया गया था तो वह तीस दिन की अतिरिक्त अवधि में आवेदन ग्रहण कर सकेगा किन्तु उसके पश्चात् नहीं ।

(4) उपधारा (1) के अधीन आवेदन प्राप्त होने पर, जहां यह समुचित हो और इसके लिए किसी पक्षकार द्वारा अनुरोध किया जाए, वहां न्यायालय, माध्यस्थम् अधिकरण को इस बात का अवसर देने के लिए कि वह माध्यस्थम् कार्यवाहियों को चालू रखने या ऐसी कोई अन्य कार्रवाई कर सके जिससे माध्यस्थम् अधिकरण की राय में माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने के लिए आधार समाप्त हो जाएं, कार्यवाहियों को उतनी अवधि के लिए स्थगित कर सकेगा जो उसके द्वारा अवधारित की जाएं ।"

5. उपबंधों को सरसरी तौर पर पढ़े जाने से यह स्पष्ट होता है कि विधान-मंडल ने पक्षों द्वारा माध्यस्थम् पंचाट की प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन माह की समय-सीमा पंचाट को अपास्त किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किए जाने के प्रयोजनार्थ उपबंधित की है । इस आवेदन पर न्यायालय द्वारा तीन माह की अवधि के पश्चात् आगे की तीस दिन की अवधि के भीतर भी विचार किया जा सकता है परंतु यह तब जबकि आवेदक यह प्रदर्शित करने में सक्षम हो कि वह तीन माह के भीतर आवेदन प्रस्तुत करने से पर्याप्त कारणोंवश प्रवारित था ।

6. विद्वान् स्थायी काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक निवेदन किया कि परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के उपबंध परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के उपबंध को विशेष कानूनों जैसेकि 1996 के अधिनियम पर भी लागू करते हैं और चूंकि 1996 का अधिनियम स्पष्टतः परिसीमा अधिनियम की धारा 5 को लागू होने के अपवर्जित नहीं करता और 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन फाइल किए जाने में विलंब के लिए पर्याप्त कारण दर्शित किया गया था, जिला न्यायाधीश ने दोषपूर्ण और अवैध ढंग से उक्त आवेदन को अस्वीकृत किया ।

7. यह विवाद अब अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है और इस पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **भारत संघ** बनाम **मैसर्स पापुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी**[1] वाले मामले में विचार किया गया जहां 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त किए जाने के लिए आवेदन परिसीमा की विहित अवधि के अत्यधिक पश्चात् प्रस्तुत किया गया था । माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस विवाद्यक का जो उत्तर दिया वह निम्नलिखित है :–

---

[1] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 4010.

"5. इस विवाद्यक का उत्तर 1963 के परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) और 1996 के अधिनियम की धारा 34 की भाषा को ध्यान में रखते हुए दिया जाना चाहिए । धारा 29(2) उपबंधित करती है कि –

'जहां कोई विशेष या स्थानीय विधि किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए परिसीमा की कोई अवधि विहित करता है जो अनुसूची द्वारा विहित अवधि से भिन्न है, तो धारा 3 के उपबंध उसी प्रकार से लागू होंगे जैसे परिसीमा की अवधि वही अवधि थी जो अनुसूची द्वारा विहित की गई है और किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए किसी विशेष या स्थानीय विधि द्वारा विहित परिसीमा के लिए किसी अवधि के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ धारा 4 से 24 में समाविष्ट उपबंध केवल उसी सीमा तक लागू होंगे जहां तक उनको किसी विशेष या स्थानीय विधि द्वारा अभिव्यक्ततः अपवर्जित किया गया है ।'

6. इस धारा का विश्लेषण किए जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 4 से 24 के उपबंध लागू होंगे जब –

(i) कोई विशेष या स्थानीय विधि जो किसी वाद, अपील या आवेदन के लिए परिसीमा की भिन्न अवधि विहित करता है ; और

(ii) विशेष या स्थानीय विधि अभिव्यक्ततः उन धाराओं को अपवर्जित नहीं करती ।

7. इस बाबत कोई विवाद नहीं है कि 1996 का अधिनियम विशेष विधि है और धारा 34 परिसीमा की उस अवधि के लिए विहित करती है जो परिसीमा अधिनियम के अंतर्गत विहित अवधि से भिन्न है । अतः प्रश्न यह है कि क्या 1996 के अधिनियम की धारा 34 में इस प्रकार का अपवर्जन अभिव्यक्त किया गया ? धारा 34 का सुसंगत भाग इस प्रकार है –

34. माध्यस्थम् पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन –

(1) * * * *

(2) * * * *

(3) अपास्त करने के लिए कोई आवेदन, उस तारीख से, जिसको आवेदन करने वाले पक्षकार ने माध्यस्थम् पंचाट प्राप्त

किया था या यदि अनुरोध धारा 33 के अधीन किया गया है तो उस तारीख से, जिसको माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा अनुरोध का निपटारा किया गया था, तीन मास के अवसान के पश्चात् नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह कि जहां न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि आवेदक उक्त तीन मास की अवधि के भीतर आवेदन करने से पर्याप्त कारणों से निर्धारित किया गया था तो वह तीस दिन की अतिरिक्त अवधि में आवेदन ग्रहण कर सकेगा किन्तु इसके पश्चात् नहीं ।

8. यदि धारा 34 के उपबंध मात्र उस अवधि के लिए उपबंधित करते जिसके भीतर न्यायालय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता, तो यह परिसीमा अधिनियम की धारा 4 से 24 को अपवर्जित किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं होता क्योंकि परिसीमा की अवधि का उपबंध, चाहे वह कितना भी अनिवार्य या आवश्यक भाषा में हो, धारा 5 के उपयोजन को प्रतिस्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त नहीं है ।'

8. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **विद्याचरण शुक्ला** बनाम **खुबचंद बघेल**[1] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए पैरा 10, 11 और 12 में मताभिव्यक्ति की जो निम्नलिखित है :–

"10. यह विनिश्चय इस सिद्धांत को मान्यता प्रदान करता है कि विशेष या स्थानीय विधि के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे परिसीमा अधिनियम के उपबंधों को अपवर्जित कर सकें । यह पर्याप्त होगा यदि परिसीमा के संबंधित उपबंधों की भाषा पर विचारोपरांत अपवर्जित किए जाने के आशय को आवश्यक रूप से विवक्षित किया जा सकता जैसाकि हुकुम नारायण यादव **बनाम** ललित नारायण मिश्रा, ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 480 वाले मामले में कहा गया है –

'यदि सुसंगत उपबंधों के परीक्षण पर यह स्पष्ट हो जाता है कि परिसीमा अधिनियम के उपबंधों को आवश्यक रूप से अपवर्जित कर दिया गया है, तो उन उपबंधों के अंतर्गत प्रदत्त लाभों का आशय अधिनियम के उपबंधों की अनुपूर्ति के प्रयोजनार्थ नहीं किया जा सकता ।'

---

[1] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1099.

11. अतः जहां विधान-मंडल ने अपील की परिसीमा की अवधि के प्रयोजनार्थ 60 दिन के लिए विशेष परिसीमा विहित की है, तो 60 दिनों की गणना परिसीमा अधिनियम की धारा 4, 5 और 12 की सहायता लेते हुए की जाएगी, इन धाराओं के विनिर्दिष्ट रूप से सम्मिलित किए जाने का अर्थ यह है कि उस सीमा तक केवल परिसीमा अधिनियम के उपबंध अपवर्जित रहेंगे और अन्य उपबंधों की प्रयोज्यता आवश्यक विवक्षा द्वारा अपवर्जित रहेगी ।

12. जहां तक 1996 के अधिनियम की धारा 34 की भाषा का संबंध है, उपधारा (3) के परंतुक में प्रयुक्त महत्वपूर्ण शब्द हैं 'किन्तु उसके पश्चात् नहीं' । हमारे विचार में यह वाक्यांश परिसीमा अधिनियम की धारा (2) के अर्थान्तर्गत अभिव्यक्त रूप से अपवर्जन करता है और इसलिए उस अधिनियम की धारा 5 की प्रयोज्यता को वर्जित करता है । संसद् को इससे आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं थी । यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि न्यायालय पंचाट को अपास्त किए जाने के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन पर परंतुक के अधीन विस्तारित अवधि के परे विचार करते समय वाक्यांश 'परंतु इसके पश्चात् नहीं' को पूर्णतया निरर्थक कर देगा । निर्वचन का कोई भी सिद्धांत ऐसे परिणाम को न्यायानुमत नहीं ठहरा सकता ।"

9. **मैसर्स पापुलर कंस्ट्रक्शन कंपनी** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय द्वारा विवाद्यक को स्थिरीकृत करते हुए अपीलार्थी के स्थायी काउंसेल द्वारा दी गई दलील कि परिसीमा अधिनियम के उपबंध 1996 की अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों पर लागू होंगे, में कोई बल नहीं पाया जाता और यह दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । हम जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त किए जाने के लिए अपीलार्थी के आवेदन को परिसीमा द्वारा बाधित मानते हुए अस्वीकृत कर दिया गया, में कोई अवैधता नहीं पाते ।

10. आदेश से उत्पन्न प्रथम अपील को सरसरी तौर पर खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

शु.

———————

शिवचरण लाल शर्मा

बनाम

इलाहाबाद बैंक

तारीख 6 मई, 2015

न्यायमूर्ति तरुण अग्रवाल और न्यायमूर्ति अमर सिंह चौहान

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और वित्तीय हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54) – धारा 14(1)(क) – प्रतिभूत लेनदार द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा प्राप्त किया जाना – जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट प्रतिभूत लेनदार को प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा दिलाने में सहायता प्रदान करने के लिए सशक्त हैं – धारा 14(1)(क) के परंतुक की आज्ञा है कि प्रतिभूत लेनदार द्वारा प्रतिभूत आस्ति का कब्जा प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन के साथ शपथपत्र भी फाइल किया जाएगा ।

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और वित्तीय हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54) – धारा 14(1)(क) – प्रतिभूत लेनदार द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा प्राप्त किया जाना – जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट उनके अधीनस्थ किसी अधिकारी को प्रतिभूत आस्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा लेने और उन आस्तियों और दस्तावेजों को प्रतिभूत लेनदार को उपलब्ध कराए जाने के लिए प्राधिकृत कर सकता है ।

संक्षेप में, मामले के तथ्य ये हैं कि याची, प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 का पिता और प्रत्याभूतिदाता है जिन्होंने 2012 में एस. आर. ट्रैक्टर्स नामक भागीदारी फर्म, जिसमें वे भागीदार हैं, नाम से प्रत्यर्थी बैंक से 75 लाख रुपए की नकद प्रत्यय सीमा प्राप्त की थी । याची अलीगढ़ के लोहिया नगर, बन्ना देवी, जी टी रोड स्थित उसके रिहायशी मकान सं. 5/298ए के स्वत्व विलेखों को जमा करके नकद प्रत्यय सीमा के लिए प्रत्याभूति दाता बना था । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 का खाता तारीख 31 मई, 2014 को गैर निष्पादित आस्ति हो गया था जिसके अनुसरण में 2002 के वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और वित्तीय हित का प्रवर्तन अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन प्रत्यर्थी बैंक द्वारा

तारीख 2 जून, 2014 का नोटिस 44.92 लाख रुपए की मांग करते हुए जारी किया गया । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 29 अगस्त, 2014 को धारा 13(4) के अधीन उपरोक्त सम्पत्ति (अलीगढ़ स्थित मकान) का सांकेतिक कब्जा भी ले लिया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् प्रत्यर्थी बैंक ने अधिनियम की धारा 14 के अधीन जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष तारीख 30 अक्तूबर, 2014 को सम्पत्ति के कब्जे के वास्तविक हस्तांतरण की प्रार्थना करते हुए एक आवेदन फाइल किया । इस आवेदन पर प्रत्यर्थी सं. 3 अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व) ने वास्तविक कब्जे के हस्तांतरण के लिए तारीख 4 मार्च, 2015 का आदेश जारी कर दिया जिसके मतावलंबन में प्रत्यर्थी सं. 5 अपर सिटी मजिस्ट्रेट ने वास्तविक कब्जा लेने के लिए तारीख 6 मई, 2015 निर्धारित करते हुए तारीख 21 अप्रैल, 2015 का आदेश जारी किया । याची ने अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन से व्यथित होकर अधिनियम की धारा 17 के अधीन ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किया । अधिकरण ने तारीख 1 मई, 2015 के आदेश द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा हर्षद गोवर्धन सोनदागर बनाम इंटरनेशनल रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लि. और अन्य वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए स्थगन आवेदन इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया कि अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित आदेश को अधिनियम की धारा 17 के अधीन फाइल किए गए आवेदन द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती । इससे व्यथित होकर याची ने वर्तमान रिट याचिका फाइल की । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – धारा 14(1) जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट को प्रतिभूत लेनदार को प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा प्रदान करने में सहायता प्रदान करने के प्रयोजनार्थ शक्ति प्रदान करती है । धारा 14(1)(क) उपबंधित करती है कि जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट उनके अधीनस्थ किसी अधिकारी को ऐसी आस्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा लेने और उन आस्तियों और दस्तावेजों को प्रतिभूत लेनदार को उपलब्ध कराए जाने के प्रयोजनार्थ प्राधिकृत कर सकता है । अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (1क) 2013 के अधिनियम सं. 1 द्वारा पुरःस्थापित की गई थी । इस उपबंध के प्रकाश में यह स्पष्ट है कि जिला मजिस्ट्रेट प्रतिभूत लेनदार को प्रतिभूत आस्तियों को दिलाने के प्रयोजनार्थ उनके अधीनस्थ किसी अधिकारी को शक्ति का

प्रत्यायोजन कर सकता है । उपरोक्त के प्रकाश में इस विवाद्यक पर याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा किया गया निवेदन स्वीकार नहीं किया जा सकता । (पैरा 6)

2013 के अधिनियम सं. 1 द्वारा धारा 14(1) में एक परंतुक जोड़ा गया जिसके द्वारा यह अपेक्षा की गई कि जहां किसी प्रतिभूत लेनदार द्वारा किसी प्रतिभूत आस्ति का कब्जा लिए जाने के प्रयोजनार्थ कोई आवेदन फाइल किया जाता है, तो उक्त आवेदन के साथ एक शपथपत्र भी फाइल किया जाएगा जिसमें प्रतिभूत आस्ति की प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा सम्यक् रूप से दृढ़तापूर्वक पुष्टि की जाएगी और जिसमें नौ संघटक समाविष्ट होंगे । (पैरा 7)

अधिनियम की धारा 14(1) के प्रथम परंतुक में प्रयुक्त शब्द 'होगा' आज्ञापक है । बैंक की यह आवश्यक अपेक्षा है कि धारा 14 के अधीन फाइल किए गए आवेदन के साथ शपथपत्र भी फाइल किया जाना चाहिए जिसकी पुष्टि प्रतिभूत ऋणदाता के प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा प्रथम परंतुक के उपखंड (i) से उपखंड (ix) के अधीन अनुध्यात संघटकों को उपदर्शित करते हुए की जानी चाहिए । हमारे विचार में, शपथपत्र फाइल न किया जाना घातक होगा । (पैरा 10)

अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तारीख 4 मार्च, 2015 को पारित आक्षेपित आदेश और उसके परिणामस्वरूप तारीख 21 अप्रैल, 2015 को अपर सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश अवैध होने के कारण मान्य नहीं ठहराए जा सकते और उसको अभिखंडित किया जाता है । रिट याचिका मंजूर की जाती है । (पैरा 12)

प्रत्यर्थी बैंक को स्वतंत्रता है कि वे अधिनियम के उपबंधों के अनुसार धारा 14 के अधीन नया आवेदन फाइल करे और मामले में आगे अग्रसर हों । (पैरा 13)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2014] (2014) 6 एस. सी. सी. 1 :
हर्षद गोवर्धन सोनदागर बनाम **इंटरनेशनल रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लि. और अन्य** ; 1

[2013] (2013) 9 एस. सी. सी. 620 :
स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम **नोबल कुमार और अन्य** । 8,10

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2015 की सिविल रिट अपील सं. 25953.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री सुधांशु पांडे (मुख्य स्थायी काउंसेल)

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री तरुण वर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति तरुण अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल – याची, प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 का पिता और प्रत्याभूतिदाता है, जिन्होंने 2012 में एस. आर. ट्रैक्टर्स नामक भागीदारी फर्म, जिसमें वे भागीदार हैं में 75 लाख रुपए की नकद प्रत्यय सीमा प्राप्त की थी । याची अलीगढ़ के लोहिया नगर, बन्ना देवी, जी टी रोड स्थित उसके रिहायशी मकान सं. 5/298ए के स्वत्व विलेखों को जमा करके नकद प्रत्यय सीमा के लिए प्रत्याभूति दाता बना था । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 का खाता तारीख 31 मई, 2014 को गैर निष्पादित आस्ति हो गया था जिसके अनुसरण में 2002 के वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और वित्तीय हित का प्रवर्तन अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहकर निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 13(2) के अधीन तारीख 2 जून, 2014 का नोटिस 44.92 लाख रुपए की मांग करते हुए जारी किया गया । तत्पश्चात् तारीख 29 अगस्त, 2014 को धारा 13(4) के अधीन उपरोक्त सम्पत्ति (अलीगढ़ स्थित मकान) का सांकेतिक कब्जा भी ले लिया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् प्रत्यर्थी बैंक ने अधिनियम की धारा 14 के अधीन जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष तारीख 30 अक्तूबर, 2014 को सम्पत्ति के कब्जे के वास्तविक हस्तांतरण की प्रार्थना करते हुए एक आवेदन फाइल किया । इस आवेदन पर प्रत्यर्थी सं. 3 अपर जिला मजिस्ट्रेट (वित्त एवं राजस्व) ने वास्तविक कब्जे के हस्तांतरण के लिए तारीख 4 मार्च, 2015 का आदेश जारी कर दिया जिसके मतावलंबन में प्रत्यर्थी सं. 5 अपर सिटी मजिस्ट्रेट ने वास्तविक कब्जा लेने के लिए तारीख 6 मई, 2015 निर्धारित करते हुए तारीख 21 मई, 2015 का आदेश जारी किया । याची ने अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन से व्यथित होकर अधिनियम की धारा 17 के अधीन ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल किया । अधिकरण ने तारीख 1 मई, 2015 के आदेश द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **हर्षद गोवर्धन सोनदागर** बनाम **इंटरनेशनल रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लि. और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए स्थगन आवेदन

[1] (2014) 6 एस. सी. सी. 1.

इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया कि अधिनियम की धारा 14 के अधीन पारित आदेश को अधिनियम की धारा 17 के अधीन फाइल किए गए आवेदन द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती । इससे व्यथित होकर याची ने वर्तमान रिट याचिका फाइल की ।

2. हमने याची के विद्वान् काउंसेल श्री सुधांशु पांडे और प्रत्यर्थी बैंक के विद्वान् काउंसेल श्री तरुण वर्मा को सुना ।

3. क्योंकि मामले में कोई तथ्यात्मक विवाद अंतर्वलित नहीं है और मात्र एक विधिक बिन्दु को निर्णीत किया जाना है, हम रिट याचिका को ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही बिना खंडन शपथपत्र फाइल किए जाने की अपेक्षा करते हुए निस्तारित करने के लिए अग्रसर हो रहे हैं ।

4. याची के विद्वान् काउंसेल की दलील यह है कि जिला मजिस्ट्रेट अकेले ही अधिनियम की धारा 14 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को निर्णीत कर सकता है और उसको इस बाबत कोई शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह इस आवेदन को निर्णीत करने की शक्ति किसी अधीनस्थ अधिकारी को प्रत्यायोजित करे । द्वितीय आधार जिसके बाबत यह दलील दी गई कि अधिनियम की धारा 14 के अधीन बैंक द्वारा फाइल किए गए आवेदन के साथ शपथपत्र, जो आज्ञापक है और वर्तमान मामले में फाइल नहीं किया गया है, भी फाइल किया जाना अपेक्षित है । यह दलील दी गई कि शपथपत्र फाइल न किया जाना धारा 14 के अधीन फाइल किए गए आवेदन के निस्तारण के लिए घातक है और ऐसा आवेदन शपथपत्र के साथ फाइल न किए जाने के कारण स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

5. बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री तरुण वर्मा ने अनुदेश प्राप्त करने के पश्चात् निवेदन किया कि जिला मजिस्ट्रेट को अपनी शक्ति को अधिनियम के अधीन किसी अधीनस्थ अधिकारी को प्रत्यायोजित करने का पूर्ण प्राधिकार और शक्ति प्राप्त है और मात्र यह तथ्य कि आवेदन के साथ शपथपत्र फाइल नहीं किया गया, आवेदन के निस्तारण के लिए घातक नहीं है, चूंकि शपथपत्र में अपेक्षित समस्त संघटक उपस्थित थे और आवेदन में विद्यमान थे । विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि अधिक से अधिक शपथपत्र न फाइल किए जाने को एक अनियमितता कहा जा सकता है जो कि निवारणीय है और अधिनियम की धारा 14 के अधीन फाइल किए गए आवेदन के निस्तारण के लिए घातक नहीं है ।

6. पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि धारा 14(1) जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट को प्रतिभूत लेनदार को प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा प्रदान करने में सहायता प्रदान करने के प्रयोजनार्थ शक्ति प्रदान करती है । धारा 14(1)(क) उपबंधित करती है कि जिला मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट उनके अधीनस्थ किसी अधिकारी को ऐसी आस्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों का कब्जा लेने और उन आस्तियों और दस्तावेजों को प्रतिभूत लेनदार को उपलब्ध कराए जाने के प्रयोजनार्थ प्राधिकृत कर सकता है । अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (1क) 2013 के अधिनियम सं. 1 द्वारा पुरःस्थापित की गई थी । इस उपबंध के प्रकाश में यह स्पष्ट है कि जिला मजिस्ट्रेट प्रतिभूत लेनदार को प्रतिभूत आस्तियों को दिलाने के प्रयोजनार्थ उनके अधीनस्थ किसी अधिकारी को शक्ति का प्रत्यायोजन कर सकता है । उपरोक्त के प्रकाश में इस विवाद्यक पर याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा किया गया निवेदन स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

7. 2013 के अधिनियम सं. 1 द्वारा धारा 14(1) में एक परंतुक जोड़ा गया जिसके द्वारा यह अपेक्षा की गई कि जहां किसी प्रतिभूत लेनदार द्वारा किसी प्रतिभूत आस्ति का कब्जा लिए जाने के प्रयोजनार्थ कोई आवेदन फाइल किया जाता है, तो उक्त आवेदन के साथ एक शपथपत्र भी फाइल किया जाएगा जिसमें प्रतिभूत आस्ति की प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा सम्यक् रूप से दृढ़तापूर्वक पुष्टि की जाएगी और जिसमें नौ संघटक समाविष्ट होंगे । सुविधा की दृष्टि से धारा 14(1) के परंतुक को नीचे उद्धृत किया गया है :–

> "परंतु यह तब जबकि प्रतिभूत लेनदार द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन के साथ शपथपत्र भी संलग्न होगा जिसके द्वारा प्रतिभूत लेनदार के प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा घोषणा करते हुए पुष्टि की जाएगी कि –
>
> (i) प्रदान की गई वित्तीय सहायता की कुल रकम और आवेदन फाइल किए जाने की तारीख पर बैंक का कुल दावा ;
>
> (ii) ऋण प्राप्तकर्ता द्वारा विभिन्न संपत्तियों के संबंध में सृजित प्रतिभूत हित सृजित किए हैं और बैंक या वित्तीय संस्था ऐसी संपत्तियों पर विधिमान्य और विद्यमान प्रतिभूत हित धारित करते हैं बैंक या वित्तीय संस्था का दावा परिसीमा अवधि के भीतर है ;

(iii) ऋण प्राप्तकर्ता ने उपखंड (ii) में निर्दिष्ट संपत्तियों का विवरण देते हुए विभिन्न संपत्तियों के संबंध में प्रतिभूत हित सृजित किया है ;

(iv) ऋण प्राप्तकर्ता ने प्रदान की गई वित्तीय सहायता के पुनर्संदाय में व्यतिक्रम कारित किया है जिसके परिणामस्वरूप विनिर्दिष्ट रकम उद्भूत हुई है ;

(v) वित्तीय सहायता के पुनर्संदाय में उपरोक्त व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप ऋण प्राप्तकर्ता का खाता गैर निष्पादित आस्ति के रूप में वर्गीकृत कर दिया गया है ;

(vi) इस बात की पुष्टि करते हुए कि साठ दिनों की नोटिस, जैसाकि कि धारा 13 की उपधारा (2) के उपबंधों द्वारा अपेक्षित है, व्यतिक्रमित वित्तीय सहायता के संदाय की मांग करते हुए ऋण प्राप्तकर्ता पर तामील किया जा चुका है ;

(vii) ऋण प्राप्तकर्ता ने नोटिस के उत्तर में प्राप्त आक्षेप या प्रत्यावेदन पर प्रतिभूत लेनदार द्वारा विचार किया गया और न उसे आक्षेप या प्रत्यावेदन को अस्वीकार किए जाने के कारणों को ऋण प्राप्तकर्ता को सूचित कर दिया गया है ;

(viii) ऋण प्राप्तकर्ता ने उपरोक्त नोटिस के बावजूद वित्तीय सहायता का कोई पुनर्संदाय नहीं किया है और इसलिए प्राधिकृत प्राधिकारी धारा 13 की उपधारा (4) सपठित मुख्य अधिनियम की धारा 14 के उपबंधों के अधीन प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने का हकदार है ;

(ix) इस अधिनियम और उसके अन्तर्गत विरचित नियम के उपबंधों का अनुपालन किया गया है ।"

8. उच्चतम न्यायालय द्वारा **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक** बनाम **नोबल कुमार और अन्य**[1] वाले मामले में इस उपबंध पर विचार किया जिसमें उच्चतम न्यायालय ने उक्त परंतुक के नौ उपखंडों का विश्लेषण यह उपदर्शित करते हुए किया कि शपथपत्र के माध्यम से निम्नलिखित सूचना उपलब्ध कराई जानी चाहिए अर्थात् ऋण संव्यवहार हुआ था जिसके अधीन ऋण

[1] (2013) 9 एस. सी. सी. 620.

प्राप्तकर्ता ऋण की रकम का ब्याज सहित पुनर्संदाय करने का दायी है ; ऋण प्राप्तकर्ता से संबंधित प्रतिभूत सुरक्षित आस्ति में प्रतिभूत हित सृजित हुआ ; ऋण प्राप्तकर्ता ने पुनर्संदाय में व्यतिक्रम कारित किया ; धारा 13(2) के अधीन अनुध्यात नोटिस वास्तव में तामील की गई ; ऋण प्राप्तकर्ता ने नोटिस के बावजूद ऋण का पुनर्संदाय नहीं किया ; ऋण प्राप्तकर्ता के आक्षेपों पर विचार किया गया और उनको अस्वीकृत किया और अस्वीकृत किए जाने के कारणों को ऋण प्राप्तकर्ता को संसूचित कर दिया ।

9. उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम में परंतुक का सम्मिलित किया जाना ऋण प्राप्तकर्ता के हितों की रक्षा के प्रयोजनार्थ था और यह उपबंध अनुध्यात करता है कि सुरक्षित ऋणदाता जो धारा 14 के अधीन मजिस्ट्रेट के मध्यक्षेप की ईप्सा कर रहा है, परंतुक के विभिन्न उपखंडों (i) से (ix) के अधीन अनुध्यात सूचना उपलब्ध कराने के लिए शपथपत्र प्रस्तुत करेगा । उच्चतम न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि पूर्वोक्त सूचना को समाविष्ट करने वाला शपथपत्र आवश्यक है चूंकि यह शपथपत्र मजिस्ट्रेट को प्रतिभूत आस्ति का कब्जा लेने और उसका कब्जा प्रदान करने के संबंध में समुचित आदेश पारित करने के लिए बाध्य करेगा किन्तु मजिस्ट्रेट को शपथपत्र की अन्तर्वस्तु के बाबत संतुष्ट होना होगा । उच्चतम न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 14(1) के द्वितीय परंतुक के अधीन मजिस्ट्रेट का समाधान आवश्यक रूप से अपेक्षा करता है कि मजिस्ट्रेट उस शपथपत्र में किए गए प्रकथनों की तथ्यात्मक सत्यता का परीक्षण करे और अपना समाधान अभिलिखित करने के पश्चात् सुरक्षित आस्तियों का कब्जा लिए जाने के संबंध में समुचित आदेश पारित कर सकेगा ।

10. **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्वोक्त विनिश्चय के आधार पर हमारा विचार है कि अधिनियम की धारा 14(1) के प्रथम परंतुक में प्रयुक्त शब्द "होगा" आज्ञापक है । बैंक की यह आवश्यक अपेक्षा है कि धारा 14 के अधीन फाइल किए गए आवेदन के साथ शपथपत्र भी फाइल किया जाना चाहिए जिसकी पुष्टि प्रतिभूत ऋणदाता के प्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा प्रथम परंतुक के उपखंड (i) से उपखंड (ix) के अधीन अनुध्यात संघटकों को उपदर्शित करते हुए की जानी चाहिए । हमारे विचार में, शपथपत्र फाइल न किया जाना घातक होगा ।

11. बैंक के विद्वान् काउंसेल श्री तरुण वर्मा ने सहमति व्यक्त की कि

प्रस्तुत मामले में कोई शपथपत्र फाइल नहीं किया गया है । परिणामस्वरूप, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा आवेदन को स्वीकार नहीं किया जा सकता था ।

12. परिणामस्वरूप, ऊपर अभिकथित कारणोंवश अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तारीख 4 मार्च, 2015 को पारित आक्षेपित आदेश और उसके परिणामस्वरूप तारीख 21 अप्रैल, 2015 को अपर सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश अवैध होने के कारण मान्य नहीं ठहराए जा सकते और उसको अभिखंडित किया जाता है । रिट याचिका मंजूर की जाती है ।

13. प्रत्यर्थी बैंक को स्वतंत्रता है कि वे अधिनियम के उपबंधों के अनुसार धारा 14 के अधीन नया आवेदन फाइल करे और मामले में आगे अग्रसर हों ।

याचिका मंजूर की गई ।

शु.

(2016) 1 सि. नि. प. 18 **उड़ीसा**

लक्ष्मीधर साहू

बनाम

बतक्रुश्ना साहू

तारीख 3 नवम्बर, 2014

न्यायमूर्ति रघुबीर दास

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30) – धारा 15, 16 [सपठित हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 8] – निर्वसीयत मरने वाली हिन्दू नारी की संपत्ति का उत्तराधिकार – निर्वसीयत मरने वाली हिन्दू नारी की संपत्ति जिसको उसने अपने पिता-माता से विरासत में प्राप्त किया, का उत्तराधिकार उसके पुत्र, पुत्री (पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के बच्चों को सम्मिलित करते हुए) और उसके पति को एक साथ न्यागत होगा – यदि संपत्ति अविभाजित है तो उत्तराधिकार में प्राप्त करने वाले पक्ष उसका अंतरण तब तक नहीं कर सकेंगे जब तक कि संपत्ति का विभाजन न हो जाए ।

हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (1956 का 32)

– धारा 8 [सपठित हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 15, 16] – अवयस्क का सांपत्तिक अधिकार – संयुक्त परिवार संपत्ति में अवयस्क का अधिकार – संयुक्त परिवार संपत्ति के मामले में अवयस्क के अविभाजित भाग के बाबत उसका नैसर्गिक संरक्षक (पिता या माता) कार्यवाही कर सकता है । लक्ष्मीधर साह

संक्षेप में, वाद के तथ्य ये हैं कि प्रस्तुत अपील विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी सं. 2 और 3 ने फाइल की है । इस अपील का प्रत्यर्थी विचारण न्यायालय के समक्ष वादी है । निचले न्यायालय का प्रतिवादी सं. 1 स्व. कुमार साहू प्रत्यर्थी का दत्तकग्राही पिता था । प्रत्यर्थी की माता स्व. अहल्या साहू की मृत्यु तारीख 24 दिसम्बर, 1993 को हो गई । स्व. अहल्या साहू अपने पिता-माता की एकमात्र पुत्री थी । वादपत्र की अनुसूची के लॉट सं. 1 में वर्णित अचल संपत्ति भागतः अहल्या साहू के नाम में उसके स्वर्गीय पिता-माता द्वारा खरीदी गई थी और भागतः उसने यह संपत्ति अपनी माता से विरासत से प्राप्त की थी । उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका अंगीकृत पुत्र, अपने मामा के घर चला गया जहां अवयस्कता के दौरान उसका पालन-पोषण हुआ । प्रत्यर्थी के अंगीकारी पिता स्व. कुमार साहू ने वादपत्र के अनुसूची के लॉट सं. 1 में वर्णित संपत्ति का रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख अपीलार्थियों के पक्ष में तारीख 28 दिसम्बर, 1993 को स्व. अहल्या की मृत्यु के मात्र चार दिनों के पश्चात् कर दिया । उस समय प्रत्यर्थी अवयस्क था । प्रत्यर्थी ने घोषणात्मक अनुतोष प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ अन्य बातों के साथ यह अभिकथित करते हुए निचले न्यायालय के समक्ष वादपत्र फाइल किया कि तारीख 28 दिसम्बर, 1993 का रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख उस पर बाध्यकारी नहीं है और इस विक्रय-विलेख के अंतर्गत अपीलार्थियों को कोई हक अंतरित नहीं हुआ । वादपत्र में उसने यह अभिकथित किया कि उसने वादपत्र की अनुसूची के लॉट सं. 1 में वर्णित अचल संपत्तियां अपनी माता से वसीयत द्वारा प्राप्त की हैं और इसलिए ये संपत्तियां उनके पति को न्यागत नहीं होतीं, साथ ही उसने यह पक्षकथन किया कि उसके पिता को वादगत संपत्तियों में कोई अधिकार, हक और हित अन्तरित न होने के कारण उनके द्वारा निष्पादित विक्रय-विलेख द्वारा अपीलार्थियों को कोई हक अंतरित नहीं हुआ । अपीलार्थियों ने इस अभिकथन से इनकार करते हुए अभिकथित किया कि स्व. कुमार साहू परिवार का कर्ता था जिसमें उसकी पत्नी, पुत्र और वह स्वयं समाविष्ट थे । पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसने अपने अवयस्क पुत्र को शिक्षा प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ उसके मामा के घर भेज दिया था और उसको समस्त

वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई साथ ही उसने अहल्या के श्राद्ध कार्यक्रम के खर्चों को पूरा करने और मकान बनाने के लिए वादपत्र की अनुसूची के लॉट सं. 1 में वर्णित अचल संपत्तियों को रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा हस्तांतरित कर दिया था और तत्पश्चात् कब्जे का भी हस्तांतरण कर दिया था । उसने यह भी अभिकथित किया कि अहल्या के मृत्यु के पश्चात् वादपत्र की अनुसूची के लॉट सं. 1 में वर्णित संपत्ति उसके और उसके द्वारा अंगीकृत पुत्र के पक्ष में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15(1) में समाविष्ट उपबंधों के अनुसार एकसाथ न्यागत हो गई थी । दोनों ही निचले न्यायालयों ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अहल्या की मृत्यु हो गई थी और उसका अंगीकृत पुत्र विद्यमान था और विरासत का स्रोत उसके पिता-माता हैं और उत्तराधिकार का नियम हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15(2)(क) द्वारा शासित होगा और तद्नुसार वादपत्र की अनुसूची के लॉट सं. 1 में वर्णित संपत्तियां उसके पति को अपवर्जित करते हुए केवल पुत्र को न्यागत होंगी । अपीलार्थियों की ओर से दलील दी गई कि विद्वान् निचले न्यायालयों ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15(2)(क) की परिधि का गलत अर्थ निकाला, चूंकि अहल्या की मृत्यु के समय उसका एक पुत्र था और अधिनियम की धारा 15(1) सपठित धारा 16(1) के अधीन अधिकथित उत्तराधिकार के समान नियम इस मामले पर लागू नहीं होते और संपत्ति पुत्र और पति दोनों को एक साथ उत्तराधिकार में प्राप्त होंगी । दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित तारीख 11 मई, 2007 और 21 जून, 2007 के निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर यह द्वितीय अपील फाइल की गई है । अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अधिनियम की धारा 15 में समाविष्ट उत्तराधिकार के नियम के पूर्वोक्त विश्लेषण से यह समझा जा सकता है कि जबकि धारा 15(1) उत्तराधिकार के सामान्य नियम को अधिकथित करती है, उपधारा (2) जो सर्वोपरि खंड के साथ आरंभ होती है, दो अपवाद सृजित करती है : (i) यदि नारी की मृत्यु बिना किसी संतान के होती है, तो उसके द्वारा उसके पिता या माता से विरासत में मिली हुई संपत्ति उपधारा में (1) में अधिकथित सामान्य नियम के अनुसार न्यागत नहीं होगी, बल्कि उसके पिता के वारिसों को न्यागत होगी और (ii) यदि नारी की मृत्यु बिना किसी संतान की होती है, तो उसके द्वारा उसके पति या ससुराल पक्ष से विरासत में प्राप्त संपत्ति उपधारा (1) में अधिकथित सामान्य नियम के अनुसार न्यागत नहीं होगी बल्कि पति के वारिसों को न्यागत होगी । अतः यह स्पष्ट किया जाता है कि जब किसी हिन्दू नारी की मृत्यु निर्वसीयत और बिना किसी पुत्र, पुत्री या पूर्व मृत पुत्र या

पुत्र के बच्चों की विद्यमानता की होती है, तो उसके द्वारा उसके पिता या माता और/या पति या श्वसुर से विरासत में प्राप्त संपत्ति उसी स्त्रोत को वापस लौट जाएगी जहां से प्राप्त की गई थी । विधि की इस स्थिति से ये अर्थ निकाला जा सकता है कि यदि किसी हिन्दू नारी की मृत्यु निर्वसीयत और बिना किसी संतान की विद्यमानता की होती है तो अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (2) में समाविष्ट अपवाद क्रियान्वित नहीं होंगे और अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (1) में समाविष्ट उत्तराधिकार का सामान्य नियम लागू होगा । (पैरा 12)

हिन्दू नारी की संपत्ति, जिसको उसने अपने पिता-माता से विरासत में प्राप्त किया, किसी संतान की विद्यमानता में उसके पति और संतान (नों) को अधिनियम की धारा 15(1) सपठित धारा 16 के अनुसार एक साथ न्यागत होगी । (पैरा 15)

जहां तक 1956 के हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 8 की प्रयोज्यता पर द्वितीय प्रश्न का संबंध है, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि जब संपत्ति वादी और प्रतिवादी सं. 1 (मृतक हिन्दू नारी का पुत्र और पति) को एक साथ न्यागत हो गई और उक्त संपत्ति का कोई विभाजन भी नहीं हुआ, तो हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 8 की उपधारा 2 और 3 लागू नहीं होगी और परिणामस्वरूप डी-1 द्वारा निष्पादित विक्रय-विलेख जिसके द्वारा संपूर्ण लॉट सं. 1 संपत्तियों का हस्तांतरण प्रत्यर्थियों के पक्ष में कर दिया गया, वादी की पहल पर व्यर्थनीय नहीं है । विधि सुस्थापित है कि संयुक्त परिवार संपत्ति के मामले में अवयस्क का हित हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 और 12 की परिधि के बाहर रखा जाता है । संयुक्त परिवार संपत्ति के मामले में अवयस्क के अविभाजित भाग के संबंध में उसका नैसर्गिक संरक्षक हिन्दू विधि के अनुसार आवश्यक कार्रवाई कर सकता है । किन्तु संपत्ति जो हमारे समक्ष उपस्थित मामले की विषयवस्तु है, संयुक्त परिवार संपत्ति की प्रकृति की नहीं कही जा सकती और मात्र इस कारणवश कि संपत्तियां पिता और पुत्र को एक साथ न्यागत हो गईं, यह नहीं कहा जा सकता कि पुत्र का संयुक्त परिवार संपत्ति में अविभाजित हित था । इसलिए हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 8 पिता द्वारा तारीख 23 नवम्बर, 1993 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख के अधीन किए गए संपत्ति अंतरण के विरुद्ध क्रियान्वित होगी । परिणामस्वरूप, विक्रय संव्यवहार वादपत्र की अनुसूची के लॉट सं. 1 में अवयस्क के 50% की हित की सीमा तक व्यर्थनीय है । (पैरा 16)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2010] 2010 (II) ओ. एल. आर. (एस. सी.) 286 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3935 : **ए. आर. श्रीनिवास और अन्य** बनाम **वी. एस. पदमावथम्मा** ; 10

[2006] ए. आई. आर. 2006 कर्नाटक 115 : **दिलीप कुमार** बनाम **दामोदर नारायण राव रमण गुडकर** ; 10

[2003] 2003 (II) ओ. एल. आर. (एस. सी.) 497 : **वी. डंडापाणी चेतियार** बनाम **बालासुब्रमणयम् चेतियार (मृतक) द्वारा विधिक उत्तराधिकारी और अन्य** ; 9

[1996] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 2371 : **श्री नारायण बल** बनाम **श्रीधर सुतार** ; 16

[1995] (1995) 2 ईस्ट एल जे. 13 (एस. सी.) : **राधिका** बनाम **अघनू राम** ; 14,15

[1994] ए. आई. आर. 1994 बाम्बे 152 : **नारायण लक्षमण गिलांकर** बनाम **उदया कुमार काशीनाथ कौशिक** ; 16

[1974] ए. आई. आर. 1974 उड़ीसा 184 : **सुनामणि देवी** बनाम **बाबाजी दास और अन्य** । 16

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की नियमित द्वितीय अपील सं. 105.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री विधायक पटनायक, एस. के. स्वैन, और बी. राठ

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री महितोष सिन्हा और पी. के. महाली

आदेश

यह द्वितीय अपील 2007 के नियमित प्रथम अपील सं. 44 में खुरदा के विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा अलग-अलग पारित तारीख 14 दिसम्बर, 2012 और 27 दिसम्बर, 2012 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा 1994-I के विचारण वाद सं. 152 में भुवनेश्वर के विद्वान् सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ खंड) द्वारा अलग-अलग पारित तारीख 11 मई, 2007 और 21 जून, 2007 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई ।

2. प्रतिवादी सं. 2 और 3 ने यह अपील फाइल की है । इसमें का प्रत्यर्थी विचारण न्यायालय के समक्ष वादी है । प्रतिवादी सं. 1 स्व. कुमार साहू, वादी-प्रत्यर्थी का दत्तकग्राही पिता, जिसकी मृत्यु प्रथम अपील के लंबित रहने के दौरान हो गई थी, का हटाए जाने की अनुज्ञा प्रदान कर दी गई । इस निर्णय में पक्षों को वादपत्र में दिए गए उनके अपने-अपने नामों से संबोधित किया जाएगा ।

3. पक्षों द्वारा स्वीकृत तथ्य ये हैं कि वादी डी-1 का अंगीकृत पुत्र है और स्व. अहल्या साहू उसकी पत्नी है, जिसकी मृत्यु 24 दिसम्बर, 1993 को हो चुकी है ; उक्त अहल्या साहू स्व. आरता साहू और स्व. निशामणि की एकमात्र पुत्री थी ; वादपत्र की अनुसूची में लॉट सं. 1 में वर्णित वादगत अचल संपत्ति भागतः अहल्या साहू के नाम में उसके माता-पिता द्वारा खरीदी गई थी और भागतः उसने यह संपत्ति अपनी माता निशामणि से विरासत में प्राप्त की ; अहल्या के मृत्यु के पश्चात् उसका अंगीकृत पुत्र (वादी) अपने मामा के घर चला गया जहां अवयस्कता के दौरान उसका पालन-पोषण हुआ ; वादी का अंगीकारी पिता (प्रतिवादी सं. 1) ने वादपत्र की अनुसूची के लॉट सं. 1 में वर्णित संपत्ति को प्रतिवादी सं. 2 और 3 के पक्ष में रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख सं. 5437 तारीख 28 दिसम्बर, 1993 के अंतर्गत अहल्या के मृत्यु के मात्र चार दिनों के पश्चात् और वादी की अवयस्कता के दौरान हस्तांतरित कर दिया था ।

वादी ने घोषणा का अनुतोष प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ अन्य बातों के साथ यह अभिकथित करते हुए वादपत्र फाइल किया कि तारीख 28 दिसम्बर, 1993 का रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख सं. 5437 उस पर बाध्यकारी नहीं है और विक्रय-विलेख के अंतर्गत विक्रेता (डी-2 और डी-3) को कोई हक अंतरित नहीं हुआ ।

4. संक्षेप में वादी का पक्षकथन यह है कि उसने वादगत अचल संपत्तियां अपने माता से उनकी वसीयत द्वारा प्राप्त की थीं और इसलिए ये

संपत्तियां अहल्या के पति (डी-1) को न्यागत नहीं होती । आगे, उसका पक्षकथन यह है कि डी-1 को वादगत अचल संपत्तियों में कोई अधिकार, हक और हित नहीं है और इसलिए उसके द्वारा निष्पादित विक्रय-विलेख डी-2 और डी-3 को कोई हक अंतरित नहीं करते । वादी का यह पक्षकथन भी है कि संभवतः डी-2 और डी-3 ने दिखावटी विक्रय-विलेख की व्यवस्था की होगी चूंकि विलेख का निष्पादन डी-1 का मानसिक कार्य प्रतीत नहीं होता ।

5. प्रतिवादियों ने इस अभिकथन से इनकार करते हुए संयुक्त लिखित कथन फाइल किया कि रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख दिखावटी विलेख है । उन्होंने अभिकथन किया कि डी-1 परिवार का कर्ता था जिसमें उसकी पत्नी, पुत्र और वह स्वयं समाविष्ट थे । पत्नी की मृत्यु के पश्चात् डी-1 अपने अवयस्क पुत्र, जो शिक्षा प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ अपने मामा के घर पढ़ रहा था, को समस्त वित्तीय सहायता प्रदान कर रहा था । डी-1 ने विधिक आवश्यकताओंवश अर्थात् अहल्या के श्राद्ध कार्यक्रम के खर्चों को पूरा करने के लिए और मकान बनाने के लिए वादगत अचल संपत्तियों को हस्तांतरित कर दिया था । विक्रय संव्यवहार 50,000/- रुपए के प्रतिफल के लिए किया गया था जिसका संदाय डी-1 को किया गया था और तत्पश्चात् कब्जे का हस्तांतरण कर दिया गया था । भूमि के अंतरण के पश्चात्, डी-2 और डी-3 उसके कब्जे में आ गए । यह दावा भी किया गया है कि अहल्या की मृत्यु के पश्चात् वादगत संपत्ति वादी और डी-1 को 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 15 (1)(क) में समाविष्ट उपबंधों के अनुसार एक साथ न्यागत हो गई ।

6. दोनों ही विद्वान् निचले न्यायालयों ने अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि अहल्या की मृत्यु हो गई थी और उसके एक पुत्र विद्यमान था और विरासत का स्रोत उसके पिता-माता और उत्तराधिकार का नियम अधिनियम की धारा 15(2)(क) द्वारा शासित होगा और तद्नुसार वादगत अचल संपत्ति उसके पति को अपवर्जित करते हुए उसके पुत्र को न्यागत होगी । अपीलार्थियों की ओर से यह दलील दी गई कि विद्वान् निचले न्यायालयों ने अधिनियम की धारा 15(2)(क) की परिधि का गलत अर्थ निकाला है, चूंकि अहल्या की मृत्यु के समय उसका एक पुत्र था, अधिनियम की धारा 15(1) सपठित धारा 16(1) के अधीन अधिकथित उत्तराधिकार का सामान्य नियम इस मामले में लागू होगा और संपत्ति पुत्र और पति एक साथ उत्तराधिकार में प्राप्त करेंगे ।

7. द्वितीय अपील विधि के निम्नलिखित सारवान् प्रश्नों पर विचाराणार्थ ग्रहण की गई है :–

(1) जब स्वीकृत तथ्य ये हैं कि मृतक अहल्या की मृत्यु के समय उसका पुत्र और पति विद्यमान थे और वादपत्र की अनुसूची में वर्णित संपत्ति का लॉट सं. 1 उसको उसके पिता-माता से विरासत में प्राप्त हुआ था, तो क्या विद्वान् निचले न्यायालय ने यह समवर्ती निष्कर्ष अभिलिखित करने में विधि की दृष्टि में त्रुटि कारित की कि संपत्ति उसके पति और पुत्र दोनों को एक साथ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15(1)(क) के अधीन न्यागत नहीं होगी किन्तु यह केवल उसके पुत्र को ही न्यागत होगी ?

(2) यदि वादपत्र के अनुसूची के लॉट सं. 1 में वर्णित संपत्ति पिता और पुत्र दोनों को एक साथ न्यागत होगी, तो क्या 1956 के हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 8 पिता द्वारा किए गए संपत्ति के अंतरण के विरुद्ध क्रियान्वित होगी ?

8. तुरंत निदेश के प्रयोजनार्थ अधिनियम की धारा 15 में समाविष्ट विधि के उपबंधों को नीचे उद्धृत किया गया है :–

"15. हिन्दू नारी की दशा में उत्तराधिकार के साधारण नियम – (1) निर्वसीयत मरने वाली हिन्दू नारी की संपत्ति धारा 16 में दिए गए नियमों के अनुसार निम्नलिखित को न्यागत होगी –

(क) प्रथमतः पुत्रों और पुत्रियों (जिसके अंतर्गत किसी पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के अपत्य भी हैं) और पति को ;

(ख) द्वितीयतः पति के वारिसों को ;

(ग) तृतीयतः, माता और पिता को ;

(घ) चतुर्थतः, पिता के वारिसों को ; तथा

(ङ) अंततः, माता के वारिसों को ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी –

(क) कोई संपत्ति जिसकी विरासत हिन्दू नारी को अपने पिता या माता से प्राप्त हुई हो, मृतक के पुत्र या पुत्री के (जिसके अंतर्गत किसी पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के अपत्य भी आते हैं) अभाव में उपधारा (1) में निर्दिष्ट अन्य वारिसों को उसमें

विनिर्दिष्ट क्रम से न्यागत न होकर पिता के वारिसों को न्यागत होगी ; तथा

(ख) कोई संपत्ति जो हिन्दू नारी को अपने पति या अपने श्वसुर से विरासत से प्राप्त हुई हो, मृतक के किसी पुत्र या पुत्री के (जिसके अंतर्गत किसी पूर्व मृत पुत्र या पुत्री या अपत्य भी आते हैं) अभाव में उपधारा (1) में निर्दिष्ट अन्य वारिसों को उसमें विनिर्दिष्ट क्रम से न्यागत न होकर पति के वारिसों को न्यागत होगी ।

विधि की इस प्रतिपादना के बाबत कोई विवाद नहीं है कि यदि कोई हिन्दू नारी की मृत्यु बिना कोई वसीयत निष्पादित किए और बिना किसी संतान के हो जाती है तो उसको अपने पिता या माता से विरासत से मिली हुई संपत्ति उसके पिता के वारिसों को न्यागत हो जाएगी जबकि जो संपत्ति उसको अपने पति या श्वसुर से विरासत से प्राप्त हुई, उसके पति के वारिसों को न्यागत हो जाएगी । मेरे समक्ष उपस्थित मामले में हिन्दू नारी की मृत्यु हो चुकी है और उसका कोई पुत्र या पति भी जीवित नहीं है और वादगत संपत्ति को उसने अपने पिता-माता से विरासत से प्राप्त किया है । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल के अनुसार ऐसी आकस्मिकता में अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (1) के अनुसार संपत्ति उसके पुत्र और पति को एक साथ न्यागत होगी । किन्तु प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार पति को अपवर्जित कर दिया गया है ।

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विधि के ऊपर निर्दिष्ट उपबंधों का विश्लेषण करते हुए **वी. डंडापाणी चेतियार** बनाम **बालासुब्रमणयम् चेतियार (मृतक) द्वारा विधिक उत्तराधिकारी और अन्य**[1] वाले मामले में निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

"9. उपरोक्त धारा हिन्दू नारी, जिसकी मृत्यु अधिनियम के आरंभ होने के पश्चात् बिना कोई वसीयत निष्पादित किए हो जाती है, की संपत्ति के उत्तराधिकार की निश्चित और समान योजना प्रतिपादित करती है । यह धारा निर्वसीयत मृत्यु को प्राप्त होने वाली नारी के वारिसों को पांच कोटियों, जिनको प्रविष्टियों (क) से (ङ) में

[1] 2003 (II) ओ. एल. आर. (एस. सी.) 497.

वर्णित किया गया है और उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किया गया है, में समूहबद्ध करती है । दो अपवाद, जो एक ही प्रकृति के हैं, उपधारा (1) द्वारा विहित अन्यथा रूप से उत्तराधिकार की समान क्रमबद्धता पर उपधारा (2) द्वारा अधिकथित किए गए हैं । वे दो अपवाद ये हैं कि यदि नारी की मृत्यु बिना किसी संतान के हो जाती है, तो (1) उसके द्वारा अपने पिता या माता से विरासत में मिली हुई संपत्ति प्रविष्टि (क) से (ङ) में अधिकथित पांच क्रमों के अनुसार न्यागत नहीं होगी, किन्तु पिता के वारिसों को न्यागत होगी ; और (2) उस संपत्ति के संबंध में जो उसने अपने पिता या श्वसुर से विरासत में प्राप्त की है, उपधारा (1) की पांच प्रविष्टियों (क) से (ङ) में अधिकथित क्रमानुसार न्यागत नहीं होगी बल्कि पति के वारिसों को न्यागत होगी । ऊपर वर्णित दोनों अपवाद उन संपत्तियों तक सीमित हैं जिनको हिन्दू नारी के पिता, माता, पति और श्वसुर से विरासत से प्राप्त किया गया है और उस संपत्ति को प्रभावित नहीं करते जो उसको उपहार या वसीयत या दोनों में किसी एक द्वारा प्राप्त हुई हैं । वर्तमान धारा 15 को धारा 16 के सामंजस्य में पढ़ा जाना चाहिए जो उसकी संपत्ति की नई और समान क्रमबद्धता को अन्तर्वलित करते हैं और उस संपत्ति के वितरण के तरीके को विनियमित करते हैं । अन्य शब्दों में पिता या माता से उसको विरासत में प्राप्त हुई संपत्ति के मामले में उत्तराधिकार का क्रम और उसका क्रियान्वयन ऐसे मामले तक सीमित है जहां मृतक हिन्दू नारी का कोई पुत्र, पुत्री या किसी पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के बच्चे विद्यमान नहीं हैं ।

10. धारा 15 के उपधारा (2) ऐसी मृतक नारी के मामले में एक अपवाद सृजित करती है जिसकी मृत्यु निर्वसीयत और कोई पुत्र, पुत्री या किसी पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के बच्चे छोड़े बिना हुई है । ऐसे मामले में जो नियम विहित किया गया है यह है कि उसे स्रोत का पता लगाया जाय जिससे उसने संपत्ति विरासत में प्राप्त की है । यदि उसने संपत्ति अपने पिता या माता से विरासत में प्राप्त की, तो वहां धारा 15(2)(क) के अधीन विहित प्रक्रियानुसार न्यागत होगी । यदि उसने संपत्ति अपने पति या श्वसुर से विरासत में प्राप्त की, तो वहां धारा 15(2)(ख) के अधीन विहित प्रक्रियानुसार न्यागत होगी । यह धारा अधिनियमित करती है कि ऐसे मामले में जहां नारी द्वारा संपत्ति उसके पिता या माता से विरासत में प्राप्त की गई है, उसके वारिसों को न्यागत नहीं होगी बल्कि उसके पिता के वारिसों को न्यागत होगी ।

इसका अर्थ यह होगा कि यदि उसका कोई पुत्र या पुत्री, पूर्व मृत किसी पुत्र या पुत्री के बच्चों को सम्मिलित करते हुए विद्यमान नहीं है तो संपत्ति उसके पिता के वारिसों को न्यागत होगी । इसका परिणाम यह होगा – यदि नारी द्वारा संपत्ति अपने पिता या माता से विरासत में प्राप्त की जाती है, तो न तो उसका पति और न ही पति के वारिस उस संपत्ति को प्राप्त नहीं कर सकेंगे, बल्कि वह संपत्ति उसके पिता के वारिसों को लौट जाएगी ।

10. **ए. आर. श्रीनिवास और अन्य** बनाम **वी. एस. पदमावथम्मा**[1] वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की गई :–

".....धारा 15(2)(क) का आधारी उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि निर्वसीयत मृत्यु को प्राप्त होने वाली हिन्दू नारी को विरासत में मिली हुई संपत्ति उसी स्रोत को वापस लौट जाती है जहां से आई थी । इस धारा को इस उद्देश्य के साथ अधिनियमित किया गया था कि विरासत में मिली हुई संपत्ति को बाहरी व्यक्तियों के हाथों में जाने से रोका जा सके ।

दिलीप कुमार बनाम **दामोदर नारायण राव रमण गुडकर**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि जहां निर्वसीयत मृत्यु को प्राप्त होने वाली हिन्दू नारी का पुत्र और पति जीवित है, धारा 15(1) लागू होगी चूंकि अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (2) के उपबंधों से यह स्पष्ट है कि मृतका के किसी पुत्र या पुत्री (पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के बच्चों को सम्मिलित करते हुए) की अनुपस्थिति अधिनियम की धारा 15(2) के उपबंध के उपयोजन के लिए पुरोभाव शर्त है ।

11. अधिनियम की धारा 15(2) के उपबंधों के प्रकाश में मुल्ला द्वारा लिखित "हिन्दू विधि के सिद्धांतों" (21वां संस्करण, 2010) पर नामक पुस्तक में विश्लेषण किया गया है । पुस्तक के पृष्ठ 1185 से 1186 पर अधिनियम की धारा 15 में अधिकथित विधि को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया गया है :–

(1) उपधारा (1) की प्रविष्टियों (क) से (ङ) में अधिकथित उत्तराधिकार का सामान्य क्रम निर्वसीयत मृत्यु को प्राप्त होने वाली

---

[1] 2010 (II) ओ. एल. आर. (एस. सी.) 286 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3935.

[2] ए. आई. आर. 2006 कर्नाटक 115.

किसी हिन्दू नारी की समस्त संपत्तियों पर लागू होता है, चाहे उसने वह संपत्ति उसके पिता, माता, पति या श्वसुर से विरासत में अर्जित की हो ।

(2) निर्वसीयत मृत्यु को प्राप्त होने वाली नारी जिसका पुत्र या पुत्री या पूर्व मृत पुत्र या पूर्व मृत पुत्री का बच्चा जीवित है, की समस्त संपत्ति, चाहे वह किसी भी प्रकार से अर्जित की गई हो, उक्त संतानों को न्यागत होती है चाहे संपत्ति के अर्जन का स्रोत कुछ भी हो और वे संतानें संपत्ति को एक ही समय पर अर्जित कर लेती हैं ; और यदि निर्वसीयत मृत्यु को प्राप्त होने वाली हिन्दू नारी का पति जीवित है तो वे संतानें उसके (पति के) साथ प्रविष्टि क के अनुसार संपत्ति को अर्जित करेंगे । ऐसे मामले में उपधारा (2) किसी भी प्रकार से क्रियान्वित नहीं होगी ।

(3) निर्वसीयत मृत्यु को प्राप्त होने वाली नारी के मामले में, जिसकी कोई संतान जीवित नहीं है किन्तु पति जीवित है, पति उसकी समस्त संपत्ति को अर्जित करेगा सिवाय उस संपत्ति के जो उसने अपने पिता या माता से विरासत से प्राप्त की है जो पिता के वारिसों को, जो उनकी मृत्यु के समय जीवित है, वापस लौट जाएगी ।

(4) निर्वसीयत मृत्यु को प्राप्त होने वाली नारी के मामले में, जिसकी मृत्यु के समय उसकी कोई संतान जीवित नहीं थी, उसके द्वारा उसके पति या श्वसुर (यदि पति की मृत्यु हो चुकी है) से विरासत में प्राप्त संपत्ति पति के वारिसों को वापस लौट जाएगी न कि उपधारा (1) में अधिकथित उत्तराधिकार के सामान्य क्रम के अनुसार न्यागत होगी ।

(5) निर्वसीयत मृत्यु को प्राप्त होने वाली नारी के मामले में, जिसकी कोई संतान जीवित नहीं है, उसके द्वारा उसके पिता या माता से विरासत से मिली हुई संपत्ति पिता के वारिसों, जो उसकी मृत्यु के समय जीवित है, को वापस लौट जाएगी और न कि उपधारा (1) में अधिकथित उत्तराधिकार के सामान्य क्रम के अनुसार ।

पुस्तक के पृष्ठ 1189 पर उदाहरण सं. (ii) यह है कि यदि हिन्दू नारी की मृत्यु के समय उसका पति और कोई संतान जीवित है, तो उसकी समस्त संपत्ति, उस संपत्ति को सम्मिलित करते हुए जो उसने अपने माता-पिता से विरासत में प्राप्त की है, उसके पति और संतानों को, जैसा कि अधिनियम की धारा 15(1) की प्रविष्टि (क) में

वारिसों को विनिर्दिष्ट किया गया है, को एक साथ न्यागत होगी । उदाहरण को नीचे उद्धृत किया गया है –

> (ii) ए की मृत्यु के समय उसका पुत्र एस, अंगीकृत पुत्री डी और उसका पति एच जीवित हैं । ए की समस्त संपत्ति चाहे वह किसी भी प्रकार से अर्जित की गई हो, एस, डी और एच को एक साथ न्यागत होगी जैसाकि प्रविष्टि क में वारिसों को विनिर्दिष्ट किया गया है ।

12. अधिनियम की धारा 15 में समाविष्ट उत्तराधिकार के नियम के पूर्वोक्त विश्लेषण से यह समझा जा सकता है कि जबकि धारा 15(1) उत्तराधिकार के सामान्य नियम को अधिकथित करती है, उपधारा (2) जो सर्वोपरि खंड के साथ आरंभ होती है, दो अपवाद सृजित करती है : (i) यदि नारी की मृत्यु बिना किसी संतान के होती है, तो उसके द्वारा उसके पिता या माता से विरासत में मिली हुई संपत्ति उपधारा (1) में अधिकथित सामान्य नियम के अनुसार न्यागत नहीं होगी, बल्कि उसके पिता के वारिसों को न्यागत होगी और (ii) यदि नारी की मृत्यु बिना किसी संतान की होती है, तो उसके द्वारा उसके पति या ससुराल पक्ष से विरासत में प्राप्त संपत्ति उपधारा (1) में अधिकथित सामान्य नियम के अनुसार न्यागत नहीं होगी बल्कि पति के वारिसों को न्यागत होगी । अतः यह स्पष्ट किया जाता है कि जब किसी हिन्दू नारी की मृत्यु निर्वसीयत और बिना किसी पुत्र, पुत्री या पूर्व मृत पुत्र या पुत्र के बच्चों की विद्यमानता की होती है, तो उसके द्वारा उसके पिता या माता और/या पति या श्वसुर से विरासत में प्राप्त संपत्ति उसी स्त्रोत को वापस लौट जाएगी जहां से प्राप्त की गई थी । विधि की इस स्थिति से ये अर्थ निकाला जा सकता है कि यदि किसी हिन्दू नारी की मृत्यु निर्वसीयत और बिना किसी संतान की विद्यमानता की होती है तो अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (2) में समाविष्ट अपवाद क्रियान्वित नहीं होंगे और अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (1) में समाविष्ट उत्तराधिकार का सामान्य नियम लागू होगा ।

13. विद्वान् निचले अधीनस्थ न्यायालय का विचार है कि चूंकि उपधारा (2) सर्वोपरि खंड के साथ आरंभ होती है, उपधारा (1) के उपबंध की सहायता नहीं ली जा सकती और पूर्ववर्ती खंड को पश्चात्वर्ती खंड से अलग करके पढ़ा जाएगा । तत्पश्चात् विद्वान् निचला न्यायालय यह अभिनिर्धारित करते हुए अग्रसर हुआ कि यदि किसी हिन्दू नारी की मृत्यु संतान की विद्यमानता में होती है तो वह संपत्ति जो उसने अपने माता-पिता से विरासत में प्राप्त की थी, संतान (पुत्र या पुत्री जिसमें पूर्व मृत पुत्र या

पुत्री के बच्चे भी सम्मिलित हैं) को न्यागत होगी और पति को सम्मिलित करते हुए किसी अन्य वारिस को नहीं जैसा कि उपधारा (1) में सूचीबद्ध है । विद्वान् निचले अपील न्यायालय के अनुसार पति किसी भी परिस्थिति में उस संपत्ति के संबंध में परिदृश्य पर नहीं आएगा जिसको हिन्दू नारी ने विरासत में अपने पिता-माता से प्राप्त किया था ।

14. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने विद्वान् निचले न्यायालयों के उक्त मत को **राधिका** बनाम **अघनू राम**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए न्यायानुमत को ठहराया । **राधिका** (उपरोक्त) वाले मामले में हिन्दू नारी (राधिका) की मृत्यु उसकी पति और एक पुत्र की विद्यमानता में हो गई थी । उसके पति ने वर्ग-I वारिस के रूप में आधे भाग का दावा करते हुए वाद फाइल किया । विचारण न्यायालय ने वाद को इस आधार पर खारिज कर दिया कि राधिका ने अपने जीवनकाल के दौरान अपनी संपत्तियों की वसीयत अपने पुत्र के पक्ष में उपहार विलेख द्वारा कर दी थी । प्रथम अपील में जिला न्यायाधीश ने डिक्री को पलट दिया और अभिनिर्धारित किया कि उपहार विधिमान्य नहीं था और पति और पुत्र वर्ग-I वारिस होने के कारण संपत्ति के बराबर अंश के बंटवारे के हकदार हैं । जिला न्यायाधीश की डिक्री को चुनौती देते हुए द्वितीय अपील फाइल की गई जो खारिज कर दी गई । विशेष अनुमति के द्वारा फाइल की गई अपील में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम की धारा 15 के उपबंधों का उल्लेख करते हुए मताभिव्यक्ति की कि हिन्दू नारी द्वारा उसके पिता या माता से विरासत से प्राप्त की गई संपत्ति का उत्तराधिकार उसके पुत्र, पुत्री या पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के बच्चों की अनुपस्थिति में पिता या माता के वारिसों को होगा, न कि अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (1) और धारा 16 के आदेश में विनिर्दिष्ट क्रम में वर्ग-I वारिसों को । अन्य शब्दों में यह मताभिव्यक्ति की गई कि हिन्दू नारी के केवल बच्चे और पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के बच्चे ही संपत्ति प्राप्त करने के हकदार हैं और पति हिन्दू नारी द्वारा उसके पिता के पक्ष से वसीयत में प्राप्त संपत्ति के उत्तराधिकार से विवर्जित हो जाता है ।

15. यह सत्य है कि हमारे समक्ष उपस्थित मामले में तथ्यात्मक स्थिति **राधिका** (उपरोक्त) वाले मामले की तथ्यात्मक स्थिति के समान है । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेलों ने यह निवेदन करते हुए दोनों मामलों की तथ्यात्मक स्थिति में विभेद करने का प्रयास किया कि **राधिका** (उपरोक्त) वाले

---

[1] (1995) 2 ईस्ट एल जे. 13 (एस. सी.).

मामले में मृतक राधिका ने उपहार विलेख के अधीन वादगत संपत्ति की वसीयत अपने पुत्र के पक्ष में वसीयत कर दी थी । किन्तु इस प्रकार से विभेद नहीं किया जा सकता । माननीय उच्चतम न्यायालय की उपरोक्त मताभिव्यक्ति अधिनियम की धारा 15(2) के अधीन अधिकथित नियम के सामान्य प्रयोज्यता के आधार पर हैं । तथापि, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई उक्त मताभिव्यक्तियों का सम्मान करते हुए इस न्यायालय का विचार है कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **वी. डंडापाणी चेतियार** (उपरोक्त) और **एस. आर. श्रीनिवास** (उपरोक्त) वाले मामले, जिसमें राधिका वाले मामले के निर्णय के पश्चात् निर्णय पारित किया गया, में की गई मताभिव्यक्ति का अनुसरण किया जाना चाहिए और तद्नुसार यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि हिन्दू नारी की संपत्ति, जिसको उसने अपने पिता-माता से विरासत में प्राप्त किया, किसी संतान की विद्यमानता में उसके पति और संतान (नों) को अधिनियम की धारा 15(1) सपठित धारा 16 के अनुसार एक साथ न्यागत होगी ।

16. जहां तक 1956 के हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 8 की प्रयोज्यता पर द्वितीय प्रश्न का संबंध है, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि जब संपत्ति वादी और प्रतिवादी सं. 1 (मृतक हिन्दू नारी का पुत्र और पति) को एक साथ न्यागत हो गई और उक्त संपत्ति का कोई विभाजन भी नहीं हुआ, तो हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 8 की उपधारा 2 और 3 लागू नहीं होगी और परिणामस्वरूप डी-1 द्वारा निष्पादित विक्रय-विलेख जिसके द्वारा संपूर्ण लॉट सं. 1 संपत्तियों का हस्तांतरण प्रत्यर्थियों के पक्ष में कर दिया गया, वादी की पहल पर व्यर्थनीय नहीं है । इस दलील के समर्थन में विद्वान् काउंसेल ने **श्री नारायण बल** बनाम **श्रीधर सुतार**[1], **सुनामणि देवी** बनाम **बाबाजी दास और अन्य**[2] और **नारायण लक्षमण गिलांकर** बनाम **उदया कुमार काशीनाथ कौशिक**[3], वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों को उद्धृत किया । किन्तु ये सभी निर्णय ऐसी संपत्ति के संबंध में हैं जिनमें संयुक्त हिन्दू परिवार संपत्ति में अवयस्क का अविभाजित भाग था । विधि सुस्थापित है कि संयुक्त परिवार संपत्ति के मामले में अवयस्क का हित हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 और 12 की

---

[1] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 2371.

[2] ए. आई. आर. 1974 उड़ीसा 184.

[3] ए. आई. आर. 1994 बाम्बे 152.

परिधि के बाहर रखा जाता है । संयुक्त परिवार संपत्ति के मामले में अवयस्क के अविभाजित भाग के संबंध में उसका नैसर्गिक संरक्षक हिन्दू विधि के अनुसार आवश्यक कार्रवाई कर सकता है । किन्तु संपत्ति जो हमारे समक्ष उपस्थित मामले की विषयवस्तु है, संयुक्त परिवार संपत्ति की प्रकृति की नहीं कही जा सकती और मात्र इस कारणवश कि संपत्तियां पिता और पुत्र को एक साथ न्यागत हो गईं, यह नहीं कहा जा सकता कि पुत्र का संयुक्त परिवार संपत्ति में अविभाजित हित था । इसलिए हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 8 पिता द्वारा तारीख 23 नवम्बर, 1993 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख के अधीन किए गए संपत्ति अंतरण के विरुद्ध क्रियान्वित होगी । परिणामस्वरूप, विक्रय संव्यवहार वादपत्र की अनुसूची के लॉट सं. 1 में अवयस्क के 50% की हित की सीमा तक व्यर्थनीय है ।

17. द्वितीय अपील विधि के दोनों सारवान् प्रश्नों के उत्तरों को दृष्टि में रखते हुए मंजूर की जाती है । विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री जिनके द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई, अपास्त किए जाते हैं । वादी का वाद भागतः डिक्री किया जाता है । तारीख 23 नवम्बर, 1993 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा किया गया विक्रय संव्यवहार वादपत्र की अनुसूची के लॉट सं. 1 में वादी के 50% हित की सीमा तक शून्य अभिनिर्धारित किया जाता है । क्योंकि वाद वर्ष 1994 का है और यह न्यायालय नहीं चाहता कि पक्षों को उनके हिस्सों के सृजन कराए जाने के प्रयोजनार्थ मुकदमेबाजी के एक अन्य दौर की ओर धकेला जाए, यह न्यायालय मताभिव्यक्ति करती है कि इस डिक्री को दोनों पक्षों को विचारण न्यायालय के शरण में जाने की स्वतंत्रता देते हुए आरंभिक डिक्री प्रतीत किया जाए जिससे वे संपत्ति को विभाजित कराए जाने के प्रयोजनार्थ अंतिम डिक्री बनाए जाने की कार्यवाही आरंभ कर सकें ।

लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

शु.

———————

पी. सुन्दर राज

बनाम

पी. सारिका राज

तारीख 2 मार्च, 2015

न्यायमूर्ति एस. एस. सैरन और न्यायमूर्ति सुश्री नवीता सिंह

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13ख – पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद – विवाह के दोनों पक्षकारों द्वारा पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह के विघटन के लिए अर्जी प्रस्तुत किया जाना – न्यायालय अर्जी पेश किए जाने की तारीख से छह माह की प्रतीक्षा अवधि के पश्चात् और उस तारीख से अठारह माह के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर पक्षकारों को सुनने और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह उचित समझे, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा, इसलिए छह माह की प्रतीक्षा अवधि आज्ञापक है ।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13ख [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 23, नियम 3] – पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद – हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के विशिष्ट उपबंधों का आश्रय लेते हुए पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की जा सकती है और इस धारा के विशिष्ट उपबंधों का सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 जैसी अन्य प्रक्रियाओं का पालन किए जाने के द्वारा लघुकरण नहीं किया जाना चाहिए ।

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 7 [सपठित हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख] – कुटुम्ब न्यायालय कुटुम्ब से संबंधित विवादों पर विचार करते समय ऐसा दृष्टिकोण अपनाएगा जो सामान्य न्यायालयों द्वारा अंगीकृत किए जाने वाले दृष्टिकोण से पूर्णतया भिन्न होगा और उनको विचारण आरंभ करने के पूर्व कुटुम्ब विवाद के शांतिपूर्ण निपटारे के लिए युक्तिसंगत प्रयास करने होंगे, कुटुम्ब न्यायालय का प्राथमिक उद्देश्य वैवाहिक और कुटुम्ब विवादों से संबंधित मामलों के न्यायिक न्यायनिर्णयन के बजाय सुलह और शांतिपूर्ण निपटारे को प्रोन्नत करना है, कुटुम्ब न्यायालय सीमित अधिकारिता वाला

अधिकरण होता है जिसको धारा 7(1) और उसके स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट कार्यवाहियों के न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होती हैं और न्यायिक शक्ति के प्रयोजनार्थ यह सिविल अधिकारिता के न्यायालयों के सामान्य पदानुक्रम का भाग होता है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का विवाह अभिनिर्धारित तारीख 30 अक्तूबर, 2002 को संपन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए और दोनों पक्ष हैदराबाद में रहने लगे । उनके मध्य वैवाहिक विवाद हो जाने के कारण प्रत्यर्थी-पत्नी ने 2008 की मूल याचिका सं. 1083 हैदराबाद के विद्वान् न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष तारीख 5 जनवरी, 2009 को क्रूरता के आधार पर उनके विवाह के विघटन की ईप्सा करते हुए फाइल की । उक्त मूल याचिका में यह अभिकथित किया गया कि पक्षों के मध्य विवाह मुख्यतः उन कर्मकांडों, प्रथाओं और आदतों के कारण उत्पन्न हुआ जिनका अनुसरण (अपीलार्थी-पति के परिवार में) किया जाता था । उक्त मूल याचिका में अभिकथित किया गया कि अपीलार्थी-पति और उसके माता-पिता प्रत्यर्थी पत्नी के साथ उनकी प्रथाओं का अनुसरण न किए जाने के कारण क्रूरता का बर्ताव करते थे । इसलिए यह प्रार्थना की गई कि विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान की जाए । कुटुम्ब न्यायालय में अभिकथित रूप से तारीख 4 जनवरी, 2009 को एक समझौता ज्ञापन फाइल किया गया । उक्त समझौता ज्ञापन में यह अभिकथित किया गया कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा विवाह के विघटन की डिक्री की ईप्सा करते हुए याचिका फाइल की गई थी । तत्पश्चात् दोनों पक्षों के नातेदारों और बुजुर्गों ने सलाह दी कि मामले का निपटारा शांतिपूर्वक किया जाए । इसलिए दोनों पक्षों ने उनके मध्य के वैवाहिक संबंध को शांतिपूर्वक समाप्त करने का निर्णय लिया है । अब उनके मध्य सुलह का कोई अवसर शेष नहीं रह गया है । इसके अतिरिक्त उनके मध्य गंभीर मतभेद हैं जिन पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता । इसलिए दोनों पक्षों ने आगे की विधिक कार्यवाहियों से बचने के लिए सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की कार्यवाही को आगे बढ़ाने का निर्णय लिया है । दोनों पक्षों के मध्य यह सहमति हुई कि दोनों बच्चों की अभिरक्षा अपीलार्थी-पति को दी जाएगी, प्रत्यर्थी-पत्नी सुविधानुसार समय पर मुलाकात के अधिकार की हकदार होगी और अपीलार्थी को इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी । समझौता ज्ञापन में आगे यह अभिलिखित किया गया कि प्रत्यर्थी-पत्नी कार्यरत है और अपना निर्वाह कर पाने की हैसियत रखती है, इसलिए वह अपीलार्थी से या उसकी संपत्ति से या वार्षिक आमदनी से

या वित्तीय स्रोतों से किसी स्थायी निर्वाह व्यय या मासिक भरणपोषण का दावा नहीं कर रही है, प्रत्यर्थी-पत्नी ने निर्णय लिया है कि वह अपने दोनों बच्चों को अपीलार्थी-पति, जो नैसर्गिक संरक्षक है, के पास छोड़ देगी और भविष्य में भी बच्चों पर कोई दावा नहीं करेगी, विवाह-विच्छेद के लिए सहमति के आधार पर डिक्री पारित किए जाने के प्रयोजनार्थ मूल याचिका में संयुक्त समझौता ज्ञापन फाइल किए जाने के बाबत पक्षों के मध्य कोई दुरभिसंधि नहीं है । हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय ने उपरोक्त समझौता ज्ञापन को "पी. सुन्दर राज बनाम पी. सारिका राज" से "पी. सारिका राज और पी. सुन्दर राज" में परिवर्तित कर दिया ; इसके अतिरिक्त याचिका के शीर्ष टिप्पण में आदेश पारित किए गए आदेश और डिक्री में उल्लेख किया गया, "याचिका सं. 1 और याचिका सं. 2 के मध्य तारीख 14 अगस्त, 2005 को संपन्न विवाह को पारस्परिक सहमति के आधार पर विघटित किए जाने के प्रयोजनार्थ 1955 के हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन फाइल की गई याचिका" । तारीख 5 जनवरी, 2009 को पारित आदेश में यह उल्लेख किया गया कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 (1)(iक) के अधीन याचिका पी. सारिका राज द्वारा उसके पति पी. सुन्दर राज के विरुद्ध विवाह-विच्छेद के लिए फाइल की गई थी, उन्होंने शुभचिंतकों और बुजुर्गों के मध्यक्षेप के कारण अपने विवाद का निपटारा शांतिपूर्वक कर लिया है और समझौते की शर्तों, जिसको सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में "सी.पी.सी.") के आदेश 23, नियम 3 के अधीन फाइल की गई याचिका के साथ न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया था, को अभिलिखित किए जाने की प्रार्थना की । पक्षों को व्यक्तिगत रूप से और उनके काउंसेलों के सुने जाने के पश्चात् सी. पी. सी. के आदेश 23, नियम 3 के अधीन फाइल की गई याचिका को मंजूर कर लिया गया । उक्त आदेश में समझौते की शर्तों और विवाह को विघटित किए जाने के लिए पारित किए गए आदेश का उल्लेख किया गया था । तारीख 5 जनवरी, 2009 को डिक्री इस आधार पर तैयार की गई थी कि याचिका हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन फाइल की गई थी । डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा 2009 का मूल वाद सं. 468 हैदराबाद के विद्वान् परिवार न्यायाधीश के न्यायालय में तारीख 24 जुलाई, 2009 को 1963 के विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 31(1)(2) के अधीन फाइल किया गया था । (इस मूल वाद में) 2008 की मूल याचिका सं. 1083 में पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 के आदेश और डिक्री के रद्दकरण की ईप्सा की गई । यह अभिकथित किया गया कि

प्रत्यर्थी-पत्नी ने सुसंगत कागजातों पर अपीलार्थी-पति द्वारा धमकाए जाने, प्रपीड़न किए जाने, मृत्यु भय दिए जाने, कपट किए जाने और अनुचित प्रभाव इत्यादि का प्रयोग किए जाने के कारण हस्ताक्षर किए थे और उसने इन कागजातों पर बिना पढ़े और बिना सहमति के हस्ताक्षर कर दिए थे । अपीलार्थी-पति ने वादी (प्रत्यर्थी-पत्नी) द्वारा फाइल किए गए वादपत्र के उत्तर में लिखित कथन डिक्री के रद्दकरण की ईप्सा करते हुए फाइल किया । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 31(1)(2) के अधीन फाइल किए गए 2009 के मूल वाद सं. 468 और अन्य संबद्ध प्रकीर्ण आवेदनों के हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय से गुड़गांव के कुटुम्ब न्यायालय को अंतरित किए जाने की ईप्सा करते हुए सी. पी. सी. की धारा 31 के अधीन माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष 2009 की अंतरण याचिका (सिविल) सं. 908-911 फाइल की । प्रत्यर्थी-पत्नी का अंतरण आवेदन माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 14 दिसंबर, 2009 को मंजूर कर लिया गया और 2009 का मूल वाद सं. 468, 2008 की मूल याचिका सं. 103 और संबद्ध प्रकीर्ण आवेदनों को हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय से गुड़गांव के जिला न्यायाधीश को अंतरित कर दिया गया । तत्पश्चात् मामले को गुड़गांव के जिला न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय को अंतरित कर दिया गया । गुड़गांव के जिला न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय ने तारीख 7 जून, 2012 के आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा प्रत्यर्थी-पत्नी की याचिका को स्वीकार कर लिया और हैदराबाद के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा 2008 की मूल याचिका सं. 1083 में पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 के निर्णय और डिक्री को रद्द कर दिया । इससे व्यथित होकर अपीलार्थी ने यह अपील गुड़गांव के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 7 जून, 2012 के निर्णय और डिक्री, जिसके द्वारा 2008 की मूल याचिका सं. 1083 में हैदराबाद के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख की अपेक्षाएं यह हैं कि पक्ष याचिका फाइल किए जाने के समय एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हों, इसके अतिरिक्त उनके मध्य पारस्परिक सहमति हो गई हो कि विवाह को विघटित कर दिया जाना चाहिए । उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह माह के पश्चात् और उस तारीख से 18 माह के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस न ली गई हो तो, न्यायालय पक्षकारों को सुनने

के पश्चात् और ऐसी जांच के पश्चात्, जो वह उचित समझे, अपना समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा । उक्त संघटकों का अनुसरण और अनुपालन हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 को पारित आदेश और उसके परिणामस्वरूप तैयार की गई डिक्री में किया जाना दर्शित नहीं किया गया है । पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए याचिका के प्रस्तुतीकरण से छह माह की प्रतीक्षा अवधि आज्ञापक है और इसका अनदेखा नहीं किया जा सकता । पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ याचिका के प्रस्तुतीकरण की तारीख से छह माह की प्रतीक्षा अवधि आज्ञापक है और इसका अधित्यजन नहीं किया जा सकता । हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख में प्रथम कार्रवाई की तारीख से छह माह की अवधि की क्रोध शांति अवधि के लिए उपबंधित किया गया है और जिससे कि दोनों पक्ष इस अवधि के दौरान अपना इरादा बदल दें । तद्नुसार पारस्परिक सहमति के आधार पर याचिका के प्रस्तुतीकरण और आरंभिक कार्यवाही के दौरान पक्षों से अपेक्षा की जाती है कि वे द्वितीय कार्यवाही के पूर्व छह माह की अवधि तक प्रतीक्षा करें और यदि उस अवधि के दौरान पक्ष अपना इरादा व्यक्त कर देते हैं कि वे एक साथ नहीं रह सकते, तो न्यायालय समुचित जांच करने के पश्चात्, जैसी कि वह उचित समझे, डिक्री की तारीख से विवाह को विघटित करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान कर सकता है । यह निःसंदेह रूप से सत्य है कि विधान-मंडल ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रयोग करते हुए पारस्परिक सहमति के आधार पर याचिका फाइल किए जाने की तारीख से उस समय तक जब विवाह-विच्छेद की डिक्री वास्तव में प्रदान की जाती है, के मध्य छह माह की अवधि का क्रोध शांति अवधि इस आशय के साथ अनुध्यात की है कि विवाह की संस्था को बचाया जा सके । इसलिए छह माह की प्रतीक्षा अवधि आज्ञापक है । फिर भी उच्चतम न्यायालय अपनी सर्वांगीण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए इस अवधि को क्षमा कर सकता है । तथापि, हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश को यह अधिकार प्राप्त नहीं था और वास्तव में वह याचिका फाइल किए जाने की तारीख से प्रथम कार्यवाही और द्वितीय कार्यवाही के मध्य छह माह की प्रतीक्षा अवधि को क्षमा नहीं कर सकता था और तारीख 5 जनवरी, 2009

का आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित नहीं कर सकता था । वास्तव में उक्त आक्षेपित आदेश में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि प्रतीक्षा अवधि को क्षमा कर दिया गया । फिर भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के अधीन आवेदन/याचिका पर विचार किया गया और उक्त आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की गई । पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की जा सकती है और पारित की जानी चाहिए जहां पक्ष हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के विशिष्ट उपबंधों का आश्रय लेते हुए पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने की ईप्सा करते हैं और अन्यथा नहीं । यह सुस्थापित है कि जहां किसी कार्य को किसी विशिष्ट रीति में किए जाने की शक्ति प्रदान की गई है, तो उस कार्य को उसी रीति में किया जाना चाहिए और किसी अन्य रीति में नहीं और उस कार्य का निर्वहन करने के अन्य सभी तरीके अनिवार्यतः वर्जित होंगे । इसलिए, पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के लिए अधिनियमित कानूनी उपबंधों का पालन किया जाना चाहिए और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 जैसी अन्य प्रक्रिया का पालन किए जाने के द्वारा और हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख में समाविष्ट अपेक्षाओं के अंतर्गत (छह माह की प्रतीक्षा अवधि को) क्षमा करके विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के द्वारा उनके साथ धोखा या उनका लघुकरण नहीं किया जाना चाहिए । कुटुम्ब न्यायालय सही अर्थ में अधिकरण होता है, जो राज्य द्वारा उसके संविधान के अंतर्गत संपोषित सिविल अधिकारिता के न्यायालयों का राज्य की न्यायिक शक्ति के प्रयोजनार्थ सामान्य पदानुक्रम का भाग होता है । यह न्यायालय राज्य के सभी न्यायिक कार्यों का निर्वहन करते हैं सिवाय उनके जिनको विधि द्वारा उनकी अधिकारिता से पृथक् कर दिया गया है । कुटुम्ब न्यायालयों को स्थापित किए जाने में विधान-मंडल के उद्देश्य को स्पष्टतः समझे जाने के प्रयोजनार्थ विधि आयोग की 59वीं रिपोर्ट को निर्दिष्ट किया गया जिसमें यह सिफारिश की गई थी कि न्यायालय कुटुम्ब से संबंधित विवादों पर विचार करते समय ऐसा दृष्टिकोण अंगीकृत करेंगे जो सामान्य सिविल न्यायालयों में अंगीकृत दृष्टिकोण से पूर्णतया भिन्न होगा और उनको विचारण के आरंभ के पूर्व शांतिपूर्ण निपटारे के लिए युक्तिसंगत प्रयास करने होंगे । यही विचार विधि आयोग की 230वीं रिपोर्ट में भी दोहराए गए थे । कुटुम्ब न्यायालय का प्राथमिक उद्देश्य वैवाहिक और कुटुम्ब विवादों से संबंधित मामलों के न्यायनिर्णय के बजाय उनमें सुलह और शांतिपूर्ण निपटारे को प्रोन्नत करना

है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि कुटुम्ब न्यायालय सीमित अधिकारिता वाला न्यायालय है । तथापि, किसी भी रीति में इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि कुटुम्ब न्यायालय को 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) और उसके अंतर्गत "स्पष्टीकरण" में निर्दिष्ट कार्यवाहियों की प्रकृति के संबंध में ऐसी कार्यवाहियों, जिनको उनमें निर्दिष्ट किया गया है, का न्यायनिर्णयन करने के लिए सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त नहीं होती और यह केवल नियमित सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत होगा कि वे डिक्री को अपास्त करें । वास्तव में उक्त निष्कर्ष और मताभिव्यक्तियां स्पष्ट करती हैं कि कुटुम्ब न्यायालय को केवल धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" में विनिर्दिष्ट मामलों पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है । कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रयोग की गई अधिकारिता 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" के खंड (ख) की परिधि के अंतर्गत आती है । यह 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" के खंड (घ) की परिधि के अंतर्गत भी आता है जहां तक वैवाहिक संबंध से उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों में फाइल किए गए वाद का संबंध है । (पैरा 39, 40, 41, 42, 43, 44, 20, 21, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 580 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2890 : **देवेन्दर सिंह नरुला** बनाम **मीनाक्षी नांगिया** ;	42
[2011]	(2011) 1 एस. सी. सी. 252 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 848 : **एस. डी. जोशी और अन्य** बनाम **बाम्बे उच्च न्यायालय और अन्य** ;	18
[2009]	आई. एल. आर. 2009 कर्नाटक 612 : **जेनू** उर्फ **गानू और अन्य** बनाम **जलाबाई और अन्य** ;	25
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1600 : **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **मीणा वारियाल और अन्य** ;	23
[2006]	ए. आई. आर. 2006 पंजाब-हरियाणा 201= 2006 (2) आर. सी. आर. (सिविल) 497 : **चरणजीत सिंह मान** बनाम **नीलम मान** ;	41

[2004] (2004) 1 एस. सी. सी. 287 :
रफीक बीबी (मृतक) द्वारा विधिक उत्तराधिकारी बनाम **सय्यैद वलुउद्दीन (मृतक) द्वारा विधिक उत्तराधिकारी और अन्य** ; 28

[2003] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2525 :
के. ए. अब्दुल जलील बनाम **टी. ए. टी. शाहिदा** ; 14

[1992] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1904 :
श्रीमती सुरेशता देवी बनाम **ओम प्रकाश** । 40

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल अपील सं. 5481.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 19 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री जे. डी. भट्टाचार्य

प्रत्यर्थी की ओर से श्री सुंदर सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. एस. सैरन ने दिया ।

न्या. सैरन – यह अपील पी. सारिका राज के पति अपीलार्थी पी. सुंदर राज द्वारा गुड़गांव के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 7 जून, 2012 के निर्णय और डिक्री, जिसके द्वारा 2008 की मूल याचिका सं. 1083 में हैदराबाद के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 के निर्णय और डिक्री के रद्दकरण की ईप्सा करते हुए फाइल की गई प्रत्यर्थी-पत्नी की याचिका को स्वीकार कर लिया गया, के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. पक्षों के मध्य विवाह गुड़गांव में तारीख 30 अक्तूबर, 2002 को संपन्न हुआ था । यह विवाह पक्षों के मध्य प्रेम संबंध के परिणामस्वरूप हुआ था । विवाह से पक्षों को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम विश्वजीत राज है, जिसका जन्म तारीख 21 अगस्त, 2006 को हुआ और एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका नाम लक्षिता राज है जिसका जन्म तारीख 22 नवंबर, 2007 को हुआ । विवाह के पश्चात् दोनों पक्ष हैदराबाद में रहने लगे । उनके मध्य वैवाहिक विवाद हो जाने के कारण प्रत्यर्थी-पत्नी ने 2008 की मूल याचिका सं. 1083 हैदराबाद के विद्वान् न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष तारीख 5 जनवरी, 2009 को क्रूरता के आधार पर उनके विवाह के विघटन की ईप्सा करते हुए फाइल की । उक्त मूल याचिका में यह अभिकथित

किया गया कि पक्षों के मध्य विवाह मुख्यतः उन कर्मकांडों, प्रथाओं और आदतों के कारण उत्पन्न हुआ जिनका अनुसरण (अपीलार्थी-पति के परिवार में) किया जाता था । उक्त मूल याचिका में अभिकथित किया गया कि अपीलार्थी-पति और उसके माता-पिता प्रत्यर्थी-पत्नी के साथ उनकी प्रथाओं का अनुसरण न किए जाने के कारण क्रूरता का बर्ताव करते थे । इसलिए यह प्रार्थना की गई कि विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान की जाए ।

3. हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष फाइल की गई याचिका में अभिकथित रूप से तारीख 4 जनवरी, 2009 को एक समझौता ज्ञापन फाइल किया गया । उक्त समझौता ज्ञापन में यह अभिकथित किया गया कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा मूल याचिका पक्षों के मध्य विवाह के विघटन की डिक्री की ईप्सा करते हुए फाइल की गई थी । तत्पश्चात् दोनों पक्षों के नातेदारों और बुजुर्गों ने सलाह दी कि मामले का निपटारा शांतिपूर्वक किया जाए । इसलिए दोनों पक्षों ने उनके मध्य के वैवाहिक संबंध को समाप्त करने का निर्णय लिया है । उनके मध्य सुलह का अब कोई अवसर शेष नहीं रह गया है । इसके अतिरिक्त उनके मध्य गंभीर मतभेद हैं जिन पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता चूंकि दोनों ही वैवाहिक जीवन में हितबद्ध नहीं रह गए हैं । इसलिए दोनों ने महसूस किया है कि उनके लिए यह संभव नहीं रह गया है कि वे एक साथ पति और पत्नी के रूप में रह पाएं । उक्त परिस्थितियों में दोनों पक्षों ने आगे की विधिक कार्यवाहियों से बचने के लिए सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की कार्यवाही को आगे बढ़ाने का निर्णय लिया है । दोनों पक्षों के मध्य यह सहमति हुई कि दोनों बच्चों की अभिरक्षा अपीलार्थी-पति को दी जाएगी । प्रत्यर्थी-पत्नी सुविधानुसार समय पर मुलाकात के अधिकार की हकदार होगी और अपीलार्थी को इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी । समझौता ज्ञापन में यह अभिलिखित किया गया कि प्रत्यर्थी-पत्नी कार्यरत है और अपना निर्वाह कर पाने की हैसियत रखती है । इसलिए वह अपीलार्थी से या उसकी संपत्ति से या वार्षिक आमदनी से या वित्तीय स्रोतों से किसी स्थायी निर्वाह व्यय या मासिक भरणपोषण का दावा नहीं कर रही है । प्रत्यर्थी-पत्नी ने निर्णय लिया है कि वह अपने दोनों बच्चों को अपीलार्थी-पति, जो नैसर्गिक संरक्षक है, के पास छोड़ देगी और भविष्य में भी बच्चों पर कोई दावा नहीं करेगी । विवाह-विच्छेद के लिए सहमति के आधार पर डिक्री पारित किए जाने के प्रयोजनार्थ मूल याचिका में संयुक्त समझौता ज्ञापन फाइल किए जाने के बाबत पक्षों के मध्य कोई दुरभिसंधि नहीं थी । यह निवेदन किया गया कि

उपरोक्त नियम और शर्तें दोनों पक्षों के नातेदारों और बुजुर्गों के समक्ष स्वीकार की गई थीं । इसलिए समझौता ज्ञापन, जो हैदराबाद के विद्वान् न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया था, में प्रविष्ट होने के बाबत उनके मध्य कोई दुरभिसंधि नहीं थी ।

4. हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने पक्षों के समझौता ज्ञापन को "पी. सुन्दर राज बनाम पी. सारिका राज" से "पी. सारिका राज और पी. सुन्दर राज" में परिवर्तित कर दिया ; इसके अतिरिक्त याचिका के शीर्ष टिप्पण जो पारित किए गए आदेश और डिक्री में उल्लेख किया गया था, "याचिका सं. 1 और याचिका सं. 2 के मध्य तारीख 14 अगस्त, 2005 को संपन्न विवाह को पारस्परिक सहमति के आधार पर विघटित किए जाने के प्रयोजनार्थ 1955 के हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन फाइल की गई याचिका" । तारीख 5 जनवरी, 2009 को पारित आदेश में यह उल्लेख किया गया कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(ik) के अधीन याचिका पी. सारिका राज द्वारा उसके पति पी. सुन्दर राज के विरुद्ध विवाह-विच्छेद के लिए फाइल की गई थी । आगे यह उल्लेख किया गया है कि याची और प्रत्यर्थी दोनों उपस्थित थे और उनका प्रतिनिधित्व भी उनके अधिवक्ताओं द्वारा किया गया था ; उन्होंने शुभचिंतकों और बुजुर्गों के मध्यक्षेप के कारण अपने विवाद का निपटारा शांतिपूर्वक कर लिया है और समझौते की शर्तों, जिसको सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में "सी. पी. सी.") के आदेश 23, नियम 3 के अधीन फाइल की गई याचिका के साथ न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया था, को अभिलिखित किए जाने की प्रार्थना की । पक्षों को व्यक्तिगत रूप से और उनके अलग-अलग काउंसेलों के सुने जाने के पश्चात् सी. पी. सी. के आदेश 23, नियम 3 के अधीन फाइल की गई याचिका को मंजूर कर लिया गया था । समझौते की शर्तों को और विवाह को विघटित किए जाने के लिए पारित किए गए आदेश का उल्लेख किया गया था । तारीख 5 जनवरी, 2009 को एक डिक्री इस आधार पर तैयार की गई थी कि याचिका हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन फाइल की गई थी ।

5. डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा 2009 का मूल वाद सं. 468 हैदराबाद के विद्वान् परिवार न्यायाधीश के न्यायालय में तारीख 24 जुलाई, 2009 को 1963 के विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 31(1)(2) के अधीन फाइल किया गया था । (इस मूल वाद में)

2008 की मूल याचिका सं. 1083 में पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 के आदेश और डिक्री के रद्दकरण की ईप्सा की गई । यह अभिकथित किया गया कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने सुसंगत कागजातों पर अपीलार्थी-पति द्वारा धमकाए जाने, प्रपीड़न किए जाने, मृत्यु भय दिए जाने, कपट किए जाने और अनुचित प्रभाव इत्यादि का प्रयोग किए जाने के कारण हस्ताक्षर किए थे और उसमें इन कागजातों पर बिना पढ़े और बिना सहमति के हस्ताक्षर कर दिए थे । अपीलार्थी-पति ने वादी (प्रत्यर्थी-पत्नी) द्वारा फाइल किए गए वादपत्र के उत्तर में लिखित कथन डिक्री के रद्दकरण की ईप्सा करते हुए फाइल किया । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 31(1)(2) के अधीन फाइल किए गए 2009 के मूल वाद सं. 468 और अन्य संबद्ध प्रकीर्ण आवेदनों के हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय से गुड़गांव के कुटुम्ब न्यायालय को अंतरित किए जाने की ईप्सा करते हुए सी. पी. सी. की धारा 31 के अधीन माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष 2009 की अंतरण याचिका (सिविल) सं. 908-911 फाइल की । प्रत्यर्थी-पत्नी का अंतरण आवेदन माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 14 दिसंबर, 2009 को मंजूर कर लिया गया और 2009 का मूल वाद सं. 468, 2008 की मूल याचिका सं. 103 और संबद्ध प्रकीर्ण आवेदनों को हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय से गुड़गांव के जिला न्यायाधीश को अंतरित कर दिया गया । तत्पश्चात् मामले को गुड़गांव के जिला न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय को अंतरित कर दिया गया ।

6. गुड़गांव के जिला न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय ने तारीख 7 जून, 2012 के आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा प्रत्यर्थी-पत्नी की याचिका को स्वीकार कर लिया और हैदराबाद के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा 2008 की मूल याचिका सं. 1083 में पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 के निर्णय और डिक्री को रद्द कर दिया ।

7. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री जे. डी. भट्टाचार्य ने दलील दी कि प्रत्यर्थी-पत्नी के समझौते में विधिमान्य रूप से प्रविष्ट होने और समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने, जिसके आधार पर तारीख 5 जनवरी, 2009 का निर्णय और डिक्री हैदराबाद के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा 2008 की मूल याचिका सं. 1083 में पारित किया गया था, के कारण उससे पीछे हटने और उसके रद्दकरण की ईप्सा करने का कोई अधिकार नहीं है । उसके द्वारा निवेदन किया गया कि किसी भी परिस्थिति में तारीख 5 जनवरी, 2009 की डिक्री के रद्दकरण के लिए फाइल की गई

याचिका कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष पोषणीय नहीं है और केवल समुचित न्यायालय, जो सिविल न्यायालय हो सकता है, को इस प्रकार की याचिका पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है । उन्होंने निवेदन किया कि मात्र इस तथ्य के कारण कि कुटुम्ब न्यायालय ने छः माह की अवधि तक प्रतीक्षा किए बिना तारीख 5 जनवरी, 2009 के आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा विवाह-विच्छेद याचिका को स्वीकार कर लिया, तारीख 5 जनवरी, 2009 का उक्त आक्षेपित निर्णय और डिक्री अविधिमान्य नहीं हो जाएगा और अधिक से अधिक यह मात्र एक अनियमित डिक्री होगी, जिसको विधि अनुसार अपास्त किया जा सकता है अर्थात् सिविल न्यायालय में सिविल वाद द्वारा या अपील द्वारा और कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 31(1)(2) के अधीन वाद या याचिका द्वारा नहीं । जहां तक छह माह की प्रतीक्षा अवधि का प्रश्न है, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस तथ्य पर अत्यधिक जोर दिया कि कुटुम्ब न्यायालय 1984 के कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम (संक्षेप में "1984 के अधिनियम") की धारा 10(3) के निबंधनों के अनुसार निपटारे के लिए विवाद को निर्णीत किए जाने के लिए अपनी स्वयं की प्रक्रिया को अंतर्वलित कर सकता है । अतः, उन्होंने निवेदन किया कि वर्तमान जिला न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय ने विधि और तथ्यों की दृष्टि से वाद पर विचार करके गंभीर त्रुटि कारित की और वास्तव में उनको ऐसा करने की कोई अधिकारिता प्राप्त नहीं थी चूंकि उनको कुटुम्ब न्यायालय की डिक्री को अविधिमान्य करने के लिए न्यायालय की शक्तियां प्राप्त नहीं हैं ।

8. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री सुंदर सिंह ने उत्तर देते हुए दलील दी कि गुड़गांव के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित तारीख 7 जून, 2012 का निर्णय और डिक्री पूर्णतः विधिमान्य और वैध है । उन्होंने निवेदन किया कि उच्चतम न्यायालय में सी. पी. सी. की धारा 25 के अधीन फाइल की गई याचिका के शीर्षक और प्रार्थना में यह उल्लेख किया गया था कि मामले को हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय से गुड़गांव के कुटुम्ब न्यायालय को अंतरित कर दिया जाए । तथापि, अपीलार्थी द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय या गुड़गांव के कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता की कमी के संबंध में कोई आक्षेप नहीं किया गया था और न ही उच्चतम न्यायालय द्वारा याचिका के स्थानांतरण के बाबत पारित किए गए अपने आदेश में इस प्रकार का कोई आक्षेप अभिलिखित किया गया था । यहां तक कि गुड़गांव

के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन में यह निवेदन किया गया है कि अधिकारिता की कमी के संबंध में कोई आक्षेप नहीं किया गया । यह केवल इस न्यायालय के समक्ष हुआ जब कार्यवाहियों के अनुक्रम के दौरान अपीलार्थी ने गुड़गांव के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता की कमी के बाबत आक्षेप करते हुए आवेदन फाइल किया और वह भी अपने लिखित कथन को संशोधित किए बिना । गुड़गांव के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने अधिकारिता के बाबत आक्षेप को तारीख 9 दिसंबर, 2011 के आदेश द्वारा यह मताभिव्यक्ति करते हुए निस्तारित कर दिया कि याचिका की पोषणीयता के बाबत विवाद्यक संख्या 2 पर पहले ही विचार किया जा चुका है और साक्ष्य अभिलिखित किए जाने के पश्चात् अंतिम विनिश्चय के समय इस विवाद्यक का निर्णय किया जाएगा । यह निवेदन किया गया कि 2008 की मूल याचिका सं. 1083 और 2009 का मूल वाद सं. 468 एक ही वैवाहिक संबंध से उत्पन्न हुए हैं । इसलिए धारा (1)(क) और (ख) सपठित 1984 के अधिनियम के स्पष्टीकरण के अनुसार कुटुम्ब न्यायालय को याचिका पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है । यह निवेदन किया गया कि विवाद के वैवाहिक प्रकृति के होने के कारण, कुटुम्ब न्यायालय को ही इस याचिका पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है ।

9. हमने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और उनकी सहायता से अभिलेख का परिशीलन किया ।

10. प्राथमिक प्रश्न जिस पर विचार किया जाना अपेक्षित है, यह है कि 1984 के अधिनियम के अधीन गठित कुटुम्ब न्यायालय को उसके द्वारा या समान अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को अपास्त करने या उसका शून्यकरण करने की अधिकारिता प्राप्त होती या क्या कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को केवल किसी नियमित सिविल न्यायालय के समक्ष घोषणात्मक वाद में अपास्त किया जा सकता है । इस प्रश्न पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ 1984 के अधिनियम की धारा 7 के उपबंधों का उपयोग किया जा सकता है जो कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता से संबंधित हैं और जो निम्नलिखित हैं :–

> 7. अधिकारिता – (1) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, –

(क) कुटुम्ब न्यायालय को, स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों और कार्यवाहियों की बाबत, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी जिला न्यायालय या किसी अधीनस्थ सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य पूर्ण अधिकारिता होगी और वह उसका प्रयोग करेगा ;

(ख) कुटुम्ब न्यायालय के बारे में, ऐसी विधि के अधीन ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के प्रयोजनों के लिए, यह समझा जाएगा कि वह ऐसे क्षेत्र के लिए, जिस पर कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार है, यथास्थिति, जिला न्यायालय या अधीनस्थ सिविल न्यायालय है ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा में निर्दिष्ट वाद और कार्यवाहियां निम्नलिखित प्रकृति के वाद और कार्यवाहियां हैं, अर्थात् –

(क) किसी विवाह के पक्षकारों के बीच (विवाह को, यथास्थिति, अकृत और शून्य घोषित करने के लिए या विवाह को बातिल करने के लिए) विवाह की अकृतता या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन या न्यायिक पृथक्करण या विवाह के विघटन की डिक्री के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(ख) किसी व्यक्ति के विवाह की विधिमान्यता के बारे में या उसकी वैवाहिक प्रास्थिति के बारे में घोषणा के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(ग) किसी विवाह के पक्षकारों के बीच ऐसे पक्षकारों की या उनमें से किसी की सम्पत्ति की बाबत कोई विवाद या कार्यवाही ;

(घ) किसी वैवाहिक संबंध से उत्पन्न परिस्थितियों के किसी आदेश या व्यादेश के लिए कोई वाद या कार्यवाही;

(ङ) किसी व्यक्ति के धर्मजत्व के बारे में किसी घोषणा के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(च) भरणपोषण के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(छ) किसी व्यक्ति की संरक्षकता अथवा किसी अवयस्क की अभिरक्षा या उस तक पहुंच के संबंध में कोई वाद या कार्यवाही ।

(2) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी कुटुम्ब न्यायालय को –

(क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन (जो पत्नी, संतान और माता-पिता के भरणपोषण के लिए आदेश के संबंध में है) किसी प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोक्तव्य अधिकारिता ; और

(ख) ऐसी अन्य अधिकारिता, जो किसी अन्य अधिनियमिति द्वारा उसको प्रदत्त की जाए ;

भी होगी और वह उसका प्रयोग करेगा ।

11. उपरोक्त उपबंध के अध्ययन से यह दर्शित होता है कि कुटुम्ब न्यायालय को 1984 के अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों और कार्यवाहियों के बाबत तक तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी जिला न्यायालय या किसी अधीनस्थ सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य पूर्ण अधिकारिता होगी और वह उसका प्रयोग करेगा ; इसके अतिरिक्त ऐसी विधि के अधीन इस प्रकार की अधिकारिता का प्रयोग किए जाने के प्रयोजनार्थ यह समझा जाएगा कि कुटुम्ब न्यायालय ऐसे क्षेत्र के लिए, जहां उसकी अधिकारिता का विस्तार है, यथास्थिति जिला न्यायालय या अधीनस्थ सिविल न्यायालय है । 1984 के अधिनियम की धारा 7 के "स्पष्टीकरण" के निबंधनों के अनुसार विभिन्न प्रकृति की कार्यवाहियों का उल्लेख किया गया है जिनके संबंध में कुटुम्ब न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है और जो प्राथमिकतः कुटुम्ब विवादों से संबंधित होते हैं । जब कुटुम्ब न्यायालय ऐसे मामलों, जिन्हें "स्पष्टीकरण" में निर्दिष्ट किया है, के संबंध में अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है तो वह सिविल न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करता है । कार्यवाही की प्रकृति पर विचार करते हुए "स्पष्टीकरण" का खंड (ख) किसी विवाह की विधिमान्यता या किसी व्यक्ति की वैवाहिक हैसियत के बारे में घोषणा के लिए फाइल किए गए किसी वाद या कार्यवाही के बारे में विचार करता है । 1984 के अधिनियम की धारा 8 उपबंधित करती है कि किसी जिला न्यायालय या अधीनस्थ सिविल

न्यायालय को ऐसे मामलों के संबंध में अधिकारिता प्राप्त नहीं होगी जिनको 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) के अधीन विनिर्दिष्ट रूप में किसी ऐसे मामले के संबंध में जिसके बाबत कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग किया जाना है, वर्णित किया गया है ।

12. प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा फाइल की गई याचिका/वाद हैदराबाद के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 के निर्णय और डिक्री को शून्य घोषित किए जाने के बाबत था और उसके रद्दकरण के लिए था । प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा फाइल किए गए वाद का परिणाम उसकी वैवाहिक हैसियत के विनिर्धारण से संबंधित है अर्थात् वह अपीलार्थी की पत्नी है या नहीं । जैसाकि सभी को ज्ञात है, किसी वैवाहिक न्यायालय द्वारा पारित निर्णय 1872 के भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 के निबंधनों के अनुसार सर्वबंधी निर्णय होता है । उक्त उपबंध स्पष्ट करता है कि किसी सक्षम न्यायालय के प्रोबेट-विषयक, विवाह-विषयक, नावधिकरण-विषयक या दिवाला-विषयक अधिकारिता के प्रयोग में दिया हुआ अंतिम निर्णय, आदेश या डिक्री, जो किसी व्यक्ति को, या से, कोई विधिक हैसियत प्रदान करती या ले लेती है या जो सर्वथः न कि किसी विनिर्दिष्ट व्यक्ति के विरुद्ध किसी व्यक्ति को ऐसी किसी हैसियत का हकदार या किसी विनिर्दिष्ट चीज का हकदार घोषित करती है, तब सुसंगत है जब कि किसी ऐसी विधिक हैसियत या किसी ऐसी चीज पर किसी ऐसे व्यक्ति के हक का अस्तित्व सुसंगत है । ऐसा निर्णय, आदेश या डिक्री इस बात का निश्चायक सबूत है कि कोई विधिक हैसियत, जो वह प्रदत्त करती है, उस समय प्रोद्भूत हुई जब ऐसा निर्णय, आदेश या डिक्री परिवर्तन में आई कि कोई विधिक हैसियत, जिसके लिए वह किसी व्यक्ति को हकदार घोषित करती है उस व्यक्ति को उस समय प्रोद्भूत हुई जो समय ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री द्वारा घोषित है कि उस समय यह उस व्यक्ति को प्रोद्भूत हुई, कि कोई विधिक हैसियत, जिसे वह किसी ऐसे व्यक्ति से ले लेती है उस समय खत्म हुई जो समय ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री द्वारा घोषित है कि उस समय से यह हैसियत खत्म हो गई थी या खत्म हो जानी चाहिए और कि कोई चीज जिसके लिए वह किसी व्यक्ति को ऐसा हकदार घोषित करती है उस व्यक्ति की उस समय संपत्ति थी जो समय ऐसे निर्णय द्वारा घोषित है कि उस समय से वह चीज उसकी संपत्ति थी या होनी चाहिए ।

13. कुटुम्ब न्यायालय की डिक्री जिसके द्वारा पक्षों के मध्य वैवाहिक

संबंध समाप्त हो चुके हैं, पक्षों के मध्य एक दूसरे के पति और पत्नी होने के संबंधों की समाप्ति पर पक्षों की विधिक हैसियत की घोषणा करती है । पश्चात्वर्ती वाद, जो प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया है, अपीलार्थी की पत्नी के रूप में उसकी वैवाहिक हैसियत के विनिर्धारण के लिए है और जिसके लिए कुटुम्ब न्यायालय को 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" के खंड (ख) के निबंधनों के अनुसार निश्चित रूप से अधिकारिता प्राप्त है । मात्र यह तथ्य कि पक्षों के मध्य विवाह तारीख 5 जनवरी, 2009 को हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित डिक्री द्वारा विघटित हो चुका था, का यह अर्थ नहीं होगा कि कुटुम्ब न्यायालय वहां पर अपनी अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर सकता जहां पक्षों की वैवाहिक हैसियत का प्रश्न अंतर्वलित है ।

14. **के. ए. अब्दुल जलील** बनाम **टी. ए. टी. शाहिदा**[1] वाले मामले में इस प्रश्न पर विचार किया गया कि क्या कुटुम्ब न्यायालय को विछिन्न विवाह पक्षों की संपत्तियों से संबंधित किसी प्रश्न का न्यायनिर्णयन करने की अधिकारिता प्राप्त है । अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथनों को निर्दिष्ट करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि ये (उद्देश्यों और कारणों के कथन) स्पष्टतः दर्शित करते हैं कि कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता अन्य विवादों के साथ-साथ पति या पत्नी या उनमें से किसी की संपत्तियों के संबंध में विस्तारित हो जाती है जिसका स्पष्टतः अर्थ यह होगा कि मामले के पक्षों द्वारा एक दूसरे के पति या पत्नी के रूप में मामले के पक्षों द्वारा अधियाचित संपत्ति दावे इस दावे को ध्यान में रखे बिना किया गया था कि क्या संपत्ति का दावा विवाह के अस्तित्व के दौरान किया गया है या अन्यथा रूप से किया गया है । इस बाबत काउंसेल का निवेदन कि उच्चतम न्यायालय को शब्दों "किसी विवाह के पक्षों के मध्य वाद या कार्यवाही" जैसाकि 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" (ग) में उल्लिखित है, अस्तित्वाधीन विवाह के पक्षों के मध्य वाद या कार्यवाही के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, किंतु उच्चतम न्यायालय के सुविचारित राय में यह न्याय की हत्या की ओर अग्रसर होना था । यह अभिनिर्धारित किया गया कि विशेष प्रकार के विवादों के समाधान के लिए विशेष रूप से सृजित विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायालय की अधिकारिता का उदारतापूर्वक अर्थान्वयन किया जाना चाहिए और यदि

---

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2525.

1984 के अधिनियम की धारा 7(1) में दिए गए "स्पष्टीकरण" (ग) का निर्बंधित अर्थ निकाला गया तो वह उद्देश्य विफल हो जाएगा जिसके लिए कुटुम्ब न्यायालयों को स्थापित किया गया था ।

15. इसलिए इस प्रयोजन (विवाह के पक्षों के मध्य वाद या कार्यवाही) के लिए स्थापित कुटुम्ब न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति की वैवाहिक हैसियत के विनिर्धारण के प्रश्न का निर्बंधित अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए और विवाद को अस्तित्वाधीन विवाद के प्रश्नों तक निर्बंधित नहीं किया जाना चाहिए ।

16. 1984 के अधिनियम की धारा 10 सामान्यतः प्रक्रिया के बाबत उपबंधित करती है । इस धारा में यह उपबंधित किया गया है कि इस अधिनियम के अन्य उपबंधों और नियमों के अधीन रहते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंध किसी कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष वादों और [दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन कार्यवाहियों से भिन्न] कार्यवाहियों पर लागू होंगे और संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजनार्थ कुटुम्ब न्यायालय को सिविल न्यायालय समझा जाएगा और उसे सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां प्राप्त होंगी । धारा 10 की उपधारा (3) के निबंधनों के अनुसार उपधारा (1) या उपधारा (2) की कोई बात किसी कुटुंब न्यायालय को वाद या कार्यवाहियों की विषयवस्तु की बाबत किसी समझौते पर या एक पक्षकार द्वारा अभिकथित और दूसरे पक्षकार द्वारा प्रत्याख्यापित तथ्यों की सत्यता पर पहुंचने की दृष्टि से अपनी प्रक्रिया अभिकथित करने से नहीं रोकेगी ।

17. उक्त उपबंध दर्शित करते हैं कि कुटुम्ब न्यायालय धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" में निर्दिष्ट मामलों से संबंधित शक्तियों और अधिकारिता का प्रयोग करते हुए सिविल न्यायालय होती है और इसको "स्पष्टीकरण" में उल्लिखित कार्यवाहियों की प्रकृति के बाबत सिविल न्यायालय की समस्त शक्तियां और अधिकरिता प्राप्त होती हैं ।

18. तथापि, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस तथ्य पर अत्यधिक जोर दिया कि कुटुम्ब न्यायालय को किसी अन्य कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को अपास्त करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं होती और केवल नियमित सिविल न्यायालय ही ऐसा कर सकता है । विद्वान् काउंसेल अपनी दलील के समर्थन में **एस. डी. जोशी और अन्य** बनाम **बाम्बे उच्च**

न्यायालय और अन्य[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का दृढ़तापूर्वक अवलंब लिया । उक्त मामले में निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया था :–

> "(क) संविधान के अनुच्छेद 217(2) में उपबंधित अभिव्यक्ति 'न्यायिक पद' की क्या परिधि है ?
>
> (ख) क्या 'कुटुम्ब न्यायालय' को न्यायालय की शक्तियां प्राप्त होती हैं और कुटुम्ब न्यायालय के न्यायाधीशों को इस न्यायालय के पीठासीन अधिकारी होने के कारण अधिकारिता और कार्यों के मामले में समानता के दावे के आधार पर राज्य की उच्चतर न्यायिक सेवा का सदस्य प्रतीत किया जाएगा ?
>
> (ग) यदि उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक में है, तो कुटुम्ब न्यायालय न्यायाधीश भारत के संविधान के अनुच्छेद 217 के निबंधनों के अनुसार उन्नयन के लिए विचारित किए जाने के हकदार हैं ?"

19. उक्त मामले में बाम्बे उच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य में कुटुम्ब न्यायालय न्यायाधीशों के 7 पदों के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए विज्ञापन जारी किया था । इस विज्ञापन में नियुक्ति के लिए विचारण किए जाने योग्य योग्यता और साथ ही कतिपय सेवा शर्तों के बाबत अनेक शर्तें समाविष्ट थीं । चयनित अभ्यर्थियों को कुटुम्ब न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त किया गया था और बाद में उनमें से कुछ को कुटुम्ब न्यायालय के प्रधान न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त किया गया था । उक्त मामले के याचियों ने दलील दी थी कि कुटुम्ब न्यायालय के न्यायाधीश "न्यायिक पद" धारित करते हैं और वे न्यायिक कार्यों का निर्वहन करते हैं और इस प्रकार बाम्बे उच्च न्यायालय की न्यायपीठ में उन्नयन के लिए विचारित किए जाने के हकदार हैं । इस दलील को स्पष्ट करते हुए यह दलील दी गई कि कुटुम्ब न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति कानूनी नियमों के अंतर्गत होती है, कुटुम्ब न्यायालय के न्यायाधीश के कर्तव्य और दायित्व सिटी सिविल न्यायालय के न्यायाधीशों के कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के समान होते हैं और संक्षेप में वे किसी अन्य न्यायालय के न्यायाधीशों की भांति समान कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं और कुटुम्ब न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील उच्च

---

[1] (2011) 1 एस. सी. सी. 252 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 848.

न्यायालय के समक्ष होती है ।

20. उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कुटुम्ब न्यायालय सही अर्थ में अधिकरण होता है, जो राज्य द्वारा उसके संविधान के अंतर्गत संपोषित सिविल अधिकारिता के न्यायालयों का राज्य की न्यायिक शक्ति के प्रयोजनार्थ सामान्य पदानुक्रम का भाग होता है । यह न्यायालय राज्य के सभी न्यायिक कार्यों का निर्वहन करते हैं सिवाय उनके जिनको विधि द्वारा उनकी अधिकारिता से पृथक् कर दिया गया है ।

21. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने उक्त मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय की मताभिव्यक्ति पर जोर दिया कि 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) में विनिर्दिष्ट मामले के संबंध में सिविल न्यायालयों और दांडिक न्यायालयों की अधिकारिता को विनिर्दिष्ट रूप से पृथक् कर दिया गया था, इसलिए इस बात का भी आवश्यक रूप से यह अर्थ निकलता है कि कुटुम्ब न्यायालयों को केवल धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" में विनिर्दिष्ट मामलों पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है । कुटुम्ब न्यायालयों को स्थापित किए जाने में विधान-मंडल के उद्देश्य को स्पष्टतः समझे जाने के प्रयोजनार्थ विधि आयोग की 59वीं रिपोर्ट को निर्दिष्ट किया गया जिसमें यह सिफारिश की गई थी कि न्यायालय कुटुम्ब से संबंधित विवादों पर विचार करते समय ऐसा दृष्टिकोण अंगीकृत करेंगे जो सामान्य सिविल न्यायालयों में अंगीकृत दृष्टिकोण से पूर्णतया भिन्न होगा और उनको विचारण के आरंभ के पूर्व शांतिपूर्ण निपटारे के लिए युक्तिसंगत प्रयास करने होंगे । यही विचार विधि आयोग की 230वीं रिपोर्ट में भी दोहराए गए थे । कुटुम्ब न्यायालय का प्राथमिक उद्देश्य वैवाहिक और कुटुम्ब विवादों से संबंधित मामलों के न्यायनिर्णयन के बजाय उनमें सुलह और शांतिपूर्ण निपटारे को प्रोन्नत करना है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि कुटुम्ब न्यायालय सीमित अधिकारिता वाला न्यायालय है ।

22. तथापि, किसी भी रीति में इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि कुटुम्ब न्यायालय को 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) और उसके अंतर्गत "स्पष्टीकरण" में निर्दिष्ट कार्यवाहियों की प्रकृति के संबंध में ऐसी कार्यवाहियों, जिनको उनमें निर्दिष्ट किया गया है, का न्यायनिर्णयन करने के लिए सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त नहीं होती और यह केवल नियमित सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत होगा कि वे डिक्री को अपास्त करें । वास्तव में उक्त निष्कर्ष और मताभिव्यक्तियां स्पष्ट करती हैं कि कुटुम्ब न्यायालय को केवल धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" में

विनिर्दिष्ट मामलों पर विचार करने की अधिकारिता प्राप्त है ।

23. जहां तक अपीलार्थी की पत्नी के रूप में प्रत्यर्थी की वैवाहिक हैसियत के प्रश्न के विवाद्यक का संबंध है, वर्तमान मामले में कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रयोग की गई अधिकारिता 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" के खंड (ख) की परिधि के अंतर्गत आती है । यह 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" के खंड (घ) की परिधि के अंतर्गत भी आता है जहां तक वैवाहिक संबंध से उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों में फाइल किए गए वाद का संबंध है । इसके अतिरिक्त, **एस. डी. जोशी और अन्य** बनाम **बाम्बे उच्च न्यायालय और अन्य** (उपरोक्त) वाला मामला इस प्रश्न के विनिर्धारण के संबंध में था कि क्या कुटुम्ब न्यायालय का न्यायाधीश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उन्नयन के लिए विचारण का हकदार है और यह नहीं था कि क्या कुटुम्ब न्यायालय को ऐसी कार्यवाहियों की प्रकृति के संबंध में अधिकारिता प्राप्त नहीं होती जिनको 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" में उल्लिखित किया गया है । तथापि, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार उच्चतम न्यायालय की इतिरोक्ति भी बाध्यकारी होती है और उसको विधि के समान माना जाता है । इस संबंध में **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **मीणा वारियाल और अन्य**[1] वाले मामले को निर्दिष्ट किया गया है जिसमें अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया गया :–

> "इस न्यायालय की इतिरोक्ति उच्च न्यायालय पर केवल तभी बाध्यकारी हो सकती है जब समान प्रश्न पर कोई अन्य प्रत्यक्ष निर्णय उपलब्ध न हो । किंतु जहां तक इस न्यायालय का संबंध है, यद्यपि यह बाध्यकारी नहीं होती, फिर भी इसका स्पष्ट प्रत्यायक प्रभाव होता है ।"

24. तथापि, उक्त दलील वर्तमान मामले के तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए बिल्कुल ही असंगत है चूंकि प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई याचिका/वाद, अधिनियम, 1984 की धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" के अंतर्गत आता है । इसके अतिरिक्त इस प्रयोजन के लिए कुटुम्ब न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति की वैवाहिक हैसियत के विनिर्धारण के प्रश्न पर निर्बंधित अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए और विवाद को किसी अस्तित्वाधीन विवाह के पक्षों तक निर्बंधित नहीं किया जाना चाहिए ।

---

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1600.

25. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि गुड़गांव के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय न्यायाधीश के समक्ष वाद की प्रकृति एक लिखत, जो हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 की डिक्री है और जो 1984 की अधिनियम की धारा 7(1) के किसी भी खंड के अंतर्गत नहीं आती, के रद्दकरण की ईप्सा किए जाने के प्रयोजनार्थ थी । उसने अपनी दलील के समर्थन में **जेनू** उर्फ **गानू और अन्य** बनाम **जलाबाई और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया ।

26. उक्त मामले में वादी द्वारा फाइल किए गए वादपत्र में किए गए प्रकथन अन्य बातों के साथ यह अभिकथित करते हैं कि वादी प्रथम प्रतिवादी के संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्य थे और वादगत संपत्तियां पैतृक संपत्तियां थीं और वादी और प्रथम प्रतिवादी की संयुक्त पारिवारिक संपत्तियां थीं । इसके अतिरिक्त प्रथम प्रतिवादी का कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि संपत्ति विवाद मात्र विवाह के पक्षों के मध्य नहीं था । इसके बजाय यह विवाद विवाह के पक्षों और साथ ही उनके बच्चों के मध्य था । वाद की विषयवस्तु पक्षों या उनमें से किसी एक से संबंधित एकमात्र संपत्ति नहीं थी । यह संयुक्त परिवार से संबंधित थी जिसमें विवाह के पक्षों के अतिरिक्त अन्य पक्ष भी हितबद्ध थे । इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि कुटुम्ब न्यायालय को विवाह के पक्षों के अलावा अन्य पक्षों के मध्य विवाद के न्यायनिर्णय की अधिकारिता प्राप्त नहीं थी ।

27. तथापि, वर्तमान मामले में, मामला विवाह के पक्षों के मध्य वैवाहिक विवाह से संबंधित है और प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी की पत्नी के रूप में अपनी हैसियत के विनिर्धारण की ईप्सा करती है जो 1984 की अधिनियम की धारा 7(1) के "स्पष्टीकरण" के खंड (ख) के अधीन आता है । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा फाइल किया गया वाद वैवाहिक संबंध से उत्पन्न विवाद है । वर्तमान मामले में विवाद मात्र विवाह के पक्षों के मध्य है और किसी अन्य के मध्य नहीं ।

28. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने असंगत डिक्री और शून्य डिक्री के मध्य अंतर का अवलंब लिया है । उन्होंने निवेदन किया कि गुड़गांव के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित की कि तारीख 5 जनवरी, 2009 का निर्णय और डिक्री शून्य और

---

[1] आई. एल. आर. 2009 कर्नाटक 612.

व्यर्थ थी चूकिं हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायलय के न्यायाधीश को उसके समक्ष लंबित विवाह-विच्छेद याचिका में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के उपबंधों का अवलंब लिए जाने के द्वारा पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने की अधिकारिता नहीं थी । उन्होंने दलील दी कि उक्त निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण है चूंकि विवाह-विच्छेद के लिए पारित डिक्री हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन फाइल याचिका के आधार पर प्रदान की गई है ; इसके अतिरिक्त 1984 के अधिनियम की धारा 10(3) के निबंधनों के अनुसार कुटुम्ब न्यायालय इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अपनी स्वयं की प्रक्रिया अधिकथित कर सकता है कि किसी वाद की कार्यवाही में अंतर्वलित विषयवस्तु के संबंध में समझौते पर पहुंचा जाए । उन्होंने इस संबंध में **रफीक बीबी (मृतक) द्वारा विधिक उत्तराधिकारी** बनाम **सय्यैद वलुउद्दीन (मृतक) द्वारा विधिक उत्तराधिकारी और अन्य**[1] वाले मामले को यह दलील देते हुए निर्दिष्ट किया कि कोई ऐसा न्यायालय, जिसको अधिकारिता प्राप्त नहीं है, द्वारा पारित डिक्री जो शून्य होने के कारण निष्पादित नहीं की जा सकती और किसी ऐसे न्यायालय द्वारा पारित डिक्री जो मात्र इस कारणवश अवैध है कि उसको विधि द्वारा अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार पारित नहीं किया गया है, के मध्य अंतर होता है ।

29. उक्त मामले में मकान-मालिक द्वारा किराएदार के विरुद्ध वादगत परिसर के संबंध में यह अभिकथित करते हुए वाद फाइल किया गया था कि किराएदार ने तीन वर्ष की अवधि से अधिक समय तक किराए के संदाय में व्यतिक्रम कारित किया है । उस किराएदार पर मांग और निष्कासन का नोटिस तामील किया गया था जिसका अनुपालन किराएदार द्वारा नहीं किया गया और वह 1952 के दिल्ली और अजमेर किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (क) के निबंधनों के अनुसार निष्कासन योग्य था । वाद को उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए डिक्री कर दिया गया कि मकान मालिक-किराएदार का संबंध साबित हो गया है और किराएदार के विरुद्ध निष्कासन का दायित्व किराए के संदाय में व्यतिक्रम के आधार पर उद्भूत हो गया है ; जैसाकि किराएदार द्वारा अभिकथित किया गया है । डिक्री के निष्पादन के समय यह निवेदन करते हुए आक्षेप फाइल किया गया कि वाद के लंबन के

---

[1] (2004) 1 एस. सी. सी. 287.

दौरान राज्यों के पुनर्गठन के प्रभाव के कारण अजमेर तारीख 1 नवंबर, 1956 से राजस्थान का भाग बन गया और वादगत परिसर 1950 के राजस्थान परिसर (किराया और निष्कासन का नियंत्रण) अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित होगा और राजस्थान अधिनियम की धारा 13(1)(क) के अधीन किराएदार को एक अतिरिक्त विशेषाधिकार प्रदान किया गया कि किराए के संदाय में व्यतिक्रम के आधार पर बेदखली की ईप्सा करने वाले वाद में किराएदार वाद के लंबन के दौरान बकाया किराए की रकम ब्याज और लागत सहित जमा कर सकता है जैसाकि न्यायालय द्वारा निदेशित किया गया है और उस स्थिति में निष्कासन की डिक्री पारित नहीं की जा सकती । उक्त संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी ऐसे न्यायालय द्वारा पारित डिक्री जिसको अधिकारिता प्राप्त नहीं थी और परिणामस्वरूप उसके द्वारा पारित डिक्री शून्य है और किसी ऐसे न्यायालय द्वारा पारित डिक्री जो मात्र इस कारणवश अवैध है कि वह विधि में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार पारित नहीं की गई, के मध्य अंतर होता है । उक्त संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अवैधता या प्रक्रिया की असंगतता से ग्रसित डिक्री निष्पादन न्यायालय द्वारा निष्पादनीय नहीं होती और ऐसी डिक्री द्वारा व्यथित व्यक्ति को यह अनुतोष प्राप्त होता है कि वह उसको सम्यक् रूप से संस्थित विधिक कार्यवाहियों में या किसी उच्चतर न्यायालय द्वारा अपास्त कराए जिसमें विफल रहने पर उसको डिक्री में दिए गए आदेश का पालन करना होगा । यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को या उसकी क्षमता को किसी सामानांतर आक्रमण द्वारा या किसी आनुषंगिक कार्यवाही में निरावृत्त नहीं किया जा सकता । उक्त निर्णय का विनिश्चयानुपात वर्तमान मामले, जिसमें सक्षम न्यायालय अर्थात् हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय की डिक्री अपास्त किए जाने की ईप्सा की गई है, में लागू नहीं होता जिससे कि वैवाहिक हैसियत का विनिर्धारण किया जा सके । इसके अतिरिक्त हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित डिक्री हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के कानूनी उपबंधों के अतिक्रमण में पारित की गई चूंकि याचिका के फाइल किए जाने और डिक्री पारित किए जाने के मध्य छह माह की प्रतीक्षा अवधि का पालन नहीं किया गया है जो कि अनिवार्य है । इसके विपरीत एक सरल उपाय खोजा गया और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के उपबंधों का आश्रय लेते हुए

आज्ञापक उपबंधों के साथ धोखा किया गया । ऐसी डिक्री को 1963 के विशिष्ट अनुतोष अधिनियम के अध्याय 5 के उपबंधों, जो लिखतों के रद्दकरण से संबंधित हैं, के अनुसार अपास्त किया जा सकता है । विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 31 स्पष्ट करती है कि "रद्दकरण के आदेश कब पारित किए जा सकते हैं" । इस धारा में यह उपबंधित किया गया है कि कोई भी व्यक्ति जिसके विरुद्ध कोई लिखत व्यर्थ है या व्यर्थ नहीं है और जिसको युक्तिसंगत रूप से इस बात की आशंका है कि यदि उस लिखत को ज्यों का त्यों छोड़ दिया जाता है, तो गंभीर क्षति कारित होगी, वह उसको शून्य या शून्यकरणीय निर्णीत कराए जाने का दावा कर सकता है और न्यायालय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए उस लिखत को निर्णीत करेगा और उसको सौंपे जाने और उसका रद्दकरण किए जाने के लिए आदेश पारित करेगा ।

30. प्रत्यर्थी-पत्नी ने हैदराबाद के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित तारीख 5 अक्तूबर, 2009 के आदेश के रद्दकरण की ईप्सा करते हुए याचिका/वाद फाइल किया है चूंकि यह आदेश अपीलार्थी की पत्नी के रूप में उसकी वैवाहिक हैसियत को प्रभावित करता है । इसलिए, गुड़गांव का कुटुम्ब न्यायालय, जिसको माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा 2009 की अंतरण याचिका (सिविल) सं. 908-911 में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 25 के अधीन हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 की डिक्री को अपास्त किए जाने की ईप्सा करते हुए प्रत्यर्थी की याचिका को अंतरित किया, को याचिका पर विचार करने और उसके अंतर्गत चाहे गए अनुतोषों को प्रदान करने की अधिकारिता प्राप्त थी । ऐसा इस कारणवश है कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा फाइल की गई वाद/याचिका अपीलार्थी की पत्नी के रूप में उसकी हैसियत के विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ फाइल की गई थी जो 1984 के अधिनियम की धारा 7(1) के स्पष्टीकरण के खंड (ख) के अंतर्गत है । इसके अतिरिक्त 1984 के अधिनियम की धारा 7(1)(क) के निबंधनों के अनुसार कुटुम्ब न्यायालय को जिला न्यायालय या किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा "स्पष्टीकरण" में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों और कार्यवाहियों के संबंध में तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अंतर्गत प्रयोग की जाने वाली अधिकारिता प्राप्त होती है और वह इसका प्रयोग कर सकता है । 1984 के अधिनियम की धारा 7(1)(ख) के निबंधनों के अनुसार कुटुम्ब न्यायालय के बाबत अवधारणा की जाती है कि वह विधि के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करेगा ।

31. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा मामले के तथ्यों के आधार पर दलील दी गई कि गुड़गांव के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 7 जून, 2012 का आक्षेपित निर्णय और आदेश मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है चूंकि यह न्यायालय प्रत्यर्थी-पत्नी के परिसाक्ष्य में सुस्पष्ट असंगतता पर विचार करने में विफल रहा है । उन्होंने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी-पत्नी की मुख्य परीक्षा के पैरा 13 में यह अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी (जो अब अपीलार्थी है) ने हैदराबाद के नगर सिविल न्यायालय के विद्वान् कुटुम्ब न्यायाधीश के समक्ष अपने काउंसेल के माध्यम से विवाह-विच्छेद (प्रत्यर्थी-पत्नी के) याचिका फाइल की थी और उसने अनेक कागजातों पर उसके हस्ताक्षर भय और प्रपीड़न के आधार पर करा लिए थे । आगे यह भी अभिकथित किया गया है कि 2008 की मूल याचिका सं. 1083 धारण करने वाली याचिका उसके अधिवक्ता द्वारा उसकी ओर से फाइल की गई थी अर्थात् हैदराबाद के अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा । आगे यह अभिकथित किया गया है कि 2008 के सितंबर माह में प्रत्यर्थी (जो अब अपीलार्थी है) ने कुछ दस्तावेजों के साथ उससे संपर्क किया और उसको उन दस्तावेजों को बिना पढ़े हस्ताक्षरित करने के लिए विवश किया । जब उसने इनकार किया, तो प्रत्यर्थी (जो अब अपीलार्थी है) पिस्तौल के साथ आया और उसको जान से मारने की धमकी दी । उसने अपने और अपने बच्चों के जीवन के भय के कारण दस्तावेजों की अंतर्वस्तु को बिना पढ़े और परिणामों पर बिना विचार किए हस्ताक्षर कर दिए थे । तथापि, प्रतिपरीक्षा में यह अभिकथित किया गया कि उसने मंगाई गई फाइल में तलाक के मूल कागजात देखे थे जिन पर उसके हस्ताक्षर उपस्थित थे और तत्पश्चात् स्वैच्छिक रूप से अभिकथित किया गया कि प्रत्यर्थी द्वारा उससे हस्ताक्षर बलपूर्वक कराए गए थे । उसने 2008 की मूल याचिका सं. 1083 के वादपत्र के प्रमाणीकरण खंड के नीचे हस्ताक्षर किए थे । उसको न्यायालय परिसर ले जाया गया था और उसने न्यायालय कक्ष के बाहर हस्ताक्षर किए थे ; इसके अतिरिक्त उसी दिन अर्थात् 18 सितंबर, 2008 को वह न्यायालय परिसर गई थी । फिर भी, वह न्यायालय परिसर के बाहर ही रही थी । यह अभिकथित किया गया है कि यह सुझाव दिया जाना गलत है कि 2008 की मूल याचिका सं. 1083 उसके द्वारा उसके निवास स्थान पर हस्ताक्षरित की गई थी और तत्पश्चात् उसने स्वेच्छापूर्वक अभिकथित किया कि प्रत्यर्थी (जो अब अपीलार्थी है) द्वारा कुछ दस्तावेजों पर उससे घर पर हस्ताक्षर कराए गए थे ।

32. उक्त मुख्य परीक्षा और प्रत्यर्थी-पत्नी की प्रतिपरीक्षा के आधार पर अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि विवाह-विच्छेद याचिका और समझौता ज्ञापन से संबंधित दस्तावेजों, जिनके आधार पर हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान की गई थी, अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी-पत्नी को मृत्यु का भय दिखाकर निष्पादित कराए गए थे । तथापि, उसने प्रतिपरीक्षा के दौरान उन दस्तावेजों को आसानी से पहचान लिया जिन पर उसने हस्ताक्षर किए थे और उस स्थान की ओर स्पष्ट संकेत दिया जहां हस्ताक्षर किए थे । इसलिए अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार यह स्पष्ट रूप से विवशित होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद याचिका पर पढ़ने के पश्चात् हस्ताक्षर किए गए थे ।

33. जहां तक समझौते का संबंध है, यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने प्रतिपरीक्षा में अभिकथित किया कि प्रत्यर्थी (जो अब अपीलार्थी है) ने उसको कुछ विधिक कागजातों पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया था और उसने उन कागजातों पर बिना पढ़े हस्ताक्षर कर दिए थे । आगे यह अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थी (जो अब अपीलार्थी है) ने उसको पिस्तौल दिखाकर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया था । तथापि, उसने प्रतिपरीक्षा में समझौता ज्ञापन पर अपने हस्ताक्षरों, जो प्रत्यर्थी (जो अब अपीलार्थी है) द्वारा न्यायालय कक्ष के बाहर समझौता ज्ञापन की अंतर्वस्तु को पढ़ने की अनुज्ञा दिए बिना अभिप्राप्त किए गए थे, की शनाख्त की । इसलिए यह दलील दी गई कि दस्तावेजों पर न्यायालय परिसर के बाहर हस्ताक्षर किए गए थे और भय या प्रपीड़न के अंतर्गत और वह भी पिस्तौल दिखाकर उन पर हस्ताक्षर किए जाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता । प्रत्यर्थी-पत्नी के संबंध में एक अन्य दलील दी गई है कि उसको अपीलार्थी के साथ उसके द्वारा किए गए समझौते की जानकारी थी । उसके संशोधित वादपत्र को निर्दिष्ट किया गया जिसमें प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा स्वीकार किया गया है कि वह विवाह-विच्छेद के लिए, बच्चे की अभिरक्षा छोड़ देने के लिए इच्छुक थी, के लिए बच्चे से मुलाकात के अधिकार से संतुष्ट थी और उसको भविष्य में भरणपोषण के खर्च और उसको संपत्ति में किसी भी प्रकार के हिस्से का दावा नहीं करना था । तत्पश्चात् उससे आगे की कार्यवाहियों की जानकारी दिए बिना न्यायालय से जाने के लिए कह दिया गया था । आगे यह अभिकथित किया गया है कि उसको हैदराबाद के माननीय न्यायाधीश से यह कहने के लिए विवश किया गया था कि वह

बच्चे की अभिरक्षा देने की इच्छुक है । इसके अतिरिक्त उसको तेलगू भाषा नहीं आती थी । यह निवेदन किया गया कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने अभिकथित किया कि पीठासीन अधिकारी ने तेलगू भाषा में उससे कुछ कहा था और उसने सहमति में सिर हिला दिया था । उसने पीठासीन अधिकारी के समक्ष कोई शिकायत नहीं की थी कि उसको धमकी देकर न्यायालय में भेजा गया है । उसने कोई शोर नहीं मचाया था कि उसको उसके पति द्वारा धमकी देकर न्यायालय में लाया गया है । यह निवेदन किया गया कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा किए गए सुस्पष्ट प्रकथन के बाद भी, कि वह तेलगु भाषा नहीं जानती, उसकी सुस्पष्ट स्वीकृति को ध्यान में रखते हुए विश्वास नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त तारीख 5 जनवरी, 2009 के निर्णय और आदेश के लोक दस्तावेज होने के कारण उनकी विधिमान्यता को साबित करने का भार प्रत्यर्थी पर है । कुछ अन्य मध्यवर्ती तथ्यों को निर्दिष्ट किया गया है अर्थात् प्रत्यर्थी-पत्नी ने तारीख 11 अप्रैल, 2012 को पुनर्विवाह कर लिया था जब डिक्री विधिमान्य थी । उसने उच्चतम न्यायालय में मामले को हैदराबाद से गुड़गांव अंतरित किए जाने के कारण यात्रा में होने वाली कठिनाई को बताया है ; इसके अतिरिक्त उसने पति के विरुद्ध अन्य मामले फाइल किए जो इस तथ्य के उदाहरण हैं कि प्रत्यर्थी, अपीलार्थी का उत्पीड़न कर रही है ।

34. प्रत्यर्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने उत्तर देते हुए निवेदन किया कि हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 की डिक्री स्वयमेव अवैध है चूंकि समझौते के माध्यम से प्रदान दिया गया विवाह-विच्छेद प्रथम कार्यवाही के अवसर पर आरंभिक कथन अभिलिखित किए जाने के उपरांत छह माह की प्रतीक्षा अवधि व्यतीत हुए बिना प्रदान नहीं किया जा सकता था । इसके अतिरिक्त प्रथम कार्यवाही के अवसर पर कथन अभिलिखित किए जाने के पश्चात् छह माह की प्रतीक्षा अवधि को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के निबंधनों के अनुसार समझौता अभिलिखित किए जाने द्वारा अभित्यजित नहीं किया जा सकता था । यह निवेदन किया गया कि यह दलील कि प्रत्यर्थी-पत्नी का द्वितीय विवाह संपन्न हो चुका है, स्पष्टतः त्रुटिपूर्ण है चूंकि ऐसा कोई द्वितीय विवाह उसके द्वारा नहीं किया गया । यह स्पष्टतः निराधार और गंभीर अभिकथन है जिसको अभिलेख पर किसी सामग्री द्वारा पुष्ट नहीं किया गया है । जहां तक प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा फाइल किए गए अन्य मामलों का संबंध है, यह निवेदन किया गया कि प्रत्यर्थी वादों को फाइल किए

जाने के द्वारा अपने सद्भावपूर्ण विधिक अधिकारों का आश्रय ले रही है जो अपीलार्थी का उत्पीड़न किए जाने के प्रयोजनार्थ नहीं है, जैसाकि अभिकथित किया गया है ।

35. यहां पर यह उल्लेख किया जा सकता है कि विवाह-विच्छेद के लिए पारित डिक्री हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय द्वारा तारीख 5 जनवरी, 2009 को पारित की गई थी । हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 के आदेश को पढ़ने से दर्शित होता है कि आदेश के शीर्ष टिप्पण में उल्लिखित है ; "पारस्परिक सहमति द्वारा तारीख 14 अगस्त, 2005 को याची सं. 1 और याची सं. 2 के मध्य संपन्न विवाह को विघटित किए जाने के प्रयोजनार्थ हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन फाइल की गई याचिका" । तथापि, आदेश पारित करते हुए यह उल्लेख किया गया कि विवाह-विच्छेद के लिए पति पी. सुन्दर राज के विरुद्ध श्रीमती सारिका राज द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(ik) के अधीन याचिका फाइल की गई है । तत्पश्चात् यह उल्लेख किया गया है कि दोनों पक्ष उपस्थित थे और उन्होंने अभिकथित किया था कि उन्होंने शुभचिंतकों और बुजुर्गों के हस्तक्षेप के कारण अपने विवाद का निपटारा शांतिपूर्ण तरीके से कर लिया है और अनुरोध किया कि समझौते, जिसको सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के अधीन याचिका के साथ न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया, की शर्तों को अभिलिखित कर लिया जाए, को मंजूर कर लिया गया था ।

36. तत्पश्चात् यह उल्लेख किया गया कि समझौते की शर्तों के अनुसार पक्षों के अवयस्क बच्चे, अर्थात् गोपी होत्री विश्वजीत मदानराज, जिसकी आयु लगभग ढाई वर्ष थी और पुत्री लक्षिता राज, जिसकी आयु डेढ़ वर्ष थी, की अभिरक्षा प्रत्यर्थी/पिता (जो अब अपीलार्थी है) के पास बनी रहेगी । यह अभिनिर्धारित किया गया कि याची/माता (जो अब प्रत्यर्थी है) को उसके अवयस्क बच्चों से सप्ताह के अंत में शनिवार को प्रातःकाल 10.00 बजे से रविवार को सायंकाल 5.00 बजे तक और छुट्टी के दौरान मुलाकात के अधिकार होंगे । आगे यह उल्लेख किया गया है कि याची की पत्नी (जो अब प्रत्यर्थी है) ने भरणपोषण या स्थायी गुजारा भत्ता के अपने समस्त अधिकारों का अधित्यजन कर दिया है, मूल याचिका को मंजूर कर लिया गया और तारीख 14 अगस्त, 2005 को दोनों पक्षों के मध्य संपन्न हुए विवाह को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के द्वारा विघटित

किया गया ।

37. पारित आदेश के परिणामस्वरूप तैयार की गई डिक्री में उल्लेख किया गया है कि याचिका तारीख 5 जनवरी, 2009 को फाइल की गई थी, इसको तारीख 3 नवंबर, 2009 को संख्यांकित किया गया था और वाद कारण तारीख 14 अगस्त, 2009 को उत्पन्न हुआ । इसलिए यह बिल्कुल स्पष्ट है कि पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री उसी दिन पारित की गई जिस दिन याचिका फाइल की गई ।

38. तारीख 5 जनवरी, 2009 को पारित किए गए उक्त आदेश में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि प्रथम कार्रवाई और द्वितीय कार्रवाई के दौरान अभिलिखित कथनों के मध्य छह माह की प्रतीक्षा अवधि व्यतीत होनी चाहिए । हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के संघटकों का अनुपालन होना दर्शित नहीं किया गया है । हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख इस प्रकार है :–

> "**13ख. पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद** – (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए यह है कि विवाह के दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, जिला न्यायालय में, इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सकते हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए ।
>
> (2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह माह के पश्चात् और उस तारीख से 18 माह के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस नहीं ले ली गई है तो, न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जएगा ।"

39. विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख की अपेक्षाएं यह हैं कि पक्ष याचिका

फाइल किए जाने के समय एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हों, इसके अतिरिक्त उनके मध्य पारस्परिक सहमति हो गई हो कि विवाह को विघटित कर दिया जाना चाहिए । उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह माह के पश्चात् और उस तारीख से 18 माह के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस न ली गई हो तो, न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच के पश्चात्, जो वह उचित समझे, अपना समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा । उक्त संघटकों का अनुसरण और अनुपालन हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 को पारित आदेश और उसके परिणामस्वरूप तैयार की गई डिक्री में किया जाना दर्शित नहीं किया गया है ।

40. पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए याचिका के प्रस्तुतीकरण से छह माह की प्रतीक्षा अवधि आज्ञापक है और इसका अनदेखा नहीं किया जा सकता । उच्चतम न्यायालय ने **श्रीमती सुरेशता देवी** बनाम **ओम प्रकाश**[1] वाले मामले में निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

> "इस धारा के विश्लेषण से स्पष्ट है कि पारस्परिक सहमति के साथ फाइल की गई याचिका न्यायालय को विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने के लिए प्राधिकृत नहीं करती । इस प्रयोजन के लिए 6 से 18 माह की प्रतीक्षा अवधि का उपबंध है । यह अंतराल प्रकटतः पक्षों को उनके द्वारा की जा रही कार्यवाही पर विचार करने और नातेदारों और मित्रों से सलाह करने का समय और अवसर प्रदान करने के लिए आशयित है । इस अंतराल अवधि में यह संभव है कि दोनों में एक पक्ष को सद्बुद्धि आ जाए वह याचिका में आगे की कार्यवाही में सम्मिलित न होने का निश्चय कर लें । यह संभव है कि पति या पत्नी उपधारा (2) के अधीन की गई संयुक्त कार्रवाई के पक्ष न हो । इस धारा में ऐसा कुछ भी नहीं है जो ऐसे किसी अनुक्रम को प्रभावित करता हो । यह धारा उपबंधित नहीं करती है कि यदि विचार बदलता है तो यह केवल एक पक्ष का ही विचार नहीं हो सकता

[1] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1904.

बल्कि दोनों का होगा ।"

माननीय न्यायाधीशों ने आगे मताभिव्यक्ति की –

" ... इस उपबंध में जो बात महत्वपूर्ण है, यह है कि जब वे विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने के अनुरोध के साथ न्यायालय को अग्रसर हों तो पारस्परिक सहमति होनी चाहिए । द्वितीयतः, न्यायालय को पक्षों के मध्य सद्भावना और सहमति के बारे में सहमत होना चाहिए । यदि जांच के समय पारस्परिक सहमति नहीं है, तो न्यायालय को विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने की कोई अधिकारिता नहीं होती । यदि इसके अन्यथा विचार व्यक्त किया जाता है, तो न्यायालय जांच कर सकता है और किसी एक पक्ष की पहल पर और दूसरे पक्ष की सहमति के बिना भी विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित कर सकता है ।

उपधारा (2) न्यायालय से अपेक्षा करती है कि वह पक्षों को सुने । इसका अर्थ यह है कि दोनों पक्षों को सुने । यदि उस प्रक्रम पर दोनों में से एक पक्ष कहता है कि 'मैंने अपनी सहमति वापस ले ली है', या 'मैं विवाह-विच्छेद का इच्छुक पक्ष नहीं हूं', तो न्यायालय पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं कर सकता । यदि न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि उसको मात्र आरंभिक याचिका के आधार पर डिक्री पारित करने की शक्ति प्राप्त है, तो वह विवाह-विच्छेद के लिए पारस्परिकता और सहमति के संपूर्ण भाव को नकारता है । धारा 13ख के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने के लिए पारस्परिक सहमति एक अनिवार्य शर्त है । पारस्परिक सहमति तब तक जारी रहनी चाहिए जब तक विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं हो जाती । यह विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालय के लिए एक निश्चायक अपेक्षा है ।"

41. इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **चरणजीत सिंह मान** बनाम **नीलम मान**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ याचिका के प्रस्तुतीकरण की तारीख से छह माह की प्रतीक्षा अवधि आज्ञापक है और

[1] ए. आई. आर. 2006 पंजाब-हरियाणा 201 = 2006 (2) आर. सी. आर. (सिविल) 497.

इसका अधित्यजन नहीं किया जा सकता ।

42. **देवेन्दर सिंह नरुला** बनाम **मीनाक्षी नांगिया**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पृष्ठ 583 पर मताभिव्यक्ति की गई कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख में प्रथम कार्रवाई की तारीख से छह माह की अवधि की क्रोध शांति अवधि के लिए उपबंधित किया गया है और जिससे कि दोनों पक्ष इस अवधि के दौरान अपना इरादा बदल दें । तद्नुसार पारस्परिक सहमति के आधार पर याचिका के प्रस्तुतीकरण और आरंभिक कार्यवाही के दौरान पक्षों से अपेक्षा की जाती है कि वे द्वितीय कार्यवाही के पूर्व छह माह की अवधि तक प्रतीक्षा करें और यदि उस अवधि के दौरान पक्ष अपना इरादा व्यक्त कर देते हैं कि वे एक साथ नहीं रह सकते, तो न्यायालय समुचित जांच करने के पश्चात्, जैसी कि वह उचित समझे, डिक्री की तारीख से विवाह को विघटित करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान कर सकता है । आगे यह मताभिव्यक्ति की गई कि यह निःसंदेह रूप से सत्य है कि विधान-मंडल ने अपनी बुद्धिमत्ता का प्रयोग करते हुए पारस्परिक सहमति के आधार पर याचिका फाइल किए जाने की तारीख से उस समय तक जब विवाह-विच्छेद की डिक्री वास्तव में प्रदान की जाती है, के मध्य छह माह की अवधि का क्रोध शांति अवधि इस आशय के साथ अनुध्यात की है कि विवाह की संस्था को बचाया जा सके । यह मताभिव्यक्ति की गई कि विधान-मंडल के आशय में त्रुटि नहीं पाई जा सकती, बल्कि ऐसे भी अवसर हो सकते हैं जब पक्षों के साथ पूर्ण न्याय किए जाने के प्रयोजनार्थ उच्चतम न्यायालय के लिए बेमेल (परस्पर विरोधी) परिस्थितियों में संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का अवलंब लेना आवश्यक हो जाए । विभिन्न मामलों में, विभिन्न दशाओं में यह मताभिव्यक्ति की गई कि उच्चतम न्यायालय, पक्षों के मध्य पूर्ण न्याय किए जाने के प्रयोजनार्थ संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त अपनी शक्तियों का अवलंब लेगा । यद्यपि माननीय न्यायाधीश इस प्रतिपादना को स्वीकार करने के लिए आनत नहीं थे कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन विवाह के विघटन के प्रत्येक मामले में उच्चतम न्यायलय को संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए । उच्चतम न्यायालय का यह मत था कि समुचित मामलों में ऐसी शक्तियों का अवलंब लिया जाना न्यायोचित होगा और ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया जाना आवश्यक भी हो सकता है ।

---

[1] (2012) 8 एस. सी. सी. 580 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2890.

43. इसलिए छह माह की प्रतीक्षा अवधि आज्ञापक है । फिर भी उच्चतम न्यायालय अपनी सर्वांगीण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए इस अवधि को क्षमा कर सकता है । तथापि, हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश को यह अधिकार प्राप्त नहीं था और वास्तव में वह याचिका फाइल किए जाने की तारीख से प्रथम कार्यवाही और द्वितीय कार्यवाही के मध्य छह माह की प्रतीक्षा अवधि को क्षमा नहीं कर सकता था और तारीख 5 जनवरी, 2009 का आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित नहीं कर सकता था । वास्तव में उक्त आक्षेपित आदेश में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि प्रतीक्षा अवधि को क्षमा कर दिया गया । फिर भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के अधीन आवेदन/याचिका पर विचार किया गया और उक्त आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की गई ।

44. पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की जा सकती है और पारित की जानी चाहिए जहां पक्ष हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के विशिष्ट उपबंधों का आश्रय लेते हुए पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने की ईप्सा करते हैं और अन्यथा नहीं । यह सुस्थापित है कि जहां किसी कार्य को किसी विशिष्ट रीति में किए जाने की शक्ति प्रदान की गई है, तो उस कार्य को उसी रीति में किया जाना चाहिए और किसी अन्य रीति में नहीं और उस कार्य का निर्वहन करने के अन्य सभी तरीके अनिवार्यतः वर्जित होंगे । इसलिए, पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के लिए अधिनियमित कानूनी उपबंधों का पालन किया जाना चाहिए और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 जैसी अन्य प्रक्रिया का पालन किए जाने के द्वारा और हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख में समाविष्ट अपेक्षाओं के अंतर्गत (छह माह की प्रतीक्षा अवधि को) क्षमा करके विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के द्वारा उनके साथ धोखा या उनका लघुकरण नहीं किया जाना चाहिए ।

45. जहां तक अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई अन्य दलीलों का संबंध है कि गुड़गांव के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 7 जून, 2012 का आक्षेपित निर्णय और डिक्री मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है चूंकि न्यायालय प्रत्यर्थी-पत्नी के परिसाक्ष्य में सुस्पष्ट असंगतताओं जैसे कि उसने अपने मुख्य परीक्षा के पैरा 13 में अभिकथित किया कि अपीलार्थी ने हैदराबाद में अपने काउंसेल

के माध्यम से हैदराबाद नगर सिविल न्यायालय के विद्वान् कुटुम्ब न्यायाधीश के समझ विवाह-विच्छेद के लिए याचिका फाइल की थी और उससे भय और प्रपीड़न के अंतर्गत अनेक कागजातों पर हस्ताक्षर करा लिए थे और हैदराबाद में अपने काउंसेल से उसकी तरफ से विवाह-विच्छेद के लिए 2008 की मूल याचिका सं. 1083 फाइल करा दी थी और 2008 के सितंबर माह में अपीलार्थी ने उससे कुछ दस्तावेजों के साथ संपर्क किया और उक्त दस्तावेजों पर बिना पढ़े हस्ताक्षर करने के लिए दबाव डाला और जब उसने इनकार किया तो अपीलार्थी पिस्तौल लेकर आया और उसको जान से मार देने की धमकी दी और उसने अपने और अपने बच्चों के जीवन के भयवश उन दस्तावेजों पर उनकी अंतर्वस्तु को बिना पढ़े और परिणामों पर बिना विचार किए हस्ताक्षर कर दिए थे, पर विचार करने में विफल रहा ; यद्यपि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा प्रतिपरीक्षा में अभिकथित किया गया है कि उसने मंगाई गई फाइल में विवाह-विच्छेद के मूल दस्तावेज देखे थे जिन पर उसके हस्ताक्षर हैं और तत्पश्चात् उसने स्वेच्छापूर्वक अभिकथित किया कि प्रत्यर्थी द्वारा उससे हस्ताक्षर बलपूर्वक लिए गए थे और उसने वादपत्र अर्थात् 2008 की मूल याचिका सं. 1083 के प्रमाणीकरण के नीचे हस्ताक्षर किए थे और उसको न्यायालय परिसर ले जाया गया था और उसने न्यायालय कक्ष के बाहर हस्ताक्षर किए थे ; इसके अतिरिक्त, वह उसी दिन अर्थात् 18 सितंबर, 2008 को न्यायालय परिसर गई थी, फिर भी वह न्यायालय परिसर के बाहर रही और यह सुझाव दिया जाना गलत अभिकथित किया गया है कि 2008 की मूल याचिका सं. 1083 पर उसके द्वारा उसके निवास स्थान पर हस्ताक्षर किए थे और तत्पश्चात् उसने स्वेच्छापूर्वक अभिकथित किया कि उससे कुछ दस्तावेजों पर प्रत्यर्थी (जो अब अपीलार्थी है) द्वारा घर पर हस्ताक्षर कराए गए थे ; इन दलीलों का कोई प्रभाव नहीं है चूंकि हैदराबाद के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित 5 जनवरी, 2009 की डिक्री किसी भी दशा में हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के उपबंधों का घोर अतिक्रमण है ।

46. प्रत्यर्थी-पत्नी की मुख्य परीक्षा और प्रतिपरीक्षा के आधार पर अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा आगे दी गई दलील कि विवाह-विच्छेद याचिका और समझौता ज्ञापन, जिनके आधार पर हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान की गई, अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी-पत्नी को मृत्यु का भय के अधीन रखकर निष्पादित कराए गए थे, तथापि, प्रतिपरीक्षा के द्वारा उसने (प्रत्यर्थी-पत्नी

ने) उन दस्तावेजों को आसानी से पहचान लिया जिन पर उसके द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और उसने बिल्कुल उसी स्थान की ओर संकेत किया जहां उसने हस्ताक्षर किए थे और अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार इससे स्पष्टतः विवक्षित होता है कि विवाह-विच्छेद याचिका प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा समस्त आवश्यक दस्तावेजों और अभिवचनों को पढ़ने के पश्चात् हस्ताक्षरित की गई थी, का भी अधिक प्रभाव या महत्व इस कारणवश नहीं है कि हिंदू विवाह अधिनियम 13ख के उपबंधों के अनुसार डिक्री पारित किए जाने की कानूनी अपेक्षा का अनुसरण या पालन नहीं किया गया था जो आक्षेपित डिक्री को दूषित करता है ।

47. यह तथ्य कि तारीख 5 जनवरी, 2009 की आक्षेपित डिक्री हैदराबाद के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा उसी तारीख को पारित की गई जिस तारीख को याचिका फाइल की गई थी और वह भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के निबंधनों के अनुसार समझौता के माध्यम से, समझ में आने योग्य नहीं है । असंगतताएं जैसाकि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अभिकथित किया गया है, वास्तव में किसी भी रीति में यह दर्शित नहीं करती कि तारीख 5 जनवरी, 2009 का निर्णय और डिक्री हैदराबाद के विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा विधिमान्य रूप से पारित किया गया और वास्तव में उसी तारीख को पारित किया गया था जिस तारीख को याचिका फाइल की गई थी, इससे हम यह धारणा करते हैं कि यह एक जल्दबाजी में किया गया निर्णय था ।

48. प्रत्यर्थी-पत्नी के अपीलार्थी के साथ समझौते में प्रविष्ट होने के संबंध में एक अन्य दलील दी गई । प्रत्यर्थी-पत्नी के संशोधित वादपत्र को भी निर्दिष्ट किया गया जिसमें उसके द्वारा स्वीकार किया गया है कि वह विवाह-विच्छेद, बच्चों की अभिरक्षा छोड़ने, मुलाकातों के अधिकार के लिए सहमति देने और भविष्य में भरणपोषण या संपत्ति में अपने हिस्से का दावा न करने की इच्छुक नहीं है । तत्पश्चात् उसे आगे की कार्यवाहियों के बारे में बताए बिना न्यायालय से जाने के लिए कहा गया था । उसके द्वारा आगे अभिकथित किया गया है कि उसको हैदराबाद के माननीय न्यायाधीश के समक्ष यह कहने के लिए विवश किया गया था कि वह बच्चों की अभिरक्षा छोड़ देने की इच्छुक है । इसके अतिरिक्त उसको तेलगू भाषा नहीं आती । प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा निवेदन किया गया कि पीठासीन अधिकारी ने उससे

तेलगू भाषा में कुछ पूछा और उसने सहमति देते हुए अपना सिर हिला दिया । उसने पीठासीन अधिकारी के समक्ष कोई शिकायत नहीं की थी कि उसको न्यायालय में डरा-धमकाकर भेजा गया है । उसने कोई शोर नहीं मचाया था कि उसको न्यायालय में उसके पति द्वारा डरा-धमकाकर लाया गया है । यह निवेदन किया गया कि प्रत्यर्थी द्वारा किया गया सुस्पष्ट प्रकथन कि उसको तेलगू भाषा नहीं आती, में उसके सुस्पष्ट स्वीकृति को ध्यान में रखते हुए कोई बल नहीं है । इसके अतिरिक्त तारीख 5 जनवरी, 2009 का निर्णय और आदेश लोक दस्तावेज है और इसकी विधिमान्यता को साबित करने का भार प्रत्यर्थी पर है । कुछ अन्य मध्यवर्ती कारकों को निर्दिष्ट किया गया है जो इस प्रकार है कि उसने तारीख 11 अप्रैल, 2012 को, जब डिक्री विधिमान्य थी, पुनर्विवाह कर लिया था । उसने उच्चतम न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए अंतरण के मामले में गुड़गांव से हैदराबाद यात्रा में कठिनाई की बात की है ; इसके अतिरिक्त उसने उसके विरुद्ध अन्य मामले फाइल किए हैं, जो इस तथ्य के उदाहरण हैं कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी का उत्पीड़न कर रही है ।

49. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई उक्त दलीलों का अधिक प्रभाव या महत्व नहीं है चूंकि हैदराबाद के कुटुम्ब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 5 जनवरी, 2009 की डिक्री अन्यथा रूप से भी विधिमान्य रूप से पारित नहीं की गई है ।

50. उपरोक्त कारणवश अपील में कोई गुणागुण नहीं है और यह तद्नुसार खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

शु.

सनफ्लैग आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड, नागपुर

बनाम

राज्य सूचना आयोग, नागपुर और अन्य

तारीख 14 नवम्बर, 2014

न्यायमूर्ति जेड. ए. हक

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22) – धारा 8(1)(क)(घ) और (ङ) और धारा 11(3) [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 74] – ईप्सित सूचना का याची (तृतीय पक्ष) से संबंधित होना – याची द्वारा ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने का विरोध इस आधार पर किया जाना कि सूचना उससे अनन्य रूप से संबंधित है और गोपनीय प्रकृति की है – यदि ईप्सित सूचना किसी लोक दस्तावेज से संबंधित है और उस लोक दस्तावेज में समाविष्ट सूचना गोपनीय व्यापार या वाणिज्यिक की परिधि के अंतर्गत नहीं आती तो ऐसे दस्तावेज में समाविष्ट सूचना उपलब्ध कराई जा सकती है ।

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 – धारा 19(4) – अपील – तृतीय पक्ष, जिससे सूचना संबंधित है, को सुने बिना राज्य सूचना आयोग द्वारा अपील का निस्तारण – धारा 19(4) राज्य सूचना आयोग पर यह बाध्यता अधिरोपित करती है कि उस पक्ष को, जिससे सूचना संबंधित है को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए और उसकी आपत्तियों पर विचार किया जाना चाहिए ।

संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी सं. 4 ने 2011 के आवेदन द्वारा लोक सूचना अधिकारी से सूचना उलब्ध कराए जाने की ईप्सा की । इस पर लोक सूचना अधिकारी ने याची को तारीख 5 फरवरी, 2011 का एक पत्र इस बात का उत्तर चाहते हुए जारी किया कि प्रत्यर्थी सं. 4 को उसके आवेदन द्वारा ईप्सित सूचना क्यों न उपलब्ध करा दी जाए । याची ने तारीख 23 फरवरी, 2011 का उत्तर प्रस्तुत करते हुए प्रत्यर्थी सं. 4 को उसके द्वारा चाही गई सूचना उपलब्ध कराए जाने का विरोध किया । लोक सूचना अधिकारी ने तारीख 4 मार्च, 2011 के पत्र द्वारा प्रत्यर्थी सं. 4 को सूचित किया कि उसके द्वारा चाही गई सूचना 2005 के सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 8(1)(क)(घ) और (ङ) और धारा 11(3) के

उपबंधों को ध्यान में रखते हुए उपलब्ध नहीं कराई जा सकती । प्रत्यर्थी सं. 4 ने व्यथित होकर राज्य सूचना आयोग के समक्ष अपील फाइल की जिसको आक्षेपित आदेश द्वारा मंजूर कर लिया गया । राज्य सूचना आयोग द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर याची द्वारा यह अपील फाइल की गई है । अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा प्रस्तुत आवेदन के मद सं. 5 द्वारा ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने के प्रयोजनार्थ आयोग द्वारा दिए गए निर्देश को ऐसी सूचना नहीं कहा जा सकता जिसको गोपनीय के रूप में विचारित किया जा सकता हो और जो याची के अनन्य कब्जे में हैं, चाहे वह समझौता ज्ञापन हो जिसका महाराष्ट्र सरकार एक पक्ष हो, तथापि, प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा उसके आवेदन के मद सं. 4 द्वारा ईप्सित सूचना प्रत्यर्थी सं. 4 को याची को सुने बिना और उसकी आपत्तियों पर विचार किए बिना उपलब्ध नहीं कराई जा सकती । प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा उसके आवेदन के मद सं. 4 द्वारा ईप्सित सूचना उन दस्तावेजों को विनिर्दिष्ट नहीं करती जिनके संबंध में सूचना ईप्सित है और ऐसे अस्पष्ट अनुरोध के आधार पर सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए दिया गया निर्देश याची को व्यथित कर सकता है । (पैरा 12 और 13)

प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा उसके आवेदन की मद सं. 5 द्वारा ईप्सित सूचना उस समझौता ज्ञापन से संबंधित है जिसका महाराष्ट्र राज्य एक पक्ष है और यह नहीं कहा जा सकता कि यह सूचना याची से अनन्य रूप से संबंधित है । प्रत्यर्थी सं. 4 को उसके आवेदन की मद सं. 5 द्वारा ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए आयोग द्वारा जारी किए गए निदेश में कोई त्रुटि नहीं पाई जाती । तथापि, प्रत्यर्थी सं. 4 के आवेदन के मद सं. 4 द्वारा ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए आयोग द्वारा जारी निदेश याची को बिना सुने और उसकी आपत्तियों पर बिना विचार किए नहीं जारी किया जा सकता था । (पैरा 14)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	2013 (6) स्केल 49 =	
	2013 (3) ए. आई. आर. बाम्बे आर. 1110 :	
	आर. के. जैन बनाम **भारत संघ और एक अन्य** ;	5, 14

[2008] ए. आई. आर. 2008 झारखंड 19 :
झारखंड राज्य और एक अन्य बनाम
नवीन कुमार सिन्हा और एक अन्य ; 9, 11

[2007] ए. आई. आर. 2007 बाम्बे 121 =
2007 (3) बाम्बे सी. आर. 134 :
सुरूप सिंह हरिया नायक बनाम
महाराष्ट्र राज्य और अन्य ; 5,14

[2001] 2001 (सप्ली.) बाम्बे सी. आर. 835 =
2010 (3) ए. आई. आर. बाम्बे आर. 522 :
स्किल इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लि. और एक अन्य
बनाम **राज्य सूचना आयोग और अन्य** । 5,14

आरंभिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 2012 की रिट याचिका सं. 863.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री ए. सी. धर्माधिकारी की ओर से श्री आर. पी. जोग

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री ए. वी. पाटिल, (सुश्री) तजवार खान (अपर सरकारी अभियोजक) और शामल काडू

न्यायमूर्ति जेड. ए. हक – याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री ए. सी. धर्माधिकारी की ओर से श्री आर. पी. जोग, प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ए. वी. पाटिल, प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान् सरकारी अभियोजक सुश्री तजवार खान और प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल की शामल काडू को सुना ।

2. न्यायादेश । न्यायादेश को तुरंत प्रत्यावर्तनीय बनाया गया ।

3. यह याचिका राज्य सूचना आयोग द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा लोक सूचना अधिकारी को प्रत्यर्थी सं. 4 के आवेदन में अभिकथित मद सं. 4 और 5 के संबंध में ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए निदेशित किया गया है । याची के अनुसार प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा ईप्सित सूचना, जिसको उपलब्ध कराए जाने का आदेश पारित किया गया, याची से संबद्ध है और आयोग 2005 के सूचना का

अधिकार अधिनियम (संक्षेप में "2005 का अधिनियम") की धारा 19(4) के उपबंधों के अनुसार आयोग याची को बिना सूचना दिए और बिना सुनवाई का अवसर प्रदान किए लोक सूचना अधिकारी को सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए निदेशित नहीं कर सकता था ।

4. प्रत्यर्थी सं. 4 ने तारीख 31 जनवरी, 2011 के अपने आवेदन द्वारा लोक सूचना अधिकारी से सूचना उपलब्ध कराए जाने की ईप्सा की । आवेदन की प्राप्ति पर लोक सूचना अधिकारी ने याची को तारीख 5 फरवरी, 2011 के पत्र द्वारा इस बात का उत्तर चाहते हुए जारी किया कि प्रत्यर्थी सं. 4 को उसके आवेदन के मद सं. 2 और 3 के अनुसार ईप्सित सूचना क्यों न उपलब्ध करा दी जाए । याची ने तारीख 23 फरवरी, 2011 का अपना उत्तर प्रस्तुत किया और प्रत्यर्थी सं. 4 को सूचना उपलब्ध कराए जाने का विरोध किया । लोक सूचना अधिकारी ने तारीख 4 मार्च, 2011 के पत्र द्वारा प्रत्यर्थी सं. 4 को सूचित किया कि उसके द्वारा आवेदन के मद सं. 3, 4 और 5 द्वारा ईप्सित सूचना 2005 के अधिनियम की धारा 8(1)(क)(घ) और (ङ) और धारा 11(3) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए उपलब्ध नहीं कराई जा सकती । प्रत्यर्थी सं. 4 ने व्यथित होकर राज्य आयोग के समक्ष अपील फाइल की जिसको आक्षेपित आदेश द्वारा मंजूर कर लिया गया ।

5. याची की ओर से दी गई दलील यह है कि प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा ईप्सित सूचना उससे संबंधित है और यह गोपनीय प्रकृति की है और प्रत्यर्थी सं. 4 को उपलब्ध नहीं कराई जा सकती । उसने निवेदन किया कि 2005 के अधिनियम की धारा 19(4) आयोग पर यह बाध्यता अधिरोपित करती है कि उस पक्ष को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाए जिससे सूचना संबंधित है । उसने निवेदन किया कि आयोग ने याची को न तो कोई सूचना दी और न ही सुनवाई का अवसर प्रदान किया, इसलिए आक्षेपित आदेश 2005 के अधिनियम की धारा 19(4) की आज्ञा के अतिलंघन में पारित किए जाने के कारण अवैध है । अपने निवेदनों के समर्थन में विद्वान् काउंसेल ने निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया :–

(i) **सुरूप सिंह हरिया नायक** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] **;**

(ii) **स्किल इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लि. और एक अन्य** बनाम **राज्य सूचना आयोग और अन्य**[2] **;**

---

[1] ए. आई. आर. 2007 बाम्बे 121 = 2007 (3) बाम्बे सी. आर. 134.

[2] 2001 (सप्ली.) बाम्बे सी. आर. 835 = 2010 (3) ए. आई. आर. बाम्बे आर. 522.

(iii) **आर. के. जैन** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1] ।

6. प्रत्यर्थी सं. 4 के विद्वान् काउंसेल श्री काडू ने निवेदन किया कि मद सं. 5 द्वारा ईप्सित सूचना महाराष्ट्र सरकार और याची के मध्य निष्पादित समझौता ज्ञापन के संबंध में है और इस दस्तावेज में समाविष्ट सूचना को "गोपनीय व्यापार" या "गोपनीय वाणिज्यिक" के रूप में प्रतीत नहीं किया जा सकता और यह नहीं कहा जा सकता कि यह 2005 के अधिनियम की धारा 8 के अधीन छूट प्राप्त है । यह निवेदन किया गया कि उपरोक्त दस्तावेज में समाविष्ट सूचना को ऐसी सूचना नहीं कहा जा सकता जो एक मात्र याची से ही संबंधित हो और चूंकि यह महाराष्ट्र सरकार की ओर से निष्पादित समझौता ज्ञापन है, प्रत्यर्थी सं. 4 इस सूचना को प्राप्त करने का हकदार है और इस सूचना को याची की ओर से किए गए आक्षेप के आधार पर छिपाया नहीं जा सकता । जहां तक आवेदन की मद सं. 4 द्वारा ईप्सित सूचना का संबंध है, प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से यह निवेदन किया गया कि वे दस्तावेज, जिनको महाराष्ट्र सरकार द्वारा निष्पादित समझौता ज्ञापन में निर्दिष्ट किया गया है और जिनका अवलंब लिया गया है, की प्रतियों की भी आपूर्ति याची की ओर से किए गए आक्षेपों को विचार में लाए बिना किया जाना अपेक्षित है ।

7. प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री ए. वी. पाटिल ने निवेदन किया कि वह वर्तमान मामले में आयोग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जो न्यायनिर्णयन प्राधिकारी हैं और इसलिए, जहां तक मामले के गुणागुण का संबंध है, उनसे किसी निवेदन की अपेक्षा नहीं की जा सकती । विद्वान् अपर सरकारी अभियोजक सुश्री तजवार खान ने भी निवेदन किया कि वह प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 का प्रतिनिधित्व कर रहीं हैं जो कि प्राधिकारी हैं और इसलिए उनका इस मामले की विषयवस्तु से कुछ भी लेना-देना नहीं है ।

8. विद्वान् काउंसेल श्री पाटिल ने मामले के गुणागुण पर कोई निवेदन नहीं किया, तथापि, न्यायालय के सहायता के प्रयोजनार्थ 2010 की लेटर्स पेटेंट अपील और अन्य संबद्ध मामलों में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की प्रति इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की । इस निर्णय के पैरा 15 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि 2005 के अधिनियम की धारा 11 में यह प्रक्रिया विहित है जो प्राधिकारी को नैसर्गिक न्याय के

---

[1] 2013 (6) स्केल 49 = 2013 (3) ए. आई. आर. बाम्बे आर. 1110.

सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए निष्पक्ष और उचित विनिश्चय करने के लिए समर्थ बनाती है । निर्णय के पैरा 16 में यह अधिकथित किया गया है कि 2005 के अधिनियम की धारा 11(1) दो परिस्थितियों को अनुध्यात करती है जहां प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना अपेक्षित है :–

(i) जब सूचना तृतीय पक्ष से संबंधित है और प्रथमदृष्ट्या गोपनीय अभिलिखित की जा सकती है ।

(ii) जब किसी लोक प्राधिकारी को तृतीय पक्ष द्वारा उपलब्ध कराई गई सूचना को उस तृतीय पक्ष द्वारा गोपनीय सूचना के रूप में प्रतीत किया जाता है ।

9. प्रत्यर्थी सं. 4 के विद्वान् काउंसेल श्री काडू ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया और निम्नलिखित निर्णय का अवलंब लिया :–

(i) झारखंड राज्य और एक अन्य **बनाम** नवीन कुमार सिन्हा और एक अन्य (ए. आई. आर. 2008 झारखंड 19)।

(ii) 2010 की रिट याचिका (एमडी) सं. 5427 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया तारीख 25 जून, 2007 का निर्णय और अन्य संबंधित मामले ।

10. मेरे विचार में पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और उपरोक्त निर्दिष्ट निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक मामले में 2005 के अधिनियम की धारा 19(4) के अधीन प्रतिपक्ष को सूचना जारी किया जाना अपेक्षित होता है और सूचना प्रदान किए जाने का कोई निर्देश दिए जाने के पहले तृतीय पक्ष को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक होता है । दिल्ली उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने 2005 के अधिनियम की धारा 11(1) की परिधि पर विचार किया और अधिकथित किया कि यदि सूचना को प्रथमदृष्ट्या गोपनीय प्रतीत किया जाता है तो तृतीय पक्ष को सूचना दिया जाना अपेक्षित होता है ।

11. **झारखंड राज्य और एक अन्य** बनाम **नवीन कुमार सिन्हा और एक अन्य**[1] वाले मामले में झारखंड उच्च न्यायालय ने तृतीय पक्ष को सूचना जारी किए जाने की अपेक्षा के प्रश्न पर विचार किया और इस

[1] ए. आई. आर. 2008 झारखंड 19.

निर्णय के पैराग्राफ 26 और 27 में सुसंगत निष्कर्ष अभिलिखित किए जो निम्नलिखित हैं :–

"26. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, धारा 8(1)(घ) सुसंगत है जो अन्य बातों के साथ उपबंधित करती है कि प्राधिकारी वाणिज्यिक गोपनीयता, व्यापारिक रहस्य या बौद्धिक संपदा से संबंधित सूचना, जिसके प्रकटीकरण से किसी तृतीय पक्ष की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति को नुकसान पहुंच सकता है, जब तक कि सक्षम प्राधिकारी संतुष्ट न हो जाए कि वृहत्तर लोकहित में ऐसी सूचना का प्रकटीकरण आवश्यक है, प्रदान करने से इनकार कर सकता है । इसलिए प्रश्न जिस पर विचार किया जाना अपेक्षित है, यह है कि क्या बोली दाताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए विभिन्न दस्तावेजों का प्रकटीकरण व्यापारिक रहस्य या वाणिज्यिक गोपनीयता या बौद्धिक संपदा है । प्रथमदृष्ट्या हमारा विचार है कि यदि एक बार किसी निविदा के प्रदान किए जाने के मामले में निर्णय ले लिया जाता है, तो उसको गोपनीय रखे जाने का कोई न्यायौचित्य नहीं है । लोगों को उस आधार को जानने का अधिकार है जिस पर निविदा प्रदान किए जाने का निर्णय लिया गया है । यदि किसी लोक प्राधिकारी द्वारा निविदाएं आमंत्रित की जाती हैं और निविदा दस्तावेजों के आधार पर किसी निविदा या बोलीदाता की अर्हता निर्णीत की जाती है तो वे निविदा दस्तावेज गोपनीय नहीं रखे जा सकते और वे भी निविदा के निर्णीत किए जाने के पश्चात् और कार्यादेश इस आधार पर जारी किया जाता है कि इसका जारी किए जाने का अर्थ व्यापार रहस्य या वाणिज्यिक गोपनीयता का प्रकटीकरण होगा । यदि सरकारी प्राधिकारी ऐसे किसी दस्तावेज के प्रकटीकरण से इनकार करते हैं तो अधिनियम का आत्यंतिक प्रयोजन ही विफल हो जाएगा । इसके अतिरिक्त, याची द्वारा ईप्सित सूचना का प्रकटीकरण व्यापार रहस्य या वाणिज्यिक गोपनीयता न तो हो सकता है और न ही होगा ; फिर भी ऐसी किसी सूचना का प्रकटीकरण लोक हित में होगा, चूंकि इससे सरकार के क्रियाकलापों में पारदर्शिता दर्शित होगी ।

27. जैसाकि अनुपूरक शपथपत्र में अभिकथित किया गया है, झारखंड विधान सभा समिति के अध्यक्ष और विधायक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर विधानसभा को दस्तावेज उपलबध कराए गए थे । दस्तावेज, जिसके प्रकटीकरण की ईप्सा की गई, अनुभव

प्रमाणपत्र है जिसको एक कंपनी द्वारा सफल बोलीदाता के पक्ष में जारी किया गया था और इसके अलावा एक अन्य दस्तावेज के प्रकटीकरण की ईप्सा भी की गई जो कंपनी के व्यवसाय और लाभ से संबंधित था । चूंकि निविदा प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी है और संविदा प्रदान की जा चुकी है, इससे संविदा प्रभावित नहीं होगी । उपरोक्त के अतिरिक्त, नागरिक को अधिकार है कि वह किसी ऐसे दस्तावेज की असलियत के बारे में जाने जिसे निविदाकर्ता ने सलाह कार्य या किसी अन्य कार्य के लिए निविदा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किया है । जैसाकि पहले अवेक्षित किया गया है, निविदा प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी है और संविदा प्रदान की जा चुकी है, इसलिए, इससे संविदा प्रभावित नहीं होगी । मामले को किसी भी दृष्टि से देखते हुए प्रश्नगत दस्तावेज को व्यापार रहस्य से या वाणिज्यिक गोपनीयता के रूप में प्रतीत नहीं किया जा सकता । हमारी सुविचारित राय में, किसी निजी व्यक्ति के साथ लोक प्राधिकारी द्वारा की गई संविदा को संविदा की समाप्ति के पश्चात् गोपनीय मामला नहीं माना जा सकता ।'

पूर्वोक्त निर्णय को चुनौती देने वाली 2007 की विशेष अनुमति याचिका (सिविल) सं. 18030 माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 5 अक्तूबर, 2007 के निर्णय द्वारा खारिज की जा चुकी है ।

2010 की रिट याचिका (एमडी) सं. 5427 और संबद्ध मामलों में मद्रास उच्च न्यायालय ने प्रतिपक्ष को जारी सूचना की अपेक्षा पर विचार किया और निर्णय के पैरा 11 और 12 में अभिलिखित निष्कर्ष निम्नलिखित है :–

"11. इसलिए प्रमुख दलील कि याची को आपत्ति प्रस्तुत करने का अधिकार उद्भूत हुआ, इस संदर्भ में सही प्रतीत होता है यदि कोई दस्तावेज सरकारी प्राधिकारियों के समक्ष किसी व्यक्ति द्वारा अनन्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है जैसेकि संपत्ति कथन, आयकर विवरणी इत्यादि किन्तु पट्टा विलेखों और यातायात अनुज्ञाओं के मामले में, जो कानूनी प्राधिकारों से उत्पन्न होते हैं और जहां याची के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अनन्य कब्जे में है, तो उसको किसी तृतीय पक्ष के रूप में लोक सूचना प्राधिकारी द्वारा प्रकट की जाने वाली किसी सूचना के बारे में आक्षेप करने का अधिकार नहीं हो सकता । खनिजों और यातायात अनुज्ञाओं से

संबंधित पट्टा विलेख ऐसे दस्तावेज नहीं होते जिनको पूर्वेक्षण खदान संचालकों द्वारा तैयार किया जाता है या रखा जाता है किन्तु किसी खान या खनिज का पूर्वेक्षण एक विशेषाधिकार होता है जो राज्य द्वारा व्यक्तियों को प्रदान किया जाता है जो 1957 के खान और खनिज अधिनियम और उसके अधीन विरचित नियम के अधीन विहित मानकों को स्वीकार करते हैं ।

12. वर्तमान मामले में सूचना अधिकारी के रूप में तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा याची को सूचना जारी किया जाना और उसकी आपत्ति प्राप्त किया जाना और एक नागरिक द्वारा ईप्सित दस्तावेजों को प्रदान करने से इनकार किया जाना स्पष्टतः सूचना का अधिकार अधिनियम की परिधि के परे है । यदि राज्य को सूचना उपलब्ध होती है और ऐसी सूचना राज्य की अनन्य अभिरक्षा में है तो ऐसे मामलों पर तृतीय पक्ष की राय की ईप्सा किए जाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता, विशेष रूप से जब वे लोक दस्तावेज हों । ऐसी सूचना के प्रकटीकरण द्वारा याची का कोई विशेषाधिकार या कारबार हित प्रभावित नहीं होता । इसके विपरीत, ऐसा प्रकटीकरण किसी पक्ष की ऐसे दस्तावेजों पर कार्रवाई किए जाने और समुचित कदम उठाए जाने में सहायता कर सकता है ।'

12 एवं 13. यदि आक्षेपित आदेश का उपरोक्त निर्णयों के प्रकाश में परीक्षण किया जाता है, तो यह अभिनिर्धारित किया जाना होगा कि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा प्रस्तुत आवेदन के मद सं. 5 द्वारा ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने के प्रयोजनार्थ आयोग द्वारा दिए गए निर्देश को ऐसी सूचना नहीं कहा जा सकता जिसको गोपनीय के रूप में विचारित किया जा सकता हो और जो याची के अनन्य कब्जे में हैं, चाहे वह समझौता ज्ञापन हो जिसका महाराष्ट्र सरकार एक पक्ष हो, तथापि, प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा उसके आवेदन के मद सं. 4 द्वारा ईप्सित सूचना प्रत्यर्थी सं. 4 को याची को सुने बिना और उसकी आपत्तियों पर विचार किए बिना उपलब्ध नहीं कराई जा सकती । प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा उसके आवेदन के मद सं. 4 द्वारा ईप्सित सूचना उन दस्तावेजों को विनिर्दिष्ट नहीं करती जिनके संबंध में सूचना ईप्सित है और ऐसे अस्पष्ट अनुरोध के आधार पर सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए दिया गया निर्देश याची को व्यथित कर सकता है ।

14. याची की ओर से **आर. के. जैन** बनाम **भारत संघ** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का लिया गया अवलंब दिशाहीन है, चूंकि इस मामले में तृतीय पक्ष की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों से संबंधित सूचना

उपलब्ध कराए जाने की ईप्सा की गई थी जिसने ऐसी सूचना उपलब्ध कराए जाने का विरोध किया था । **सुरूप सिंह हरिया नायक** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में अस्पताल अभिलेखों से संबंधित सूचना दिए जाने के बाबत इस विवाद्यक को पुनः उठाया गया था । **स्किल इन्फ्रास्ट्रक्चर** बनाम **राज्य सूचना आयोग और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय में ऐसी सूचना जो तृतीय पक्ष के कब्जे में अनन्य रूप से नहीं थी और जो राज्य सरकार के संव्यवहार से संबंधित थी, को उपलब्ध कराए जाने के बारे में विवाद्यक पर विचार नहीं किया गया है । याची द्वारा जिन निर्णयों का अवलंब लिया गया है, वे उसकी सहायता नहीं करते ।

जहां तक वर्तमान मामले के तथ्यों का संबंध है, प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा उसके आवेदन की मद सं. 5 द्वारा ईप्सित सूचना उस समझौता ज्ञापन से संबंधित है जिसका महाराष्ट्र राज्य एक पक्ष है और यह नहीं कहा जा सकता कि यह सूचना याची से अनन्य रूप से संबंधित है । प्रत्यर्थी सं. 4 को उसके आवेदन की मद सं. 5 द्वारा ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए आयोग द्वारा जारी किए गए निदेश में कोई त्रुटि नहीं पाई जाती । तथापि, प्रत्यर्थी सं. 4 के आवेदन के मद सं. 4 द्वारा ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए आयोग द्वारा जारी निदेश याची को बिना सुने और उसकी आपत्तियों पर बिना विचार किए नहीं जारी किया जा सकता था ।

15. परिणामतः, रिट याचिका भागतः रूप से स्वीकार की जाती है । आक्षेपित आदेश प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा उसके आवेदन की मद सं. 5 द्वारा ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए जारी किए गए निदेश और प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा उसके आवेदन के मद सं. 4 द्वारा ईप्सित सूचना उपलब्ध कराए जाने के लिए आयोग द्वारा जारी निदेश अभिखंडित किए जाते हैं । प्रत्यर्थी सं. 4 को स्वतंत्रता है कि वह समुचित आवेदन प्रस्तुत कर सकता है, यदि उसको इस प्रकार की सलाह दी जाती है और यदि ऐसा कोई आवेदन फाइल किया जाता है, तो लोक सूचना अधिकारी और/या आयोग उस पर 2005 के अधिनियम के उपबंधों के अनुसार विचार कर सकता है ।

16. इन परिस्थितियों में पक्ष अपनी लागत स्वयं वहन करेंगे ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

शु.

प्रवीण टंक (श्रीमती)

बनाम

अरविन्द कुमार टंक

तारीख 19 नवंबर, 2014

न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी और न्यायमूर्ति जे. के. रंका

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(ik) – विवाह-विच्छेद – क्रूरता – जहां अपीलार्थी-पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी-पति के चरित्र पर काफी गंभीर लांछन लगाकर पक्षकारों के बीच विवाह को असुधार्य बना दिया हो और दोनों पक्षकारों का एक साथ जीवन-यापन करना असंभव हो वहां क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर किया जाना उचित और न्यायसंगत है ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी-पत्नी का विवाह तारीख 20 मई, 1994 को हिन्दू धर्म के अनुसार उदयपुर में प्रत्यर्थी-पति के साथ हुआ था । इस अपील के पक्षकारों के यहां इस विवाह बंधन से एक पुत्र ने तारीख 19 सितंबर, 1999 को जन्म लिया जिसका नाम अभिमन्यु है और इन पक्षकारों का विवाह दोनों परिवारों की सहमति से हुआ था । प्रत्यर्थी-पति ने यह देखा कि प्रतिवादी-2 प्रायः उनसे मिलने आया करता था और उसे वैवाहिक मामला सं. 237/2001 में पक्षकार बनाया गया है जिसका नाम वीरेन्द्र सिंह टंक पुत्र श्री हरि नारायण सिंह टंक है और यह पक्षकार (वीरेन्द्र सिंह टंक), जैसाकि अपीलार्थी द्वारा अभिकथन किया गया है, उसका चाचा है और प्रत्यर्थी को अपना भाई मानता था किंतु अनावेदक साक्षी-1 और उसके पिता श्री गुलाब चंद अनावेदक साक्षी-2 के परिसाक्ष्य में यह कथन किया गया है कि वीरेन्द्र सिंह टंक पुत्र हरि नारायण सिंह टंक अपीलार्थी की माता के चाचा का पुत्र है जो सुसंगत समय के दौरान अविवाहित था और सरकारी सेवा में अलवर में तैनात था । वीरेन्द्र सिंह टंक की मौजूदगी उस समय देखी गई जब वे ब्यावर में थे जो प्रत्यर्थी का मूल निवास स्थान है या उसे उदयपुर में देखा गया था जहां पर अपीलार्थी का पिता सुसंगत समय पर रहता था या उसे जामनगर में देखा गया था जहां प्रत्यर्थी सेवारत था और यही कारण है कि अपीलार्थी के चरित्र पर संदेह हुआ परिणामस्वरूप वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी के बीच मतभेद हो गया

और प्रत्यर्थी-पति के मन में जो संदेह हुआ उससे पति ने अपनी पत्नी के विवाह पूर्व के जीवन के संबंध में पूछताछ की जिससे प्रत्यर्थी-पति को यह पता चला कि अपीलार्थी-पत्नी के वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ अवैध संबंध हैं, और तारीख 19 सितंबर, 1999 को पुत्र के जन्म के पश्चात् प्रत्यर्थी-पति ने घोर संदेह होने के कारण पुत्र का डी.एन.ए. परीक्षण कराया जो पति के अनुमान के अनुसार सही निकला और वैवाहिक विवाद का मूल कारण बना । तारीख 17 जुलाई, 2001 को प्रत्यर्थी-पति ने कुटुम्ब न्यायालय, अजमेर में इस आधार पर विवाह-विच्छेद की ईप्सा के लिए अधिनियम की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद अर्जी सं. 237/2001 फाइल की जिसमें यह निवेदन किया कि अपीलार्थी-पत्नी ने प्रत्यर्थी-पति के प्रति क्रूरता कारित की है । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी-पत्नी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन अलग से एक आवेदन फाइल किया जिसमें अपने और अपने पुत्र अभिमन्यु जिसकी उस समय आयु 15 वर्ष थी और वह कक्षा 9 का छात्र था, के भरणपोषण के लिए ईप्सा की । विवाह-विच्छेद की अर्जी में गंभीर अभिकथन अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध किए गए हैं जिनमें वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ अवैध संबंधों का उल्लेख है जिसे विवाह-विच्छेद की अर्जी में पक्षकार बनाया गया है और समन तामील कराए जाने के बावजूद विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा वीरेन्द्र सिंह टंक के विरुद्ध एकपक्षीय आदेश पारित किया गया किंतु उसे अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील में पक्षकार-प्रत्यर्थी नहीं बनाया गया है । अपीलार्थी-पत्नी ने अपने लिखित कथन में अन्य बातों के साथ यह प्रतिवाद किया है कि विवाह-विच्छेद की अर्जी मिथ्या आधारों पर फाइल की गई है और उसमें किए गए अभिकथन अनुमान और अटकलों पर आधारित हैं जो साक्ष्य से तनिक भी साबित नहीं किए जा सकते । पत्नी ने इस बात से इनकार किया है कि वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ उसके अवैध संबंध थे और उसने यह भी दलील दी है कि वह अपने पुत्र के साथ अपने वैवाहिक गृह में रहने के लिए तैयार है । अपीलार्थी-पत्नी ने यह भी अभिकथन किया है कि प्रत्यर्थी-पति ने अभिकथित संदेह के कारण वैवाहिक जीवन नष्ट कर दिया है जिसका कोई आधार नहीं है और प्रत्यर्थी-पति को उसकी अपनी गलती का लाभ नहीं दिया जा सकता और यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पति एक सिविल अभियंता है तथा जामनगर में सेवारत है जहां उसकी मासिक आय 20,000/- रुपए है और वर्तमान रूप से वह उसकी सगी बहिन दीपिका जो अपने माता-पिता को 2 जुलाई, 2001 को छोड़ चुकी है, के साथ रहता है

और अपीलार्थी-पत्नी ने यह भी अभिकथन किया है कि प्रत्यर्थी-पति उसके पिता के यहां सीकर में तारीख 28 दिसंबर, 2000 को आया था और इसके पूर्व एक बार और आया था तथा उसने फ्लैट और मारुति कार खरीदने के लिए पांच लाख रुपए की मांग की थी और अपीलार्थी-पत्नी का पिता प्रत्यर्थी-पति द्वारा की गई मांग को पूरा करने के लिए सक्षम नहीं था और यही कारण है कि अपीलार्थी-पत्नी और उसके पुत्र को उनके वैवाहिक गृह से बाहर कर दिया गया । इन आबद्धकारी कारणों के अंतर्गत, अपीलार्थी-पत्नी अपने माता-पिता के साथ रहती है । उसने विवाह-विच्छेद की अर्जी का खंडन किया है और उसे खारिज किए जाने की प्रार्थना की है । अभिवाकों के आधार पर कुटुम्ब न्यायालय ने उपर्युक्त मुद्दे विरचित किए और अर्जी का विचारण किया और साक्ष्य अभिलिखित करने और पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने इस आधार पर विवाह-विच्छेद मंजूर किया कि अपीलार्थी-पत्नी ने प्रत्यर्थी-पति के साथ क्रूरता कारित की है और तारीख 15 जून, 2007 के निर्णय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर की । इसीलिए वर्तमान अपील फाइल की गई है । उच्च न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – धारा 13(1)(ik) को व्यापक रूप से इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि ऐसा आचरण जो अन्य पक्षकार को ऐसी मानसिक पीड़ा और यातना कारित करे जिससे उसका पहले पक्षकार के साथ रहना असंभव हो जाए । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मानसिक क्रूरता ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए कि पक्षकार युक्तियुक्त रूप से एक-दूसरे के साथ न रह सकें । स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि आहत पक्षकार से युक्तियुक्त रूप से यह नहीं कहा जा सके कि वह अन्य पक्षकार के साथ रहे । यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि मानसिक क्रूरता अर्जीदार के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो । ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पक्षकारों के सामाजिक स्तर, शैक्षणिक हैसियत, समाज में रहन-सहन के स्तर को ध्यान में रखना चाहिए और इस संभावना को भी ध्यान में रखना चाहिए कि जो पक्षकार अलग-अलग रह रहे हैं क्या वे एक साथ रह सकते हैं या नहीं । एक मामले में जो कृत्य क्रूरता की कोटि में आता है, यह आवश्यक नहीं है कि वह कृत्य अन्य मामले में क्रूरता कहलाए । प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखने पर ही सुनिश्चित किया जा सकता है कि कोई कृत्य क्रूरता है या नहीं । यह मामला अभियोग और अभिकथन से संबंधित है, इसलिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि किस संदर्भ में

अभियोग और अभिकथन किए गए हैं । क्रूरता गठित करने के लिए, जिस कृत्य की शिकायत की गई है वह इतना गंभीर और गुरुतर होना चाहिए कि यह निष्कर्ष निकले कि दंपत्ति से युक्तियुक्त रूप से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वे दूसरे दंपत्ति के साथ रह सके । क्रूरता गठित करने के लिए यह आवश्यक है कि वैवाहिक जीवन की सामान्य नोकझोंक से अधिक गंभीर कृत्य कारित होना चाहिए । मामले की परिस्थितियों और पृष्ठभूमि को दृष्टिगत करते हुए पति या पत्नी द्वारा किए गए आचरण पर विचार किया जाना चाहिए ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि जिस कृत्य की शिकायत की गई है वह वैवाहिक विधि के अधीन क्रूरता की कोटि में आता है या नहीं । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, आचरण पर विचार अनेक कारकों के आधार पर किया जाना चाहिए, जैसे पक्षकारों की सामाजिक हैसियत, उनकी शैक्षणिक योग्यता, शारीरिक और मानसिक स्थिति, रीति-रिवाज । ऐसे कोई भी मापदंड नहीं हैं जिनके आधार पर परिभाषा की रचना की जा सके और ऐसी परिस्थितियों का निर्धारण किया जा सके जिनसे क्रूरता गठित होती हो । क्रूरता इस प्रकार की होनी चाहिए कि उससे न्यायालय का यह समाधान हो जाए कि पक्षकारों के बीच संबंध इस सीमा तक खराब हो गए हैं कि मानसिक पीड़ा, यातना और वेदना से उनका एक साथ जीवन व्यतीत करना असंभव है और शिकायत करने वाला पति या पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है । शारीरिक हिंसा क्रूरता गठित करने के लिए सदैव आवश्यक नहीं है और निरंतर किया जाने वाला मानसिक यातना और वेदना का कृत्य इस अधिनियम की धारा 10 के अर्थान्तर्गत क्रूरता की कोटि में आ सकता है । क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की अर्जी पर कार्यवाही करने वाले न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसके समक्ष जो समस्याएं प्रस्तुत की जाती हैं वे मनुष्यों से संबंधित होती हैं और पति या पत्नी के आचरण में मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को विवाह-विच्छेद की अर्जी का निपटारा करने के पूर्व ध्यान में रखना चाहिए । एक पति या पत्नी का आचरण कितना भी सामान्य क्यों न हो वह अपने जीवन-साथी को कष्ट पहुंचा सकता है । इसके पूर्व कि किसी आचरण को क्रूरता कहा जा जाए, उसमें उग्रता होनी चाहिए । न्यायालय को उस आचरण में उग्रता का निर्धारण करना चाहिए । यह ध्यान में रखना चाहिए कि क्या आचरण ऐसा है कि कोई भी सामान्य प्रज्ञा वाला युक्तियुक्त व्यक्ति उसे सहन न कर सके । इस पर भी विचार किया जाना चाहिए कि क्या शिकायतकर्ता एक सामान्य जीवन व्यतीत कर रहा है या नहीं । प्रत्येक वैवाहिक आचरण जिससे दूसरे पति या पत्नी को कष्ट

पहुंचे क्रूरता की कोटि में नहीं आ सकता । मात्र छोटी-मोटी कहासुनी जो वैवाहिक जीवन में नित्य होती है क्रूरता की कोटि में नहीं आ सकती । वैवाहिक जीवन में क्रूरता बर्बरतापूर्ण भी हो सकती है । दोनों पक्षकारों ने एक दूसरों के विरुद्ध अभिकथन किए हैं कि वे वैवाहिक संबंधों को सौहार्द बनाए रखना नहीं चाहते हैं और अन्य किसी व्यक्ति के साथ संबंध बनाए हुए हैं । प्रत्यर्थी के अनुसार, अपीलार्थी-पत्नी के वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ विवाह पूर्व से अवैध संबंध थे जो उसके माता के चाचा का पुत्र है और वे संबंध विवाह के पश्चात् भी बने रहे और अपीलार्थी के अनुसार, प्रत्यर्थी-पति के अवैध संबंध अपीलार्थी की छोटी बहिन दीपिका के साथ बने हुए थे । तथापि, विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री तथा किए गए अभिकथनों एवं प्रति-अभिकथनों पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अभिकथनों से निश्चित रूप से पति के साथ क्रूरता कारित की गई है किंतु वह संदेह के परे साबित नहीं की जा सकी और यह अभिकथन भी साबित नहीं किया जा सका कि प्रत्यर्थी-पति के अवैध संबंध अपीलार्थी-पत्नी की छोटी बहिन के साथ थे, तथापि, अपीलार्थी-पत्नी के साक्ष्य से यह साबित नहीं कर सकी और इस तथ्य पर कुटुम्ब न्यायालय द्वारा विचार किया गया है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल किए जाने के पूर्व ऐसी कोई भी शिकायत किसी भी समय पत्नी द्वारा नहीं की गई थी कि उसकी छोटी बहिन दीपिका प्रत्यर्थी-पति के साथ भाग गई है और उसके साथ रहती है जिसका संचयी रूप से यह प्रभाव पड़ा कि प्रत्यर्थी-पति के साथ मानसिक क्रूरता साबित हुई और मुद्दा सं. 1 प्रत्यर्थी-पति के पक्ष में विनिश्चित किया गया और वास्तव में दोनों पक्षकार 14 वर्षों से अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और भरणपोषण तथा बच्चे की अभिरक्षा से संबंधित कार्यवाहियां भी संस्थित की गई हैं और अभिरक्षा से संबंधित एक मामला सक्षम न्यायालय के समक्ष लंबित चल रहा है । निःसंदेह यह साबित हो गया है कि एक सुदृढ़ विवाह की बुनियाद सहनशीलता, समझौता और एक-दूसरे के सम्मान पर आधारित है । एक-दूसरे की गलती को सहन करना प्रत्येक विवाह के बनाए रखने के लिए आवश्यक है । छोटी-मोटी नोकझोंक और मतभेदों को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं आंकना चाहिए और स्वर्ग जैसे वातावरण को नष्ट नहीं करना चाहिए । प्रत्येक मामले में क्रूरता को समझने के लिए लड़ाई-झगड़े का आंकलन इसी प्रकार किया जाना चाहिए और जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है शारीरिक और मानसिक दशा तथा सामाजिक हैसियत को भी ध्यान में रखते हुए ही क्रूरता का निर्धारण किया जाना चाहिए । अत्यधिक सूक्ष्मता

और अत्यधिक संवेदनशीलता के साथ इन बातों पर विचार करना वैवाहिक वातावरण के लिए हानिकर हो सकता है । न्यायालय को एक आदर्श पति और एक आदर्श पत्नी के रूप में विचार नहीं करना चाहिए । न्यायालय के समक्ष प्रत्येक पुरुष और महिला का एक अलग स्वभाव हो सकता है । एक आदर्श पति और आदर्श पत्नी कभी भी वैवाहिक न्यायालय के समक्ष आवेदन नहीं करेंगे । इस न्यायालय द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया है कि नवंबर, 2000 से पति और पत्नी अलग-अलग रहते हैं और लगभग 14 वर्षों से दोनों के बीच मुकदमेबाजी चल रही है और इस दौरान दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन भरणपोषण का आवेदन भी फाइल किया गया था और इसके पश्चात् अपने पुत्र की अभिरक्षा के लिए संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के अधीन भी अर्जी फाइल की गई थी जो कि सक्षम न्यायालय के समक्ष अभी भी लंबित है और इस संबंध में मनस्कता का भी अवलंब लिया गया है और कई प्रकार के विकल्पों को भी अपनाया गया है किंतु सभी विफल हो गए और दोनों पति-पत्नी पिछले 14 वर्षों से मुकदमे लड़ रहे हैं । यह भी देखा जा सकता है कि वीरेन्द्र सिंह टंक को सम्यक् रूप से विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा समन तामील कराया गया था और इसके बावजूद उस पर स्पष्ट आरोप लगाया गया है कि अपीलार्थी-पत्नी के साथ उसके अवैध संबंध हैं किंतु वह विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष पेश नहीं हुआ है और उसके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई है और वर्तमान अपील अपीलार्थी-पत्नी द्वारा, तारीख 15 जुलाई, 2007 को विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के विरुद्ध, फाइल की गई है, अपीलार्थी-पत्नी ने वीरेन्द्र सिंह टंक को प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार नहीं बनाया है । तथापि, यह सत्य है कि ऐसे मामलों में ठोस साक्ष्य द्वारा संदेह साबित नहीं किया जा सकता और उसे केवल संभाव्यताओं के प्रबलता के आधार पर ही समझा जा सकता है जिसके लिए निश्चित रूप से कड़ी सावधानी बरतनी चाहिए कि पति या पत्नी के साथ किसी भी प्रकार की मानसिक क्रूरता कारित की गई है या नहीं और इस मामले में प्रत्यर्थी-पति के साथ की गई मानसिक क्रूरता को अनदेखा नहीं किया जा सकता । न्यायालय को प्रत्यर्थी-पति के काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील न्यायोचित दिखाई देता है कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध किए गए आवेदन के उत्तर में जो अभिकथन किए गए हैं वे निराधार हैं और इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता । यह आवश्यक नहीं है कि क्रूरता इतनी गंभीर हो कि उससे ऐसी युक्तियुक्त आशंका पैदा हो कि वह अपीलार्थी के लिए हानिकर या हानिप्रद हो । क्रूरता ऐसी होनी चाहिए

जिससे न्यायालय का यह समाधान हो जाए कि पक्षकारों के बीच संबंध इस सीमा तक दूषित हो गए हैं कि उनका मानिसक पीड़ा के बिना एक साथ रहना असंभव हो जाए । सामान्यतः, क्रूरता में केवल एक ही कृत्य नहीं पाया जा सकता अपितु क्रूरता समय-समय पर होने वाले कई कृत्यों से मिलकर भी गठित होती है । क्रूरता के कई रूप हो सकते हैं । यह पति-पत्नी में से किसी के मन में पैदा हुई इस आशंका के रूप में हो सकती है कि अपने जीवन-साथी के साथ जीवन व्यतीत करना भयावह है । वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी-पति के विरुद्ध अर्जी के उत्तर में मिथ्या अभिकथन किए गए हैं जिनका कोई आधार नहीं है जिस पर विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा विचार किया गया था और न्यायालय की राय में, प्रत्यर्थी-पति के साथ क्रूरता कारित किए जाने के संबंध में पर्याप्त अभिकथन हैं । अपने पति के चरित्र पर किए गए निराधार और मिथ्या अभिकथन उसकी मान-मर्यादा को क्षति पहुंचाने के सिवाय कुछ नहीं हैं और यह कृत्य मानसिक क्रूरता की कोटि में आता है और इस पर विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी-पति के पक्ष में विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए यह विचार किया गया है कि पत्नी द्वारा क्रूरता कारित की गई है । न्यायालय यह भी अभिनिर्धारित करता है कि कोई भी निष्पक्ष रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी-पति पर कीचड़ उछाले जाने के संबंध में जो अभिकथन किए गए हैं कि प्रत्यर्थी-पति के अपीलार्थी-पत्नी की छोटी बहिन ने प्रत्यर्थी-पति के जीवन में प्रवेश किया जो कि प्रथमदृष्ट्या विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा साक्ष्य से सिद्ध नहीं किया गया और मामले की संपूर्ण पृष्ठभूमि को दृष्टिगत करते हुए दोनों के लिए सुखद वैवाहिक जीवन व्यतीत करना कठिन है । अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य परिस्थितियों से यह दर्शित होता है कि पक्षकारों के बीच संबंध पुनःस्थापित नहीं किए जा सकते और उनका एक साथ रहना असंभव है । अतः, न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करना पड़ रहा है कि विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा मंजूर की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री ऊपर उपदर्शित कारणों के आधार पर कायम रखी जानी चाहिए । (पैरा 17, 28, 30, 32, 33, 37, 38 और 40)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2002] 2002 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 162 =
ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 576 :
जी. वी. एन. कामेश्वर राव बनाम **जी. जबिल्ली ;** 24

[2001] (2001) 4 एस. सी. सी. 250 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1709 :
चेतन दास बनाम **कमला देवी ;** 24

[1994] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 710 :
वी. भगत बनाम **श्रीमती डी. भगत ;** 23

[1975] (1975) 2 एस. सी. सी. 326 = ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1534 :
डा. एन. जी. दस्ताने बनाम **श्रीमती एस. दस्ताने ।** 23

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 2715.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 19 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राजेन्द्र प्रसाद शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री जी. के. गर्ग (ज्येष्ठ अधिवक्ता) और सुश्री अनीता अग्रवाल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी ने दिया ।

न्या. रस्तोगी – वर्तमान अपील तारीख 15 जून, 2007 को विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय अजमेर द्वारा पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके द्वारा इस अपील के पक्षकारों के बीच हुए विवाद का हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 13 के अधीन क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा अपघटन किया गया था ।

2. संक्षेप में इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी-पत्नी का विवाह तारीख 20 मई, 1994 को हिन्दू धर्म के अनुसार उदयपुर में प्रत्यर्थी-पति के साथ हुआ था । इस अपील के पक्षकारों के यहां इस विवाह बंधन से एक पुत्र ने तारीख 19 सितंबर, 1999 को जन्म लिया जिसका नाम अभिमन्यु है और इन पक्षकारों का विवाह दोनों परिवारों की सहमति से हुआ था ।

3. प्रत्यर्थी-पति ने यह देखा कि प्रतिवादी-2 प्रायः उनसे मिलने आया करता था और उसे वैवाहिक मामला सं. 237/2001 में पक्षकार बनाया गया है जिसका नाम वीरेन्द्र सिंह टंक पुत्र श्री हरि नारायण सिंह टंक है

और यह पक्षकार (वीरेन्द्र सिंह टंक), जैसाकि अपीलार्थी द्वारा अभिकथन किया गया है, उसका चाचा है और प्रत्यर्थी को अपना भाई मानता था किंतु अनावेदक साक्षी-1 और उसके पिता श्री गुलाब चंद अनावेदक साक्षी-2 के परिसाक्ष्य में यह कथन किया गया है कि वीरेन्द्र सिंह टंक पुत्र हरि नारायण सिंह टंक अपीलार्थी की माता के चाचा का पुत्र है जो सुसंगत समय के दौरान अविवाहित था और सरकारी सेवा में अलवर में तैनात था । वीरेन्द्र सिंह टंक की मौजूदगी उस समय देखी गई जब वे ब्यावर में थे जो प्रत्यर्थी का मूल निवास स्थान है या उसे उदयपुर में देखा गया था जहां पर अपीलार्थी का पिता सुसंगत समय पर रहता था या उसे जामनगर में देखा गया था जहां प्रत्यर्थी सेवारत था और यही कारण है कि अपीलार्थी के चरित्र पर संदेह हुआ परिणामस्वरूप वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी के बीच मतभेद हो गया और प्रत्यर्थी-पति के मन में जो संदेह हुआ उससे पति ने अपनी पत्नी के विवाह पूर्व के जीवन के संबंध में पूछताछ की जिससे प्रत्यर्थी-पति को यह पता चला कि अपीलार्थी-पत्नी के वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ अवैध संबंध हैं, और तारीख 19 सितंबर, 1999 को पुत्र के जन्म के पश्चात् प्रत्यर्थी-पति ने घोर संदेह होने के कारण पुत्र का डी. एन. ए. परीक्षण कराया जो पति के अनुमान के अनुसार सही निकला और वैवाहिक विवाद का मूल कारण बना ।

4. तारीख 17 जुलाई, 2001 को प्रत्यर्थी-पति ने कुटुम्ब न्यायालय, अजमेर में इस आधार पर विवाह-विच्छेद की ईप्सा के लिए अधिनियम की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद अर्जी सं. 237/2001 फाइल की जिसमें यह निवेदन किया कि अपीलार्थी-पत्नी ने प्रत्यर्थी-पति के प्रति क्रूरता कारित की है । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी-पत्नी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन अलग से एक आवेदन फाइल किया जिसमें अपने और अपने पुत्र अभिमन्यु जिसकी उस समय आयु 15 वर्ष थी और वह कक्षा 9 का छात्र था, के भरणपोषण के लिए ईप्सा की ।

5. इस न्यायालय के समक्ष यह भी बताया गया है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा अलग से एक आवेदन और फाइल किया गया है जिसमें संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 25 के अधीन अपने पुत्र को अपनी अभिरक्षा में लेने के लिए आवेदन किया जो न्यायनिर्णयन के लिए लंबित है ।

6. विवाह-विच्छेद की अर्जी में गंभीर अभिकथन अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध किए गए हैं जिनमें वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ अवैध संबंधों का

उल्लेख है जिसे विवाह-विच्छेद की अर्जी में पक्षकार बनाया गया है और समन तामील कराए जाने के बावजूद विद्वान् कुटुम्ब न्यायलय द्वारा वीरेन्द्र सिंह टंक के विरुद्ध एकपक्षीय आदेश पारित किया गया किंतु उसे अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील में पक्षकार-प्रत्यर्थी नहीं बनाया गया है ।

7. विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद अर्जी के जवाब में अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन में वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ अवैध संबंधों के बारे में प्रत्यर्थी द्वारा किए गए अभिकथन का खंडन किया गया, अपीलार्थी-पत्नी द्वारा भी प्रति-अभिकथन प्रत्यर्थी-पति के संबंध में किए गए हैं जिसमें पत्नी ने अपनी सगी बहिन दीपिका के साथ प्रत्यर्थी-पति के अवैध संबंधों का उल्लेख किया है और यही कारण है कि प्रत्यर्थी-पति, अपीलार्थी-पत्नी से छुटकारा पाना चाहता है । साथ ही अपीलार्थी-पत्नी द्वारा विशिष्ट रूप से यह भी प्रकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पति पांच लाख रुपए और एक मारुति कार दहेज के रूप में अपने श्वसुर से इस शर्त पर मांगता है कि वह अपीलार्थी-पत्नी को अपने वैवाहिक गृह में अपने साथ रखेगा किंतु दहेज की इस शर्त को पूरा करना अपीलार्थी-पत्नी के पिता के लिए संभव नहीं था और चूंकि प्रत्यर्थी-पति अपीलार्थी-पत्नी की सगी बहिन दीपिका के साथ जुलाई, 2001 से रह रहा था और अपने इसी कार्य को सफल बनाने के लिए प्रत्यर्थी-पति ने अधिनियम की धारा 13 के अधीन क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल की है ।

8. अपीलार्थी-पत्नी ने अपने लिखित कथन में अन्य बातों के साथ यह प्रतिवाद किया है कि विवाह-विच्छेद की अर्जी मिथ्या आधारों पर फाइल की गई है और उसमें किए गए अभिकथन अनुमान और अटकलों पर आधारित हैं जो साक्ष्य से तनिक भी साबित नहीं किए जा सकते । पत्नी ने इस बात से इनकार किया है कि वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ उसके अवैध संबंध थे और उसने यह भी दलील दी है कि वह अपने पुत्र के साथ अपने वैवाहिक गृह में रहने के लिए तैयार है । अपीलार्थी-पत्नी ने यह भी अभिकथन किया है कि प्रत्यर्थी-पति ने अभिकथित संदेह के कारण वैवाहिक जीवन नष्ट कर दिया है जिसका कोई आधार नहीं है और प्रत्यर्थी-पति को उसकी अपनी गलती का लाभ नहीं दिया जा सकता और यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पति एक सिविल अभियंता है तथा जामनगर में सेवारत है जहां उसकी मासिक आय 20,000/- रुपए है और वर्तमान रूप से वह उसकी सगी बहिन दीपिका जो अपने माता-पिता को 2 जुलाई, 2001 को छोड़ चुकी है, के साथ रहता है और अपीलार्थी-पत्नी ने यह भी अभिकथन किया

है कि प्रत्यर्थी-पति उसके पिता के यहां सीकर में तारीख 28 दिसंबर, 2000 को आया था और इसके पूर्व एक बार और आया था तथा उसने फ्लैट और मारुति कार खरीदने के लिए पांच लाख रुपए की मांग की थी और अपीलार्थी-पत्नी का पिता प्रत्यर्थी-पति द्वारा की गई मांग को पूरा करने के लिए सक्षम नहीं था और यही कारण है कि अपीलार्थी-पत्नी और उसके पुत्र को उनके वैवाहिक गृह से बाहर कर दिया गया । इन आबद्धकारी कारणों के अंतर्गत, अपीलार्थी-पत्नी अपने माता-पिता के साथ रहती है । उसने विवाह-विच्छेद की अर्जी का खंडन किया है और उसे खारिज किए जाने की प्रार्थना की है ।

9. लिखित कथन फाइल किए जाने के पश्चात्, विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा निम्नलिखित मुद्दे विरचित किए गए जो निम्न प्रकार हैं :–

(i) क्या अनावेदक सं. 1 (प्रवीण टंक) का आचरण, जैसाकि अर्जी में उल्लेख किया गया है, आवेदक-पति और उसके परिवार के सदस्यों के प्रति क्रूर माना गया है ?

(ii) क्या अनावेदक सं. 1 (प्रवीण टंक) विवाह के पूर्व और उसके पश्चात् अनावेदक सं. 2 के साथ अवैध संबंध/जारकर्म का जीवन व्यतीत कर रही थी ?

(iii) क्या आवेदक-पति 20 मई, 1994 को अनावेदक सं. 1 के साथ संपन्न हुए विवाह का अपघटन करने के लिए विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है ?

10. प्रत्यर्थी-पति की ओर से साक्षी कठघरे में पांच साक्षियों की परीक्षा कराई गई जिनमें आवेदक-साक्षी 1 (प्रत्यर्थी-पति), प्रत्यर्थी-पति का भाई सुरेश टंक (आवेदक-साक्षी 2), माता बनवारी देवी (आवेदक-साक्षी 3), भाई भूपेश कुमार (आवेदक-साक्षी 4) और फर्म में काम करने वाला वर्ग-4 का कर्मचारी हिम्मत लाल (आवेदक-साक्षी 5) हैं, इस फर्म में प्रत्यर्थी ब्यावर में 1993 से 1995 तक सेवारत था और आवेदक ने अपने पक्षकथन के समर्थन में 25 दस्तावेज प्रदर्शित किए ।

11. अपीलार्थी-पत्नी ने प्रतिरक्षा में स्वयं की अनावेदक साक्षी 1 और अपने पिता गुलाब चंद की अनावेदक साक्षी 2 के रूप में परीक्षा कराई और अपने पक्षकथन के समर्थन में 47 दस्तावेज भी प्रदर्शित किए ।

12. अभिवाकों के आधार पर कुटुम्ब न्यायालय ने उपर्युक्त मुद्दे

विरचित किए और अर्जी का विचारण किया और साक्ष्य अभिलिखित करने और पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने इस आधार पर विवाह-विच्छेद मंजूर किया कि अपीलार्थी-पत्नी ने प्रत्यर्थी-पति के साथ क्रूरता कारित की है और तारीख 15 जून, 2007 के निर्णय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर की । इसीलिए वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

13. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री राजेन्द्र प्रसाद ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा फाइल की गई अर्जी में अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध गंभीर अभिकथन किए गए थे कि उसके विवाह पूर्व वीरेन्द्र सिंह टंक नाम के व्यक्ति के साथ अवैध संबंध थे । ये अभिकथन साबित नहीं किए जा सके क्योंकि अर्जी में किए गए अभिवाक् पूर्णतया निराधार और सारहीन थे और यह भी दलील दी गई कि प्रत्यर्थी-पति वीरेन्द्र सिंह टंक की परीक्षा और प्रतिपरीक्षा कराने के लिए स्वतंत्र था तथा अर्जी में प्रत्यर्थी-पति द्वारा अभिलेख पर विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को अपीलार्थी द्वारा कारित की गई क्रूरता साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता और निचले न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष अनुचित है और विधि की दृष्टि से कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

14. काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध किया गया यह अभिकथन कि पत्नी के वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ विवाह पूर्व अवैध संबंध थे और वे संबंध विवाह के पश्चात् भी बने रहे, पूर्णतया काल्पनिक है और कोई भी अभिकथन प्रत्यर्थी द्वारा साबित नहीं किया जा सका है ।

15. काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी-पत्नी को वैवाहिक गृह छोड़ने के लिए विवश किया गया था क्योंकि प्रत्यर्थी-पति ने अपीलार्थी-पत्नी के पिता से फ्लैट और मारुति कार खरीदने के लिए पांच लाख रुपए दहेज के रूप में मांगना आरंभ कर दिया था जिसे अपीलार्थी का पिता पूरा करने में अक्षम था और अपीलार्थी की छोटी बहिन दीपिका तारीख 2 जुलाई, 2001 को प्रत्यर्थी-पति के साथ भाग गई थी और उसके साथ रहने लगी थी, इसी कारण से अपीलार्थी-पत्नी और उसके पुत्र को वैवाहिक गृह से बाहर निकाल दिया गया ।

16. यह भी दलील दी गई है कि अपनी सास के साथ लंबे समय तक रहने के पश्चात् भी सास द्वारा कोई भी शिकायत कभी भी नहीं की

गई और इस बात से यह पता चलता है कि अपीलार्थी से पीछा छुड़ाने के लिए प्रत्यर्थी-पति ने परिस्थितियों को एक नया रंग दिया और अपीलार्थी-पत्नी की छोटी बहिन के साथ अवैध संबंध स्थापित किए और अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे अपीलार्थी के चरित्र को संदिग्ध साबित किया जा सके । इस प्रकार, विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है और अपीलार्थी-पत्नी के किसी भी कृत्य से क्रूरता गठित नहीं होती है ।

17. अपीलार्थी काउंसेल ने हमारा ध्यान पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की ओर दिलाया है और प्रत्यर्थी-पति द्वारा अपनी पत्नी पर संदेह किए जाने से संबंधित तथ्यों को उजागर किया है और यह भी स्पष्ट किया है कि पति अपीलार्थी-पत्नी पर हर समय आरोप लगाया करता था ताकि वैवाहिक जीवन दुखद बना रहे किंतु निचले न्यायालय या परिवार के सदस्यों के समक्ष कभी भी कोई शिकायत नहीं की गई और पहली बार प्रत्यर्थी-पति द्वारा उस समय शिकायत की गई जब तारीख 17 जुलाई, 2001 को विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय, अजमेर के समक्ष विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल की गई थी । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा विवाह-विच्छेद मंजूर किए जाने के लिए किसी भी आधार को साबित नहीं किया गया है ।

18. इसके प्रतिकूल, प्रत्यर्थी-पति के काउंसेल ने अपीलार्थी-पत्नी के काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों का खंडन किया है और यह प्रतिवाद किया है प्रत्यर्थी-पति ने अपीलार्थी-पत्नी द्वारा किए गए क्रूरता के कई कृत्यों को साबित किया है और इस संबंध में अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है कि अपीलार्थी-पत्नी के वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ अवैध संबंध थे और आरंभ में जब लिखित कथन फाइल किया गया था, अपीलार्थी-पत्नी ने यह दावा किया है कि वीरेन्द्र सिंह टंक उसका चाचा है और वह उसे अपना भाई मानती है किंतु अपीलार्थी-पत्नी का कथन अनावेदक सं. 1 के रूप में और उसके पिता श्री गुलाब चंद का कथन अनावेदक सं. 2 के रूप में अभिलिखित किए जाने के पश्चात्, इन संबंधों से यह प्रकट हुआ कि वीरेन्द्र सिंह टंक अपीलार्थी-पत्नी के चाचा का पुत्र है जो अपीलार्थी-पत्नी से 10 वर्ष बड़ा है और वह सुसंगत समय पर अविवाहित था तथा अवलर में सरकारी सेवा में था । किंतु वह ब्यावर, उदयपुर या जामनगर में प्रायः आया-जाया करता था जहां पर प्रत्यर्थी-पति काम करता था और दोनों को

कई अनेक स्थानों पर एक साथ देखा गया था और इस संबंध में दस्तावेज तथा फोटोचित्र प्रदर्शित किए गए हैं कि वे ब्यावर और उदयपुर में एक साथ थे और क्योंकि उनकी प्रायः मुलाकात होती थी, इसलिए पुत्र के जन्म के पश्चात् प्रत्यर्थी-पति ने डी.एन.ए. परीक्षण कराया क्योंकि उसे यह संदेह था कि पुत्र ने उसके विवाह बंधन से जन्म नहीं लिया है और उसे यह संदेह था कि अपीलार्थी-पत्नी के वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ विवाह के पूर्व से संबंध चले आ रहे हैं । इस बात से पत्नी द्वारा की गई क्रूरता से मानसिक तनाव और पीड़ा कारित हुई । पति का संदेह और अधिक प्रबल हो गया और उसे पुत्र के जन्म के पश्चात् डी.एन.ए. परीक्षण कराना पड़ा, इस बात से वैवाहिक संबंधों में और अधिक विरूपता उत्पन्न हुई ।

19. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी-पति ने उक्त कृत्य को सशपथ साबित किया है कि अपीलार्थी-पत्नी और वीरेन्द्र सिंह टंक के बीच अवैध संबंध थे और वे प्रायः एक-दूसरे के साथ मुलाकात करते थे और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य यह साबित करने के लिए पर्याप्त है कि अपीलार्थी-पत्नी के वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ अवैध संबंध थे ।

20. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि सुरेश टंक (आवेदक साक्षी 2) और मुकेश टंक (आवेदक साक्षी 4) प्रत्यर्थी-पति के भाई हैं जिन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में सम्यक् रूप से प्रत्यर्थी के पक्षकथन का समर्थन किया है और सशपथ अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रत्यर्थी के आर्थिक स्तर को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थी-पत्नी के माता-पिता से दहेज की मांग किए जाने के संबंध में लिखित कथन में जो अभिकथन किए गए हैं वे मुश्किल से ही न्यायोचित प्रतीत होते हैं और यह भी न्यायोचित प्रतीत नहीं होता है कि प्रत्यर्थी-पति की माता बनवारी देवी (आवेदक साक्षी 3) द्वारा दुर्व्यवहार किया जाता था और इस साक्षी के साक्ष्य से आवेदक साक्षी 2 और आवेदक साक्षी 4 द्वारा पुत्रवधू के विरुद्ध दिए गए साक्ष्य की पुष्टि होती है ।

21. प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री को कायम रखने के लिए प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी-पत्नी द्वारा की गई क्रूरता के कई कृत्य साबित किए गए हैं जिनका खंडन इस अपील में नहीं किया जा सका ।

22. हमने पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और उनके द्वारा किए गए अभिवाकों तथा विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा अभिलिखित साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है ।

23. क्रूरता से संबंधित विधि अब सुस्थापित कर दी गई है । **वी. भगत** बनाम **श्रीमती डी. भगत**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय को दृष्टिगत करने पर क्रूरता को स्पष्ट किया गया है । **डा. एन. जी. दस्ताने** बनाम **श्रीमती एस. दस्ताने**[2] वाले एक पूर्ववर्ती मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय का पुनः अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उच्चतम न्यायालय ने विधिक स्थिति को स्पष्ट किया है जो हिन्दू विवाह अधिनियम में वर्ष 1976 के संशोधन के पश्चात् प्राप्त होती है । **वी. भगत** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने जे. टी. (एस. सी.) के पृष्ठ 437 और ए. आई. आर. के पृष्ठ 717 पर निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "17. धारा 13(1)(iक) को व्यापक रूप से इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि ऐसा आचरण जो अन्य पक्षकार को ऐसी मानसिक पीड़ा और यातना कारित करे जिससे उसका पहले पक्षकार के साथ रहना असंभव हो जाए । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मानसिक क्रूरता ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए कि पक्षकार युक्तियुक्त रूप से एक-दूसरे के साथ न रह सकें । स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि आहत पक्षकार से युक्तियुक्त रूप से यह नहीं कहा जा सके कि वह अन्य पक्षकार के साथ रहे । यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि मानसिक क्रूरता अर्जीदार के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो । ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पक्षकारों के सामाजिक स्तर, शैक्षणिक हैसियत, समाज में रहन-सहन के स्तर को ध्यान में रखना चाहिए और इस संभावना को भी ध्यान में रखना चाहिए कि जो पक्षकार अलग-अलग रह रहे हैं क्या वे एक साथ रह सकते हैं या नहीं । एक मामले में जो कृत्य क्रूरता की कोटि में आता है, यह आवश्यक नहीं है कि वह कृत्य अन्य मामले में क्रूरता कहलाए । प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखने पर ही

---

[1] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 710.

[2] (1975) 2 एस. सी. सी. 326 = ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1534.

सुनिश्चित किया जा सकता है कि कोई कृत्य क्रूरता है या नहीं । यह मामला अभियोग और अभिकथन से संबंधित है, इसलिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि किस संदर्भ में अभियोग और अभिकथन किए गए हैं ।"

24. **जी. वी. एन. कामेश्वर राव** बनाम **जी. जबिल्ली**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि क्रूरता गठित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कृत्य ऐसी प्रकृति का हो जिससे युक्तियुक्त रूप से यह आशंका हो कि इससे एक पक्षकार का दूसरे पक्षकार के साथ रहना हानिकर हो सकता है । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि समाज में विवाह की गरिमा और महत्व को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या एक पक्षकार का आचरण ऐसा है कि उससे अन्य पक्षकार के लिए साथ रहना असंभव हो जाए और तब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि प्रत्यर्थी के साथ क्रूरता कारित की गई है । उच्चतम न्यायालय ने **चेतन दास** बनाम **कमला देवी**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है कि क्रूरता गठित करने के लिए अर्जी में किए गए प्रकथनों के समर्थन में साक्ष्य होना चाहिए।

25. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के सुसंगत उपबंध निम्न प्रकार हैं :–

> **विवाह-विच्छेद** – (क) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –
>
> (iक) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है ; या

26. इस अधिनियम में क्रूरता को परिभाषित नहीं किया गया है किंतु यह एक अपेक्षित शब्द है । क्रूरता का अर्थ एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के संबंध में बदलता रहता है और इस संबंध में कोई भी सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता और प्रत्येक मामले पर उसके अपने तथ्यों के आधार पर

---

[1] 2002 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 162 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 576.
[2] (2001) 4 एस. सी. सी. 250 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1709.

विचार किया जाना चाहिए । किसी मामले विशेष में किया गया अभिकथन और आचरण सभी मामलों में क्रूरता की कोटि में नहीं आ सकता । यह अनेक कारकों पर आधारित है जिसमें दंपत्तियों की हैसियत और उनके माहौल को ध्यान में रखना होगा । क्रूरता का अर्थ ऐसा कठोर व्यवहार और उग्रता है जिससे दूसरे दंपत्ति का विवाह बंधन में बने रहना असंभव हो जाए । यद्यपि क्रूरता को इस अधिनियम में परिभाषित नहीं किया जा सकता किंतु इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विनिश्चित किया जा सकता है ।

27. वास्तव में, यह बात सत्य है कि विवाह पति-पत्नी के बीच एक पवित्र संबंध है । हमारे जैसे परंपरावादी समाज में जब एक लड़का किसी लड़की से विवाह करता है तब वह केवल एक पत्नी अपने घर नहीं लाता है अपितु वह पूरे परिवार के लिए एक पुत्रवधू लाता है । इस प्रकार, एक महिला को एक पत्नी ही नहीं अपितु पुत्रवधू के रूप में भी व्यवहार करना होता है ।

28. क्रूरता गठित करने के लिए, जिस कृत्य की शिकायत की गई है वह इतना गंभीर और गुरुतर होना चाहिए कि यह निष्कर्ष निकले कि दंपत्ति से युक्तियुक्त रूप से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वे दूसरे दंपत्ति के साथ रह सके । क्रूरता गठित करने के लिए यह आवश्यक है कि वैवाहिक जीवन की सामान्य नोकझोंक से अधिक गंभीर कृत्य कारित होना चाहिए । मामले की परिस्थितियों और पृष्ठभूमि को दृष्टिगत करते हुए पति या पत्नी द्वारा किए गए आचरण पर विचार किया जाना चाहिए ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि जिस कृत्य की शिकायत की गई है वह वैवाहिक विधि के अधीन क्रूरता की कोटि में आता है या नहीं । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, आचरण पर विचार अनेक कारकों के आधार पर किया जाना चाहिए, जैसे पक्षकारों की सामाजिक हैसियत, उनकी शैक्षणिक योग्यता, शारीरिक और मानसिक स्थिति, रीति-रिवाज । ऐसे कोई भी मापदंड नहीं हैं जिनके आधार पर परिभाषा की रचना की जा सके और ऐसी परिस्थितियों का निर्धारण किया जा सके जिनसे क्रूरता गठित होती हो । क्रूरता इस प्रकार की होनी चाहिए कि उससे न्यायालय का यह समाधान हो जाए कि पक्षकारों के बीच संबंध इस सीमा तक खराब हो गए हैं कि मानसिक पीड़ा, यातना और वेदना से उनका एक साथ जीवन व्यतीत करना असंभव है और शिकायत करने वाला पति या पत्नी विवाह-विच्छेद

की डिक्री पाने का हकदार है । शारीरिक हिंसा क्रूरता गठित करने के लिए सदैव आवश्यक नहीं है और निरंतर किया जाने वाला मानसिक यातना और वेदना का कृत्य इस अधिनियम की धारा 10 के अर्थान्तर्गत क्रूरता की कोटि में आ सकता है ।

29. अपीलार्थी की सास श्रीमती बनवारी देवी (आवेदक साक्षी 3) ने भी अपीलार्थी के विरुद्ध किए गए अभिकथन अपने परिसाक्ष्य में साबित किए हैं और यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वीरेन्द्र सिंह टंक प्रायः अपीलार्थी से मिलने आया करता था और दोनों कमरे का दरवाजा बंद करके रहते थे और उसने कभी अपने अन्य दो पुत्रों अर्थात् आवेदक साक्षी 2 और आवेदक साक्षी 4 की परवाह नहीं की जो उस समय संयुक्त परिवार में रहते थे और अपीलार्थी के विरुद्ध लगभग इसी प्रकार के अभिकथन किए हैं कि वीरेन्द्र सिंह टंक अपीलार्थी से मिलने उसके निवास पर प्रायः आया करता था ।

30. क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की अर्जी पर कार्यवाही करने वाले न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसके समक्ष जो समस्याएं प्रस्तुत की जाती हैं वे मनुष्यों से संबंधित होती हैं और पति या पत्नी के आचरण में मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को विवाह-विच्छेद की अर्जी का निपटारा करने के पूर्व ध्यान में रखना चाहिए । एक पति या पत्नी का आचरण कितना भी सामान्य क्यों न हो वह अपने जीवन-साथी को कष्ट पहुंचा सकता है । इसके पूर्व कि किसी आचरण को क्रूरता कहा जा जाए, उसमें उग्रता होनी चाहिए । न्यायालय को उस आचरण में उग्रता का निर्धारण करना चाहिए । यह ध्यान में रखना चाहिए कि क्या आचरण ऐसा है कि कोई भी सामान्य प्रज्ञा वाला युक्तियुक्त व्यक्ति उसे सहन न कर सके । इस पर भी विचार किया जाना चाहिए कि क्या शिकायतकर्ता एक सामान्य जीवन व्यतीत कर रहा है या नहीं । प्रत्येक वैवाहिक आचरण जिससे दूसरे पति या पत्नी को कष्ट पहुंचे क्रूरता की कोटि में नहीं आ सकता । मात्र छोटी-मोटी कहासुनी जो वैवाहिक जीवन में नित्य होती है क्रूरता की कोटि में नहीं आ सकती । वैवाहिक जीवन में क्रूरता बर्बरतापूर्ण भी हो सकती है ।

31. विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत अभिवाक् का अवलंब लेते हुए अपीलार्थी-पत्नी द्वारा की गई क्रूरता सिद्ध की है । इस समागम पर यह उल्लेख करना होगा कि वीरेन्द्र सिंह टंक को अर्जी में उसके विरुद्ध किए गए अभिकथनों के संबंध में विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के

समक्ष प्रतिवादी-2 के रूप में पक्षकार बनाया गया था और नोटिस तामील किए जाने के बावजूद पति के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई । तथापि, अपीलार्थी और उसके पिता के कथन में अनावेदक सं. 1 और अनावेदक सं. 2 के रूप में यह तथ्य स्वीकार किया गया था कि अपीलार्थी-पत्नी के साथ वीरेन्द्र सिंह टंक की जान-पहचान थी । साथ ही वीरेन्द्र सिंह टंक जो अविवाहित था जो सरकारी सेवा में अलवर में सेवारत था, उसके अपीलार्थी-पत्नी के साथ इस प्रकार के कोई संबंध नहीं थे और अपीलार्थी-पति ने अपने लिखित कथन में उसे अपना चाचा बताया है और वह उसे अपना भाई मानती है किंतु अनावेदक सं. 1 और अनावेदक सं. 2 के परिसाक्ष्य के पश्चात् यह सिद्ध हो गया कि वीरेन्द्र सिंह टंक अपीलार्थी की माता के चाचा का पुत्र है जो दूर का नातेदार है किंतु अपीलार्थी के वैवाहिक गृह पर अर्थात् ब्यावर, उदयपुर या जामनगर में जहां कहीं भी रह रही थी, प्रायः आता-जाता था और इस बात से निश्चित रूप से प्रत्यर्थी-पति के मन में संदेह हुआ और अभिलेख पर अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध निष्कर्ष निकालने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य है कि अपीलार्थी-पत्नी के वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ उसके विवाह के पूर्व अवैध संबंध थे और वे संबंध विवाह के पश्चात् भी बने रहे ।

32. दोनों पक्षकारों ने एक-दूसरे के विरुद्ध अभिकथन किए हैं कि वे वैवाहिक संबंधों को सौहार्दपूर्ण बनाए रखना नहीं चाहते हैं और अन्य किसी व्यक्ति के साथ संबंध बनाए हुए हैं । प्रत्यर्थी के अनुसार, अपीलार्थी-पत्नी के वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ विवाह पूर्व से अवैध संबंध थे जो उसके माता के चाचा का पुत्र है और वे संबंध विवाह के पश्चात् भी बने रहे और अपीलार्थी के अनुसार, प्रत्यर्थी-पति के अवैध संबंध अपीलार्थी की छोटी बहिन दीपिका के साथ बने हुए थे । तथापि, विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री तथा किए गए अभिकथनों एवं प्रति-अभिकथनों पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अभिकथनों से निश्चित रूप से पति के साथ क्रूरता कारित की गई है किंतु वह संदेह के परे साबित नहीं की जा सकी और यह अभिकथन भी साबित नहीं किया जा सका कि प्रत्यर्थी-पति के अवैध संबंध अपीलार्थी-पत्नी की छोटी बहिन के साथ थे, तथापि, अपीलार्थी-पत्नी यह साबित नहीं कर सकी और इस तथ्य पर कुटुम्ब न्यायालय द्वारा विचार किया गया है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल किए जाने के पूर्व ऐसी कोई भी शिकायत

किसी भी समय पत्नी द्वारा नहीं की गई थी कि उसकी छोटी बहिन दीपिका प्रत्यर्थी-पति के साथ भाग गई है और उसके साथ रहती है जिसका संचयी रूप से यह प्रभाव पड़ा कि प्रत्यर्थी-पति के साथ मानसिक क्रूरता साबित हुई और मुद्दा सं. 1 प्रत्यर्थी-पति के पक्ष में विनिश्चित किया गया और वास्तव में दोनों पक्षकार 14 वर्षों से अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और भरणपोषण तथा बच्चे की अभिरक्षा से संबंधित कार्यवाहियां भी संस्थित की गई हैं और अभिरक्षा से संबंधित एक मामला सक्षम न्यायालय के समक्ष लंबित चल रहा है ।

33. निःसंदेह यह साबित हो गया है कि एक सुदृढ़ विवाह की बुनियाद सहनशीलता, समझौता और एक-दूसरे के सम्मान पर आधारित है । एक-दूसरे की गलती को सहन करना प्रत्येक विवाह के बनाए रखने के लिए आवश्यक है । छोटी-मोटी नोकझोंक और मतभेदों को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं आंकना चाहिए और स्वर्ग जैसे वातावरण को नष्ट नहीं करना चाहिए । प्रत्येक मामले में क्रूरता को समझने के लिए लड़ाई-झगड़े का आकलन इसी प्रकार किया जाना चाहिए और जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है शारीरिक और मानसिक दशा तथा सामाजिक हैसियत को भी ध्यान में रखते हुए ही क्रूरता का निर्धारण किया जाना चाहिए । अत्यधिक सूक्ष्मता और अत्यधिक संवेदनशीलता के साथ इन बातों पर विचार करना वैवाहिक वातावरण के लिए हानिकर हो सकता है । न्यायालय को एक आदर्श पति और एक आदर्श पत्नी के रूप में विचार नहीं करना चाहिए । न्यायालय के समक्ष प्रत्येक पुरुष और महिला का एक अलग स्वभाव हो सकता है । एक आदर्श पति और आदर्श पत्नी कभी भी वैवाहिक न्यायालय के समक्ष आवेदन नहीं करेंगे ।

34. वर्तमान मामले में, तारीख 20 मई, 1994 को विवाह संपन्न हुआ था और तारीख 19 सितंबर, 1999 को बालक ने जन्म लिया किंतु प्रत्यर्थी-पति को विवाह के दिन से ही यह संदेह था कि अपीलार्थी-पत्नी के वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ अवैध संबंध हैं जिसे प्रत्यर्थी-पति ने कुटुम्ब न्यायालय, अजमेर के समक्ष फाइल की गई विवाह-विच्छेद अर्जी में अनावेदक सं. 2 के रूप में पक्षकार बनाया था और आवेदक साक्षी 1 अर्थात् प्रत्यर्थी-पति, उसके दो बड़े भाई सुरेश टंक (आवेदक साक्षी 2) और मुकेश कुमार (आवेदक साक्षी 4) तथा श्रीमती बनवारी देवी (आवेदक साक्षी 3) ने भी

अपने परिसाक्ष्य में वीरेन्द्र सिंह टंक के प्रायः उनके घर पर आने की बात कही है और यह भी कहा है कि वह अपीलार्थी-पत्नी के यहां ठहरा करता था और कमरे का दरवाजा भी बंद रखता था और प्रत्यर्थी-पति (आवेदक साक्षी 1) और श्रीमती बनवारी देवी (आवेदक साक्षी 3) अर्थात् प्रत्यर्थी-पति के माता द्वारा आक्षेप किए जाने के बावजूद अपीलार्थी-पत्नी ने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया । इसी दौरान, हिम्मत सिंह (आवेदक साक्षी 5) जोकि एक स्वतंत्र साक्षी है, ने भी अपने परिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि उसने अपीलार्थी-पत्नी को वीरेन्द्र सिंह टंक के साथ ब्यावर के एक होटल में पति-पत्नी के रूप में ठहरते हुए देखा था और विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष इस संबंध में कतिपय दस्तावेज भी प्रदर्शित किए गए ।

35. इस न्यायालय द्वारा यह भी विचार किया गया है कि आरंभ में जब विवाह-विच्छेद की अर्जी में लिखित कथन फाइल किया गया था, अपीलार्थी-पत्नी वीरेन्द्र सिंह टंक को अपने भाई के रूप में मानती थी किंतु अपीलार्थी (अनावेदक साक्षी 1) के परिसाक्ष्य और उसके पिता गुलाब सिंह (अनावेदक साक्षी 2) का कथन अभिलिखित किए जाने पर यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि वीरेन्द्र सिंह टंक अपीलार्थी की माता के चाचा का पुत्र है जो दूर का नातेदार है और सरकारी सेवा में है जिसकी तैनाती अलवर में है किंतु वह ब्यावर, उदयपुर और जामनगर में अत्यधिक आता-जाता रहता है, तथापि, इस महत्वपूर्ण तथ्य को संदेह के परे साबित नहीं किया जा सका है किंतु संभाव्यताओं की प्रबलता के सिद्धांत के आधार पर प्रत्यर्थी-पति के मन में विवाह के दिन से जो विचार आया उससे निश्चय ही इनकार नहीं किया जा सकता है । साथ ही अपीलार्थी-पत्नी ने अपने उत्तर में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रत्यर्थी-पति के उसकी अपनी छोटी बहिन दीपिका के साथ अवैध संबंध हैं और दीपिका तारीख 2 जुलाई, 2001 को प्रत्यर्थी-पति के साथ भाग गई थी और विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल किए जाने वाले दिन प्रत्यर्थी-पति अपीलार्थी-पत्नी की छोटी बहिन के साथ रह रहा था, अपीलार्थी-पत्नी (अनावेदक साक्षी 1) और उसके पिता (अनावेदक साक्षी 2) अर्थात् गुलाब चंद के परिसाक्ष्य के अनुसार जब अपीलार्थी-पत्नी ने गर्भधारण किया था और वह जामनगर में रहती थी तब उसकी छोटी बहिन दीपिका को बुलाया गया था और उस दौरान प्रत्यर्थी-पति और दीपिका के बीच संबंध भी स्थापित हो गए और अपीलार्थी-पत्नी के अनुसार दीपिका

उसके पति के साथ 2 जुलाई, 2001 को भाग गई थी किंतु इस संबंध में किसी भी प्राधिकारी के समक्ष कोई भी शिकायत दर्ज नहीं कराई गई थी और कोई भी ठोस साक्ष्य इस संबंध में अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया गया है और न ही विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा साबित किया गया पाया गया है । तथापि, विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने संचयी रूप से यह निष्कर्ष निकाला कि लिखित कथन में पति के विरुद्ध अभद्र टिप्पणी करने से निश्चित रूप से उसके साथ मानसिक क्रूरता कारित की गई है और तद्नुसार, कुटुम्ब न्यायालय ने मुद्दा सं. 1 प्रत्यर्थी-पति के पक्ष में साबित किया है ।

36. इस न्यायालय द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया है कि अपीलार्थी-पत्नी (अनावेदक साक्षी 1) तथा उसके पिता (अनावेदक साक्षी 2) द्वारा यह भी प्रकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पति ने फ्लैट और मारुति कार खरीदने के लिए दहेज के रूप में पांच लाख रुपए की मांग की थी । तथापि, तारीख 20 मई, 1994 को उनका विवाह हुआ और अर्जी जुलाई, 2001 में फाइल की गई और दहेज की मांग किए जाने का अभिकथन पहली बार कुटुम्ब न्यायालय में विचारण के दौरान विवाह-विच्छेद के संबंध में किया गया और अपीलार्थी द्वारा विवाह के बाद से पिछले सात वर्षों में कभी भी दहेज की मांग नहीं की गई थी और विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने भी यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा मिथ्या अभिकथन किया गया है ताकि वह अधिनियम की धारा 13 के अधीन किए गए विवाह-विच्छेद के अभिवाक् को निरस्त कर सके ।

37. इस न्यायालय द्वारा यह भी मत व्यक्त किया गया है कि नवंबर, 2000 से पति और पत्नी अलग-अलग रहते हैं और लगभग 14 वर्षों से दोनों के बीच मुकदमेबाजी चल रही है और इस दौरान दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन भरणपोषण का आवेदन भी फाइल किया गया था और इसके पश्चात् अपने पुत्र की अभिरक्षा के लिए संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के अधीन भी अर्जी फाइल की गई थी जो कि सक्षम न्यायालय के समक्ष अभी भी लंबित है और इस संबंध में मनस्कता का भी अवलंब लिया गया है और कई प्रकार के विकल्पों को भी अपनाया गया है किंतु सभी विफल हो गए और दोनों पति-पत्नी पिछले 14 वर्षों से मुकदमे लड़ रहे हैं । यह भी देखा जा सकता है कि वीरेन्द्र सिंह टंक को सम्यक् रूप से विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा समन तामील कराया गया था

और इसके बावजूद उस पर स्पष्ट आरोप लगाया गया है कि अपीलार्थी-पत्नी के साथ उसके अवैध संबंध हैं किंतु वह विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष पेश नहीं हुआ है और उसके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई है और वर्तमान अपील अपीलार्थी-पत्नी द्वारा, तारीख 15 जुलाई, 2007 को विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के विरुद्ध, फाइल की गई है, अपीलार्थी-पत्नी ने वीरेन्द्र सिंह टंक को प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार नहीं बनाया है । तथापि, यह सत्य है कि ऐसे मामलों में ठोस साक्ष्य द्वारा संदेह साबित नहीं किया जा सकता और उसे केवल संभाव्यताओं के प्रबलता के आधार पर ही समझा जा सकता है जिसके लिए निश्चित रूप से कड़ी सावधानी बरतनी चाहिए कि पति या पत्नी के साथ किसी भी प्रकार की मानसिक क्रूरता कारित की गई है या नहीं और इस मामले में प्रत्यर्थी-पति के साथ की गई मानसिक क्रूरता को अनदेखा नहीं किया जा सकता ।

38. हमें प्रत्यर्थी-पति के काउंसेल द्वारा दी गई यह दलील न्यायोचित दिखाई देती है कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध किए गए आवेदन के उत्तर में जो अभिकथन किए गए हैं वे निराधार हैं और इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता । यह आवश्यक नहीं है कि क्रूरता इतनी गंभीर हो कि उससे ऐसी युक्तियुक्त आशंका पैदा हो कि वह अपीलार्थी के लिए हानिकर या हानिप्रद हो । क्रूरता ऐसी होनी चाहिए जिससे न्यायालय का यह समाधान हो जाए कि पक्षकारों के बीच संबंध इस सीमा तक दूषित हो गए हैं कि उनका मानसिक पीड़ा के बिना एक साथ रहना असंभव हो जाए । सामान्यतः, क्रूरता में केवल एक ही कृत्य नहीं पाया जा सकता अपितु क्रूरता समय-समय पर होने वाले कई कृत्यों से मिलकर भी गठित होती है । क्रूरता के कई रूप हो सकते हैं । यह पति-पत्नी में से किसी के मन में पैदा हुई इस आशंका के रूप में हो सकती है कि अपने जीवन-साथी के साथ जीवन व्यतीत करना भयावह है । वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी-पति के विरुद्ध अर्जी के उत्तर में मिथ्या अभिकथन किए गए हैं जिनका कोई आधार नहीं है जिस पर विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा विचार किया गया था और हमारी राय में, प्रत्यर्थी-पति के साथ क्रूरता कारित किए जाने के संबंध में पर्याप्त अभिकथन हैं । अपने पति के चरित्र पर किए गए निराधार और मिथ्या अभिकथन उसकी मान-मर्यादा को क्षति पहुंचाने के सिवाय कुछ नहीं हैं और यह कृत्य मानसिक क्रूरता की कोटि में आता है

और इस पर विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी-पति के पक्ष में विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए यह विचार किया गया है कि पत्नी द्वारा क्रूरता कारित की गई है ।

39. हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि अपीलार्थी-पत्नी के कृत्य से प्रत्यर्थी-पति को क्रूरता कारित नहीं हुई है । हमारी सुविचारित राय में, विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष कायम रखे जाने योग्य है और इसमें कोई भी हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

40. हम यह भी अभिनिर्धारित करते हैं कि कोई भी निष्पक्ष रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी-पति पर कीचड़ उछाले जाने के संबंध में जो अभिकथन किए गए हैं कि प्रत्यर्थी-पति के अपीलार्थी-पत्नी की छोटी बहिन ने प्रत्यर्थी-पति के जीवन में प्रवेश किया जो कि प्रथमदृष्ट्या विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा साक्ष्य से सिद्ध नहीं किया गया और मामले की संपूर्ण पृष्ठभूमि को दृष्टिगत करते हुए दोनों के लिए सुखद वैवाहिक जीवन व्यतीत करना कठिन है । अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य परिस्थितियों से यह दर्शित होता है कि पक्षकारों के बीच संबंध पुनःस्थापित नहीं किए जा सकते और उनका एक साथ रहना असंभव है । अतः, हमें यह अभिनिर्धारित करना पड़ रहा है कि विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा मंजूर की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री ऊपर उपदर्शित कारणों के आधार पर कायम रखी जानी चाहिए ।

41. परिणामतः, उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए तारीख 15 जून, 2007 को विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप करने के लिए आनत नहीं हैं ।

42. फलस्वरूप, इस अपील में कोई सार नहीं है और एतद्द्वारा खारिज की जाती है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./पा.

कुमारी शिवांगनी गौड़*

बनाम

प्रेम प्रकाश और अन्य

तथा

कुमारी तोषना गौड़ और अन्य

बनाम

प्रेम प्रकाश और अन्य

तथा

नितेश गौड़

बनाम

प्रेम प्रकाश और अन्य

तथा

दि ओरियंटल इंश्योरेंस कं. लि.

बनाम

कुमारी तोषना गौड़ और अन्य

तारीख 11 दिसम्बर, 2014

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 173 – यान दुर्घटना – क्षतिपूर्ति – दावेदार की प्रास्थिति – आयु – आय के स्त्रोत – आश्रितों की संख्या – यदि न्यायालय द्वारा उपर्युक्त बातों के साथ ही अन्य सम्यक् बातों पर विचार करते हुए, युक्तियुक्त और संगत क्षतिपूर्ति अभिनिर्धारित की जाती है तो ऐसे आदेश में तब तक हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं होता है जब तक कि संदत्त क्षतिपूर्ति के बारे में, पीड़ित पक्षकार के साथ घोर अन्याय होना या अन्यायोचितता साबित नहीं कर दी जाती है ।

वर्तमान मामले में, वाहन दुर्घटना में कुमारी अपूर्वा गौड़ की मृत्यु हो

---

* मूल निर्णय हिन्दी में है ।

जाने से क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) तोषना गौड़ व अन्य ने क्लेम (दावा) याचिका संख्या 05/2013 (456/2004), अंजुला शर्मा की मृत्यु हो जाने से क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) कुमारी तोषना व अन्य ने क्लेम (दावा) याचिका संख्या 22/2013 (449/2004), रमाकान्त शर्मा की मृत्यु हो जाने से क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) कुमारी तोषना व अन्य ने क्लेम (दावा) याचिका संख्या 23/2013 (455/2004), क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) शिवांगनी गौड़ ने स्वयं के चोटें आने से क्लेम (दावा) याचिका संख्या (458/2004), क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) नितेश गौड़ ने स्वयं के चोटें आने से क्लेम (दावा) याचिका संख्या 26/2013 (459/2004), क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) तोषना गौड़ ने स्वयं के चोटें आने से क्लेम (दावा) याचिका संख्या 24/2013 (457/2004) प्रस्तुत की । इसके अतिरिक्त याचिकाओं में मुख्य रूप से यह अंकन किया कि दिनांक 17.5.2002 को प्रातः 11.25 पर मृतक व मजरुबान अपने परिवार व रिश्तेदारों के साथ टाटा सूमो संख्या आरजे 20 सी 6378 में बैठकर जयपुर से बद्रीनाथ की ओर जा रहे थे । कलिया सोड से एक किलोमीटर आगे बद्रीनाथ मार्ग पर टाटा सूमो के ब्रेक फेल हो गए । चालक को मना करने के बावजूद वो नहीं माना और जबरन गाड़ी को ट्रक से टोचर करके ले जाने लगा । थोड़ा सा आगे चलने पर टोचर की गई चैन टूट जाने के कारण उक्त टाटा सूमो दो सौ फीट खाई के अन्दर जाकर गिरी । जिसके परिणामस्वरूप कुमारी अपूर्वा गौड़, कीर्ति शर्मा, विनीता शर्मा, चन्द्रशेखर, अंजुला शर्मा, रमाकान्त शर्मा, मुकुल गौड़ व नितिन शर्मा की मृत्यु हो गई और कुमारी शिवांगनी गौड़, नीतेश गौड़, तोषना गौड़, कुमारी योगिता शर्मा को उपहतियां कारित हुईं । इस दुर्घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 356/2002 पुलिस थाना श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तरांचल) में दर्ज हुई । क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) द्वारा प्रस्तुत क्लेम (दावा) याचिकाओं के नोटिस याचिकाओं के विपक्षीगण को जारी किए गए । याचिकाओं में वाहन चालक विपक्षी संख्या 1 प्रेम प्रकाश को विलोपित किया गया । वाहन स्वामी विपक्षी संख्या 2 की ओर से जवाब प्रस्तुत किया गया, जिसमें यह कथन किया गया कि दुर्घटना टाटा सूमो नम्बर आरजे 20 सी 6378 से कारित नहीं की गई है । उससे वाहन को उसके पिता के परिचित व मित्र श्री चन्द्रशेखर मांगकर ले गए थे । तथा ड्राइवर उनके द्वारा ही लिया गया था । घटना लाल रंग के ट्रक जिसके द्वारा टाटा सूमो टोचर करके ले जाई जा रही थी, की गफलत व लापरवाही से हुई है । उक्त ट्रक के स्वामी, चालक व बीमा कंपनी को पक्षकार नहीं बनाया है जिससे क्लेम (दावा) याचिकाएं खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई । विपक्षी संख्या 3

बीमा कंपनी की ओर से पथक् से जवाब पेश किया गया, जिसमें मुख्य रूप से यह अंकन किया गया कि दुर्घटना की सूचना बीमा कंपनी को नहीं दी गई, वाहन चालक के द्वारा वाहन चलाने की अनुज्ञप्ति पेश नहीं की गई । यह भी अंकन किया गया कि दुर्घटना वाहन चालक द्वारा वाहन चलाते समय कारित नहीं हुई तथा टाटा सूमो के ब्रेक फेल हो गए व गाड़ी रोक ली गई थी और जिस समय दुर्घटना हुई उस समय गाड़ी चालू नहीं थी । यह भी अंकन किया कि चालक के व्यक्तिगत कृत्य से दुर्घटना हुई है एवं अन्य कथन करते हुए याचिकाएं खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई । विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर पांच विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) संख्या 7, जयपुर नगर, जयपुर (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण) ने अपने निर्णय दिनांक 11.6.2008 के द्वारा आदेश/पंचाट पारित किया गया । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) संख्या 7, जयपुर नगर, जयपुर (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण) के उक्त निर्णय दिनांक 11.6.2008 के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष अपील संख्या 4704/2008, 3810/2008, 3811/2008, 1476/2009 एवं 1478/2009 प्रस्तुत की गई, जिनका निस्तारण इस न्यायालय के आदेश दिनांक 5.11.2012 के द्वारा करते हुए अधिकरण के निर्णय दिनांक 11.6.2008 को विवाद्यक संख्या 3 की सीमा तक अपास्त करते हुए उक्त विवाद्यक के संबंध में पुनः निर्णय पारित करने का निर्देश अधिकरण को दिया गया । इस न्यायालय के आदेश के पालन में अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश, क्रम-15, जयपुर महानगर (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण) ने अपने निर्णय दिनांक 4.7.2014 के द्वारा आदेश पारित किया । विद्वान् अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश, क्रम-16, जयपुर महानगर (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण) द्वारा पारित उक्त निर्णय दिनांक 4.7.2014 के विरुद्ध क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 3397/2014, 3392/2014, 3393/2014, 3396/2014 प्रस्तुत कर उन्हें दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि को बढ़ाए जाने की प्रार्थना की गई है एवं बीमा कंपनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 3585/2014, 3586/2014, 3587/2014 एवं 3588/2014 प्रस्तुत कर अपीलाधीन निर्णय को अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई है । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् अधिकरण ने न्यायिक विनिश्चय 2014 ए. सी. जे. पेज 1254 (एस. सी.) फईम अहमद एवं अन्य विरुद्ध यूनाइटेड इंडिया

इंश्योरेन्स कंपनी लि. एवं अन्य का अवलंब लेते हुए यह सही रूप से माना है कि यदि पालिसी की शर्तों का भंग भी पाया जाता है तो इंश्योरेन्स कंपनी का दायित्व नहीं भी माना जाए तो भी इंश्योरेन्स कंपनी सर्वप्रथम जिनके साथ दुर्घटना हुई व उस दुर्घटना के दिन क्लेम (दावा) करने वाले अधिकृत व्यक्तियों को भुगतान करने के दायित्व से नहीं बच सकती है परन्तु यदि इस राशि को जो पक्ष दुर्घटना के लिए दायित्वाधीन है उससे वसूल करने का भी अधिकार बीमा कंपनी को रहेगा । उक्त विधि दृष्टांत के अवलोकन के पश्चात् विधि की यही स्थिति स्पष्ट होती है कि यदि पालिसी की शर्तों का किसी प्रकार से उल्लंघन है तो उसके लिए बीमा कंपनी को दायित्वाधीन नहीं ठहराया जा सकता परन्तु सीमित वाहन के संबंध में क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) के क्लेम (दावा) के भुगतान का दायित्व सर्वप्रथम बीमा कंपनी पर होगा एवं बाद में बीमा कंपनी उस राशि को उसके लिए सही रूप से दायित्वाधीन ठहराए गए व्यक्ति से वसूल करने की अधिकारी रहेगी । विद्वान् अधिकरण ने अपने निर्णय में यह सही रूप से माना है कि इस मामले में वाहन में सवार यात्रियों का प्रीमियम बीमा कंपनी को अदा नहीं करना बताया है एवं इस वाहन में सवार व्यक्ति धारा 147 एम. वी. ऐक्ट के तहत तृतीय पक्षकार की परिभाषा में नहीं आ सकते हैं । अतः बीमा कंपनी ऐसे प्रकरण में क्षतिपूर्ति के लिए बीमा संविदा की शर्तों का उल्लंघन होने से उत्तरदायी नहीं मानी जा सकती है परन्तु वाहन का बीमा था इसलिए बीमा कंपनी का प्राथमिक दायित्व वाहन से संबंधित दुर्घटना जो हुई है उसके संबंध में आश्रितता व क्षतिग्रस्त व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति अदा करने तक सीमित रहता है भले ही बाद में जो इसके लिए दायित्वाधीन व्यक्ति हो उनसे वह राशि वसूल कर सकती है । हस्तगत प्रकरण में वाहन स्वामी ने जो विपक्षी सं. 1 जिसे बाद में विलोपित कर दिया गया था वही वाहन का चालक था । उस प्रेम प्रकाश का ड्राइविंग लाइसेन्स प्रस्तुत नहीं किया गया है जिसके संबंध में वाहन स्वामी की इस प्रतिरक्षा को नहीं माना जा सकता है कि वाहन स्वामी द्वारा वाहन चालक को रखते समय पर्याप्त सावधानी रखी गई थी । प्रकरण में चन्द्रशेखर सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी था । यह तथ्य स्पष्ट है । अतः एन. ए. डब्ल्यू. 1 ने यदि वाहन चालक का डी. एल. नहीं देखा व बिना डी. एल. देखे चन्द्रशेखर के कहने पर विपक्षी सं. 2 अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता । विपक्षी सं. 2 के लिए यह विकल्प उपलब्ध था कि वह इस संबंध में कोई इकरार विपक्षी सं. 1 अथवा स्वर्गीय चन्द्रशेखर से निष्पादित करवाता जिससे यह प्रमाणित होता कि वाहन पूर्ण जोखिम पर स्वर्गीय

चन्द्रशेखर ले जा रहा था । अतः यह भी स्पष्ट है कि विपक्षी सं. 1 प्रेम प्रकाश, विपक्षी सं. 2 के अधीन व नियंत्रण में कार्यरत था । अतः यह भी स्पष्ट है कि विपक्षी सं. 1 प्रेम प्रकाश, विपक्षी सं. 2 के अधीन व नियंत्रण में कार्यरत था । अतः हस्तगत प्रकरण में बीमा पालिसी की शर्तों का निश्चित रूप से उल्लंघन हुआ है जिसके लिए विपक्षी सं. 2 उत्तरदायी है एवं वाहन चालक के पास कोई लाइसेन्स नहीं होना व बीमा पालिसी की शर्तों का उल्लंघन करने के कारण बीमा संविदा की शर्तों का उल्लंघन हुआ है ऐसी स्थिति में इंश्योरेन्स कंपनी को दायित्वाधीन नहीं माना जा सकता है एवं बीमा कंपनी इस प्रकरण में अपनी प्रतिरक्षा को प्रमाणित करने में सफल रही है अतः इस विवाद्यक सं. 3 का विनिश्चय बीमा कंपनी विपक्षी सं. 3 के पक्ष में किया जाता है परन्तु प्राथमिक रूप से बीमा कंपनी मृतक व आहत के आश्रितों एवं आहतों को भुगतान करने के अपने प्राथमिक दायित्व से बच नहीं सकती है हालांकि बाद में जो भी भुगतान उसके द्वारा किया जाएगा वह अप्रार्थी सं. 2 से अर्थात् मालिक वाहन टाटा सूमो से वसूल करने की अधिकारिणी होगी । अपीलाधीन निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त न्यायालय इस निष्कर्ष पर भी पहुंचा है कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करने के उपरान्त विवाद्यक सं. 4 का भी निर्णय सही रूप से किया है एवं क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) को उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । न्यायालय के मत में, विद्वान् अधिकरण का निर्णय पूर्णतया विधिसम्मत है, जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है । अतः अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 3397/2014, 3392/2014, 3393/2014, 3395/2014, 3396/2014, 3398/2014 एवं बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 3392/2014, 3393/2014, 3395/2014 एवं 3396/2014 निरस्त की जाती है । बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत अपील संख्या 3392/2014, 3393/2014, 3395/2014 एवं 3396/2014 के साथ संलग्न स्थगन प्रार्थनापत्र के अन्तर्गत पारित स्थगन आदेश को निरस्त करते हुए उक्त स्थगन प्रार्थना पत्र भी निरस्त किए जाते हैं । (पैरा 10, 11 और 12)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 3397, 3392, 3393, 3395, 3396, 3398, 3585, 3586, 3587, 3588.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी सं. 1 से 6 की ओर से	श्री के. एन. तिवारी, अधिवक्ता
अपीलार्थी सं. 7 से 10/प्रत्यर्थी की ओर से	श्री विमल शर्मा और सुश्री सरिता शर्मा, अधिवक्तागण

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – उपरोक्त वर्णित अपीलों में अपील संख्या 3397/2014, 3392/2014, 3393/2014, 3395/2014, 3396/2014 क्रमशः अपीलार्थी-क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) कुमारी शिवांगिनी गौड़, कुमारी तोषना गौड़ व अन्य, नितेश गौड़, कुमारी तोषना गौड़ व अन्य, कुमारी तोषना गौड़ व अन्य एवं कुमारी तोषना गौड़ की ओर से क्रमशः क्लेम (दावा) याचिका संख्या 25/2013 (458/2004), 5/2013 (456/2004), 26/2013 (459/2004), 22/2013 (449/2004), 23/2013 (455/2004) एवं 24/2013 (457/2004) में अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश, क्रम-16, जयपुर महानगर (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा पारित निर्णय दिनांक 4.7.2014 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है एवं दि ओरियंटल इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड की ओर से उपरोक्त वर्णित अपील संख्या 3585/2014, 3586/2014, 3587/2014 एवं 3588/2014 क्रमशः क्लेम (दावा) याचिका संख्या 23/2013 (455/2004), 5/2013 (456/2004), 24/2013 (457/2004) एवं 22/2013 (449/2004) में पारित इसी निर्णय दिनांक 4.7.2014 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है । क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) की ओर से प्रस्तुत की गई अपीलों के अन्तर्गत उन्हें अधिकरण के निर्णय के अन्तर्गत दिखाई गई क्षतिपूर्ति राशि को बढ़ाए जाने की प्रार्थना की गई है जबकि बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत की गई अपीलों के अन्तर्गत अपीलाधीन निर्णय को अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई है । चूंकि उपरोक्त वर्णित समस्त अपीलें एक ही दुर्घटना एवं एक ही प्रथम सूचना रिपोर्ट से उद्भूत क्लेम याचिकाओं में पारित निर्णय से संबंधित हैं एवं इस मामले में घटित दुर्घटना के संबंध में प्रस्तुत समस्त क्लेम (दावा) याचिकाओं का एक ही निर्णय पारित किया गया है, जिससे इन समस्त अपीलों का निस्तारण इस एक ही निर्णय के द्वारा किया जा रहा है ।

2. प्रकरण के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि वाहन दुर्घटना में कुमारी अपूर्वा गौड़ की मृत्यु हो जाने से क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) तोषना गौड़ व अन्य ने क्लेम (दावा) याचिका संख्या 05/2013 (456/2004), अंजुला शर्मा की मृत्यु हो जाने से क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) कुमारी तोषना व अन्य ने

क्लेम (दावा) याचिका संख्या 22/2013 (449/2004), रमाकान्त शर्मा की मृत्यु हो जाने से क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) कुमारी तोषना व अन्य ने क्लेम (दावा) याचिका संख्या 23/2013 (455/2004), क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) शिवांगनी गौड़ ने स्वयं के चोटें आने से क्लेम (दावा) याचिका संख्या (458/2004), क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) नितेश गौड़ ने स्वयं के चोटें आने से क्लेम (दावा) याचिका संख्या 26/2013 (459/2004), क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) तोषना गौड़ ने स्वयं के चोटें आने से क्लेम (दावा) याचिका संख्या 24/2013 (457/2004) प्रस्तुत की । इसके अतिरिक्त याचिकाओं में मुख्य रूप से यह अंकन किया कि दिनांक 17.5.2002 को प्रातः 11.25 पर मृतक व मजरुबान अपने परिवार व रिश्तेदारों के साथ टाटा सूमो संख्या आरजे 20 सी 6378 में बैठकर जयपुर से बद्रीनाथ की ओर जा रहे थे । कलिया सोड से एक किलोमीटर आगे बद्रीनाथ मार्ग पर टाटा सूमो के ब्रेक फेल हो गए । चालक को मना करने के बावजूद वो नहीं माना और जबरन गाड़ी को ट्रक से टोचर करके ले जाने लगा । थोड़ा सा आगे चलने पर टोचर की गई चैन टूट जाने के कारण उक्त टाटा सूमो दो सौ फीट खाई के अन्दर जाकर गिरी । जिसके परिणामस्वरूप कुमारी अपूर्वा गौड़, कीर्ति शर्मा, विनीता शर्मा, चन्द्रशेखर, अंजुला शर्मा, रमाकान्त शर्मा, मुकुल गौड़ व नितिन शर्मा की मृत्यु हो गई और कुमारी शिवांगनी गौड़, नीतेश गौड़, तोषना गौड़, कुमारी योगिता शर्मा के उपहतियां कारित हुईं । इस दुर्घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 356/2002 पुलिस थाना श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तरांचल) में दर्ज हुई ।

3. क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) द्वारा प्रस्तुत क्लेम (दावा) याचिकाओं के नोटिस याचिकाओं के विपक्षीगण को जारी किए गए । याचिकाओं में वाहन चालक विपक्षी संख्या 1 प्रेम प्रकाश को विलोपित किया गया । वाहन स्वामी विपक्षी संख्या 2 की ओर से जवाब प्रस्तुत किया गया, जिसमें यह कथन किया गया कि दुर्घटना टाटा सूमो नम्बर आरजे 20 सी 6378 से कारित नहीं की गई है । उससे वाहन को उसके पिता के परिचित व मित्र श्री चन्द्रशेखर मांगकर ले गए थे । तथा ड्राइवर उनके द्वारा ही लिया गया था । घटना लाल रंग के ट्रक जिसके द्वारा टाटा सूमो टोचर करके ले जाई जा रही थी, की गफलत व लापरवाही से हुई है । उक्त ट्रक के स्वामी, चालक व बीमा कंपनी को पक्षकार नहीं बनाया है जिससे क्लेम (दावा) याचिकाएं खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई । विपक्षी संख्या 3 बीमा कंपनी की ओर से पृथक् से जवाब पेश किया गया, जिसमें मुख्य रूप से

यह अंकन किया गया कि दुर्घटना की सूचना बीमा कंपनी को नहीं दी गई, वाहन चालक के द्वारा वाहन चलाने की अनुज्ञप्ति पेश नहीं की गई । यह भी अंकन किया गया कि दुर्घटना वाहन चालक द्वारा वाहन चलाते समय कारित नहीं हुई तथा टाटा सूमो के ब्रेक फेल हो गए व गाड़ी रोक ली गई थी और जिस समय दुर्घटना हुई उस समय गाड़ी चालू नहीं थी । यह भी अंकन किया कि चालक के व्यक्तिगत कृत्य से दुर्घटना हुई है एवं अन्य कथन करते हुए याचिकाएं खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई ।

4. विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर पांच विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) संख्या 7, जयपुर नगर, जयपुर (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण) ने अपने निर्णय दिनांक 11.6.2008 के द्वारा निम्न आदेश/पंचाट पारित किया :–

> "फलस्वरूप प्रार्थीगण द्वारा प्रस्तुत एम. ए. सी. पिटीशन्स विरुद्ध प्रतिपक्षी संख्या 2 स्वीकार कर प्रार्थीगण के हक में एम. ए. सी. संख्या 456/04 में 2,25,000/- रुपए, एम. ए. सी. संख्या 464/04 में 2,25,000/- रुपए, एम. ए. सी. संख्या 465/04 में 2,25,000/- रुपए एम. ए. सी. संख्या 462/04 में 3,82,000/- रुपए, एम. ए. सी. संख्या 449/04 में 4,35,000/- रुपए, एम. ए. सी. संख्या 460/04 में स्व. कुमारी कीर्ति शर्मा की मृत्यु के कारण 1,80,000/- रुपए, प्रार्थी सुशील के आई उपहति के कारण 6,000/- रुपए, प्रार्थिया सन्जू के आई उपहति के कारण 4,000/- रुपए, मा. निक्की के आई उपहति के कारण 13,000/- रुपए, एम. ए. सी. संख्या 472/04 में 4,11,000/- रुपए, एम. ए. सी. संख्या 455/04 में 7,55,000/- रुपए, एम. ए. सी. संख्या 457/04 में 40,000/- रुपए, एम. ए. सी. संख्या 459/04 में 1,000/- रुपए, एम. ए. सी. संख्या 463/04 में कु. योगिता के हक में 75,000/- रुपए का तथा एम. ए. सी. संख्या 458/04 में 4000/- रुपए का अंतिम पंचाट पारित किया जाता है । धारा 140 एम. वी. ऐक्ट के अधीन एम. ए. सी. संख्या 464/04, 465/04, 462/04, 460/04 व 472/04 में अंतरिम क्षतिपूर्ति के रूप में अदा की गई 50,000–50,000 रुपए की राशि समायोजित किए जाने का भी आदेश दिया जाता है । अतः एम. ए. सी. संख्या 464/04 में शेष राशि 1,75,000/- रुपए पर, एम. ए. सी. संख्या 465/04 में शेष राशि 1,75,000/- रुपए पर, एम. ए. सी.

संख्या 462/04 में शेष राशि 3,32,000/- रुपए पर, एम. ए. सी. संख्या 460/04 में शेष राशि 1,30,000/- रुपए पर व एम. ए. सी. संख्या 472/04 में शेष राशि 3,61,000/- रुपए व अन्य समस्त प्रकरण में समस्त बकाया राशि पर प्रार्थीगण पिटीशन संस्थित करने की दिनांक से वास्तविक रूप से अदायगी तक 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज भी प्राप्त करने के अधिकारी होंगे । प्रार्थीगण द्वारा प्रस्तुत समस्त एम. ए. सी. पिटीशन्स विपक्षी संख्या 3 बीमा कंपनी के विरुद्ध एतद्द्वारा निरस्त की जाती है और उसे समस्त प्रकरणों में अदायगी से उन्मोचित किया जाता है । उक्त समस्त भुगतान एम. ए. सी. टी. के माध्यम से किया जावे ।

प्रकरणों में वितरण एवं विभाजन निम्न प्रकार से किया जाता है –

(1) एम. ए. सी. संख्या 456/04 में देय 2,25,000/- रुपए प्रार्थी संख्या 1, 2 व 3 में समान रूप से विभाजित कर न्यूनतम तीन वर्ष के लिए अथवा उनके विवाह होने तक मासिक आय योजना में जमा कराए जाएं जिसका मासिक ब्याज प्रार्थी अथवा उनके संरक्षक प्राप्त करने के अधिकारी होंगे ।

(2) एम. ए. सी. संख्या 460/04 में मजरुब सुशील एवं मजरुबा सन्जू को देय राशि नकद बचत खाते के माध्यम से अदा कर दी जाए । जबकि मास्टर निक्की को देय राशि उसके वयस्क होने तक एफ. डी. आर. में जमा कराई जाए । स्वर्गीय कुमारी कीर्ति शर्मा की मृत्यु की क्षतिपूर्ति के रूप में देय शेष राशि 1,30,000/- रुपए में से 50,000–50,000 रुपए प्रार्थी संख्या 1 व 2 के नाम पांच वर्ष की मासिक आय योजना में जमा कराए जाएं । जबकि शेष राशि व ब्याज की राशि प्रार्थी संख्या 1 व 2 को समान रूप से विभक्त कर बचत खाते के माध्यम से अदा की जाएं ।

(3) एम. ए. सी. संख्या 462/04 में स्वर्गीय विनिता की मृत्यु पर देय क्षतिपूर्ति राशि में से समायोजन के पश्चात् देय 3,32,000/- रुपए में से 1,40,000–1,40,000 रुपए प्रार्थी संख्या 1 व 2 के नाम पांच वर्ष के लिए मासिक आय योजना के माध्यम से अदा किए जाएं । जिसका मासिक ब्याज वे प्राप्त करने के अधिकारी होंगे । शेष राशि व ब्याज की राशि प्रार्थी संख्या 1 व 2 के मध्य समान रूप से विभाजित कर बचत खाते के माध्यम से नकद अदा कर दी जाए ।

(4) एम. ए. सी. संख्या 472/04 में समायोजन के पश्चात् देय राशि 3,61,000/- रुपए में से 2,00,000/- रुपए प्रार्थी संख्या 1 श्रीमती शान्ति शर्मा के नाम से 10 वर्ष की मासिक आय योजना में जमा कराए जाएं । शेष राशि में से प्रार्थी संख्या 1 के नाम 25,000–25,000/- रुपए की चार एफ. डी. आर. क्रमशः 2, 3, 5 व 7 वर्ष के लिए कराई जाए और शेष राशि व ब्याज की राशि प्रार्थी संख्या 1 को नकद बचत खाते के माध्यम से अदा दी जाए । प्रार्थी संख्या 2 को अब अन्य अति राशि अदा नहीं की जाए ।

(5) एम. ए. सी. संख्या 449/04 में स्वर्गीय अंजुला की मृत्यु के प्रकरण में देय 4,35,000/- रुपए प्रार्थी संख्या 1, 2 व 3 के नाम समान रूप से विभाजित कर न्यूनतम तीन वर्ष के लिए अथवा उनके वयस्क होने तक अथवा उनके विवाह होने तक मासिक आय योजना में जमा कराए जाएं । जिसका मासिक ब्याज प्रार्थी अथवा उनके संरक्षक प्राप्त करने के अधिकारी होंगे ।

(6) एम. ए. सी. संख्या 455/04 में स्वर्गीय रमाकान्त की मृत्यु पर देय क्षतिपूर्ति राशि 7,55,000/- रुपए में से 7,00,000/- रुपए प्रार्थी संख्या 1, 2 व 3 के मध्य समान रूप से विभाजित कर न्यूनतम तीन वर्ष के लिए अथवा उनके वयस्क होने तक अथवा उनके विवाह होने तक मासिक आय योजना में जमा कराए जाएं । जिसका मासिक ब्याज प्रार्थी अथवा उनके संरक्षक प्राप्त करने के अधिकारी होंगे । शेष राशि व ब्याज की राशि प्रार्थी संख्या 1 को प्रार्थीगण के आकस्मिक एवं आनुषंगिक व्यय के लिए बचत खाते के माध्यम से अदा किए जाएं ।

(7) एम. ए. सी. संख्या 458/04 में देय राशि रुपए 4,000/- प्रार्थियों को उसके वयस्क होने तक एफ. डी. आर. के माध्यम से अदा की जाए ।

(8) एम. ए. सी. संख्या 459/04 में देय राशि प्रार्थी को उसके वयस्क होने तक एफ. डी. आर. के माध्यम से अदा की जाए ।

(9) एम. ए. सी. संख्या 457/04 में देय राशि में से कुमारी तोषना गौड़ को 30,000/- रुपए तीन वर्ष की एफ. डी. आर. के माध्यम से एवं शेष राशि व ब्याज की राशि नकद बचत खाते के माध्यम से अदा की जाए ।

(10) एम. ए. सी. संख्या 465/04 में स्वर्गीय मास्टर नितिन की मृत्यु की क्षतिपूर्ति के रूप में समायोजन के पश्चात् देय 1,75,000/- रुपए में से 75,000–75,000 रुपए प्रार्थी संख्या 1 व 2 के नाम पांच-पांच वर्ष की अवधि की मासिक आय योजना में जमा कराकर अदा किए जाएं । शेष राशि व ब्याज की राशि प्रार्थीगण को समान रूप से विभक्त कर बचत खाते के माध्यम से नकद अदा की जाए ।

(11) एम. ए. सी. संख्या 463/04 में देय राशि 75,000/- रुपए में से प्रार्थियों के नाम 20,000–20,000 रुपए की तीन एफ. डी. आर. क्रमशः 2, 3 व 5 वर्ष के लिए कराई जाकर अदा की जाए । शेष राशि व ब्याज की राशि नकद बचत खाते के माध्यम के जरिए संरक्षक को अदा की जाए ।

(12) एम. ए. सी. संख्या 464/04 में स्वर्गीय मास्टर मुकुल की मृत्यु की क्षतिपूर्ति के रूप में समायोजन के पश्चात् देय 1,75,000/- रुपए में से 75,000–75,000 रुपए प्रार्थी संख्या 1 व 2 के नाम पांच-पांच वर्ष की अवधि की मासिक आय योजना में जमा कराए जाकर अदा किए जाएं । शेष राशि व ब्याज की राशि प्रार्थीगण को समान रूप से विभक्त कर बचत खाते के माध्यम से नकद अदा की जाए ।

विपक्षी संख्या 3 बीमा कंपनी द्वारा एम. ए. सी. संख्या 464/04, 465/04, 462/04, 460/04 एवं 472/04 में धारा 140 एम. बी. ऐक्ट के अधीन अंतरिम क्षतिपूर्ति की राशि 50,000/- रुपए प्रत्येक प्रकरण में अदा की गई थी, जो समायोजित की जा चुकी है । यह राशि विपक्षी संख्या 3 बीमा कंपनी, विपक्षी संख्या 2 वाहन स्वामी से प्राप्त/वसूल करने की अधिकारी है ।"

5. विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) संख्या 7, जयपुर नगर, जयपुर (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण) के उक्त निर्णय दिनांक 11.6.2008 के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष अपील संख्या 4704/2008, 3810/2008, 3811/2008, 1476/2009 एवं 1478/2009 प्रस्तुत की गई, जिनका निस्तारण इस न्यायालय के आदेश दिनांक 5.11.2012 के द्वारा करते हुए अधिकरण के निर्णय दिनांक 11.6.2008 को विवाद्यक संख्या 3 की सीमा तक अपास्त करते हुए उक्त विवाद्यक के संबंध में पुनः निर्णय पारित करने का निर्देश अधिकरण को दिया गया । इस न्यायालय के आदेश

के पालन में अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश, क्रम-15, जयपुर महानगर (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण) ने अपने निर्णय दिनांक 4.7.2014 के द्वारा निम्न आदेश पारित किया :–

> "अतः प्रार्थीगण कुमारी तोषना, शिवांगनी व नितेष की ओर से प्रस्तुत क्लेम (दावा) याचिका संख्या 5/13, 22/13, 23/13, 24/13, 25/13, 26/13 के विरुद्ध अप्रार्थी सं. 2 स्वीकार की जाती है तथा इस अधिकरण द्वारा पूर्व में पारित पंचाट दिनांक 11.6.2008 की राशि को यथावत रखा जाता है । परन्तु साथ ही यह स्पष्ट किया जाता है कि पंचाट की राशि प्रार्थीगण सर्वप्रथम बीमा कंपनी से प्राप्त करने के अधिकारी रहेंगे एवं बीमा कंपनी पंचाट की राशि को अप्रार्थी सं. 2 भवानी सिंह से प्राप्त करने के लिए व इस संबंध में कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र रहेगी ।
>
> इसी प्रकार प्रार्थीगण मधुसूदन व अन्य की ओर से प्रस्तुत क्लेम (दावा) याचिका सं. 36/13 के विरुद्ध अप्रार्थी सं. 2 स्वीकार कर प्रार्थीगण मधुसूदन व अन्य के हक में 50,000/- रुपए राशि का अंतिम पंचाट पारित किया जाता है । चूंकि उक्त क्लेम (दावा) याचिका में पूर्व में 3,82,000/- रुपए का अंतिम पंचाट दिनांक 11.6.2008 को पारित किया गया है, उक्त राशि के समायोजन के उपरान्त प्रार्थीगण 1,18,000/- रुपए अप्रार्थी सं. 2 से प्राप्त करने के अधिकारी रहते हैं । उक्त राशि पर प्रार्थी याचिका संस्थित करने की तिथि से 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज भी प्राप्त करने के अधिकारी हैं । यहां यह भी स्पष्ट किया जाता है कि पंचाट की राशि प्रार्थीगण सर्वप्रथम बीमा कंपनी से प्राप्त करने के अधिकारी रहेंगे एवं बीमा कंपनी पंचाट की राशि को अप्रार्थी सं. 2 भवानी सिंह से प्राप्त करने के लिए व इस संबंध में कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र रहेगी । उक्त राशि मय ब्याज प्रार्थी सं. 1 मधुसूदन के बचत खाते में एम. ए. सी. टी. के माध्यम से जमा करवाई जाए । उक्त समस्त राशि आयकर के दायित्वाधीन होगी ।"

6. विद्वान् अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश, क्रम-16, जयपुर महानगर (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण) द्वारा पारित उक्त निर्णय दिनांक 4.7.2014 के विरुद्ध क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 3397/2014, 3392/2014, 3393/2014, 3396/2014 प्रस्तुत कर उन्हें दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि को बढ़ाए जाने

की प्रार्थना की गई है एवं बीमा कंपनी की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 3585/2014, 3586/2014, 3587/2014 एवं 3588/2014 प्रस्तुत कर अपीलाधीन निर्णय को अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई है ।

7. क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) के विद्वान् अधिवक्ता श्री के. एन. तिवारी ने कथन किया है कि विद्वान् अधिकरण ने क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) को दिलाई जाने वाली क्षतिपूर्ति राशि के निर्धारण हेतु पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन नहीं किया है । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण द्वारा अत्यंत ही कम क्षतिपूर्ति राशि क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) को दिलाई गई है । उनका कथन है कि कुमारी शिवांगनी गौड़ के इस दुर्घटना में 2.5 प्रतिशत स्थायी निःशक्तता उत्पन्न हुई । उसे हुई अध्ययन की क्षति, चिकित्सीय व्यय, पौष्टिक आहार एवं ट्रांसपोर्टेशन के मदों के रूप में उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि नहीं दिलाई गई है । मृतका कुमारी अपूर्वा गौड़ दुर्घटना के समय 12 वर्ष की थी । मृतका अंजुला शर्मा दुर्घटना के समय 32 वर्षीय महिला थी जो कपड़े सिलाई का कार्य करके 4,000/- रुपए मासिक आय अर्जित करती थी । मृतक रमाकान्त शर्मा की उम्र दुर्घटना के समय 38 वर्ष थी, जो नगर निगम में गजधर के पद पर कार्यरत होकर 6,300/- रुपए मासिक आय अर्जित करते थे । नितेष गौड़ एवं तोषना गौड़ दुर्घटना के समय क्रमशः 6 वर्ष एवं 14 वर्ष के थे, जिनके दुर्घटना में काफी चोटें आईं । कुमारी तोषना गौड़ कक्षा 7 में अध्ययनरत थी । किन्तु उनके द्वारा प्रस्तुत की गई अपीलों के क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) को अत्यंत ही कम क्षतिपूर्ति राशि दिलाई गई है । उनका कथन है कि मोटर वाहन अधिनियम को समाज के कल्याण के लिए बनाया गया है, मोटर वाहन अधिनियम एक बेनीफिशियल लेजिस्लेशन है । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण ने यह मानने में त्रुटि की है कि उक्त वाहन प्राइवेट वाहन था एवं उक्त वाहन ऐक्ट ओपन पालिसी के तहत सीमित था इसलिए बीमा कंपनी को तृतीय पक्षकार की रिस्क के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता । उनका कथन है कि वाहन में बैठे मृतकगण एवं आहतगण तृतीय पक्षकार की परिभाषा में आते हैं, इसलिए मोटर वाहन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार बीमा कंपनी क्षतिपूर्ति राशि की अदायगी के लिए उत्तरदायी है । उनका यह भी कथन है कि पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य से यह प्रमाणित है कि दुर्घटना के समय चालक के पास वैध अनुज्ञा पत्र था । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण ने विववाद्यक संख्या 3 का निर्णय

सही रूप से नहीं किया है । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान न्यायिक विनिश्चय 2014 ए. सी. जे. पेज 1254 (एस. सी.) फईम अहमद एवं अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड एवं अन्य की ओर आकर्षित किया । अतः उनके द्वारा प्रस्तुत की गई अपीलों को स्वीकार करते हुए क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) को दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि को उपयुक्त सीमा तक बढ़ाया जाए ।

8. बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत की गई उपरोक्त वर्णित अपीलों पर बहस करते हुए बीमा कंपनी के विद्वान् अधिवक्तागण श्री विमल शर्मा एवं सरिता शर्मा एवं श्री भुवनेश शर्मा ने तर्क दिया कि विद्वान् अधिकरण ने बीमा कंपनी की आपत्तियों को स्वीकार करते हुए बीमा पालिसी की शर्तों का उल्लंघन माना है एवं क्षतिपूर्ति राशि की अदायगी का दायित्व बीमा कंपनी का नहीं माना है किन्तु गलत रूप से यह उल्लेख किया है कि बीमा कंपनी मृतक व आहतों को भुगतान करने के प्राथमिक दायित्व से नहीं बच सकती, उन्हें भुगतान करने के बाद अप्रार्थी संख्या 2 टाटा सूमो के मालिक से नहीं बच सकती, उन्हें भुगतान करने के बाद अप्रार्थी संख्या 2 टाटा सूमो के मालिक से वसूल करने का अधिकार दिया है । उनका कथन है कि अधिकरण के समक्ष बीमा कंपनी की ओर से साक्षी हरदेवा राम के कथन लेखबद्ध कराए गए हैं जिससे स्पष्ट है कि वाहन का बीमा ऐक्ट पालिसी के अन्तर्गत किया गया है, वाहन में बैठे यात्रियों व चालक के बाबत कोई प्रीमियम नहीं लिया गया है, वाहन में 10 सवारियों को बैठाने की क्षमता थी किन्तु 15 सवारियां बैठायी हुईं थीं । उनका कथन है कि वाहन का बीमा निजी वाहन के रूप में था, जबकि वाहन का उपयोग वाणिज्यिक रूप में हो रहा था । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण ने यह तो माना है कि चालक के पास ड्राइविंग लाइसेन्स नहीं था एवं बीमा कंपनी को क्षतिपूर्ति राशि की अदायगी के लिए उत्तरदायी नहीं माना है किन्तु गलत रूप से बीमा कंपनी पर यह दायित्व डाला गया है कि वह पहले क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) को भुगतान करे एवं तत्पश्चात् वाहन स्वामी से वसूल करे । उनका कथन है कि इस हेतु विद्वान् अधिकरण ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विधि दृष्टांत II (2010) ए. सी. सी. 518 (एस. सी.) दि न्यू इंडिया एश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड बनाम कुसुम में प्रतिपादित सिद्धान्तों पर गौर नहीं किया । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण ने उक्त विधि दृष्टांत पर गौर नहीं कर बीमा कंपनी को क्लेम की राशि का भुगतान क्लेमेन्ट्स को किए जाने का आदेश गलत रूप से दिया है ।

9. मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन

किया । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । विद्वान् अधिकरण ने अपने निर्णय दिनांक 4.7.2014 के अन्तर्गत विवाद्यक संख्या 3 का निर्णय करते समय जो निष्कर्ष अंकित किया है उसके सुसंगत भाग यहां उद्धृत किया जाना उपयुक्त है, जो निम्न प्रकार है :–

"अधिवक्ता प्रार्थी द्वारा प्रस्तुत न्यायिक विनिश्चय 2014 ए. सी. जे. पेज 1254 (एस. सी.) फईम अहमद एवं अन्य विरुद्ध यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेन्स कंपनी लि. एवं अन्य के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विधि का यही सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि यदि पालिसी की शर्तों का भंग भी पाया जाता है तो इंश्योरेन्स कंपनी का दायित्व नहीं भी माना जाए तो भी इंश्योरेन्स कंपनी सर्वप्रथम जिनके साथ दुर्घटना हुई व उस दुर्घटना के दिन क्लेम (दावा) करने वाले अधिकृत व्यक्तियों को भुगतान करने के दायित्व से नहीं बच सकती है परन्तु यदि इस राशि को जो पक्ष दुर्घटना के लिए दायित्वाधीन है उससे वसूल करने का भी अधिकार बीमा कंपनी को रहेगा । उनके द्वारा प्रस्तुत अन्य न्यायिक विनिश्चय एस. बी. सिविल मिस अपील नम्बर 113/2005 दिनांक 27 जनवरी, 2005 को निर्णीत नेशनल इंश्योरेन्स कंपनी लि. विरुद्ध शांतिदेवी एवं अन्य के प्रकरण में भी माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय ने धारा 163 एस. बी. ऐक्ट के प्रावधान को एम. बी. ऐक्ट के अन्य प्रावधानों पर अध्यारोही प्रभाव वाला बताया है । उनके द्वारा अन्य न्यायिक विनिश्चय 2010 ए. सी. जे. पेज 1896 (गुजरात) न्यू इंडिया इंश्योरेन्स कंपनी लि. विरुद्ध चौहान हरी सिंह पदमसिंह प्रस्तुत किया गया है । उक्त न्यायिक विनिश्चय में माननीय गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय के उक्त न्यायिक विनिश्चय के समान ही विधि का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है । उनके द्वारा जो इसी न्यायालय व सीकर एम. ए. सी. टी. न्यायालय के निर्णय प्रस्तुत किए गए हैं जिनको माननीय सर्वोच्च न्यायालय व माननीय उच्च न्यायालय के न्यायिक विनिश्चयों के परिप्रेक्ष्य के समान नहीं देखा जा सकता है ।"

"इस संबंध में जो साक्ष्य न्यायालय के समक्ष आया है उसमें बीमा कंपनी की ओर से एन. ए. डब्ल्यू. 2 हरदेवा राम को परीक्षित कराया गया है जिसने अपनी मुख्य परीक्षा में यह बताया है कि वाहन संख्या आर जे 20 सी 6378 का बीमा उनके कार्यालय के अन्तर्गत आने वाली जौहरी बाजार शाखा के द्वारा दिनांक 5.2.2002 की

मध्यरात्रि से दिनांक 4.2.2003 की मध्यरात्रि तक के लिए किया गया था । इसका कवर नोट शाखा कार्यालय से जे. आर. ओ./ 2001/161709 जारी किया गया था । इस कवर नोट के माध्यम से वाहन संख्या आर जे 20 सी 6378 का बीमा ऐक्ट पालिसी के अन्तर्गत किया गया था । कवर नोट के आधार पर बीमा पालिसी जारी की गई थी । यह कवर नोट भवानी सिंह के नाम से जारी किया गया था । वाहन की बीमा पालिसी में केवल थर्ड पार्टी की रिस्क कवर थी । यात्रियों एवं चालक की रिस्क कवर नहीं की गई थी । वाहन का बीमा करवाते समय कुल दस सवारियों की क्षमता बनाई गई थी । उसकी जानकारी में टाटा सूमो में चालक सहित दस से अधिक व्यक्ति यात्रा नहीं कर सकते हैं । वाहन स्वामी के द्वारा न तो दुर्घटना की सूचना आज दिन तक दी गई है और न ही कोई क्लेम प्रस्तुत किया गया है । मृतकों एवं घायल व्यक्तियों के द्वारा वाहन के ब्रेक फेल हो जाने के बावजूद भी खराब वाहन में पहाड़ी इलाके में यात्रा कर जानबूझकर स्वयं जोखिम लिया है जिसके लिए वे स्वयं जिम्मेदार हैं । बीमा पालिसी की प्रथम शर्त यह भी थी कि वाहन को दुरुस्त हाल में रखकर ही काम में लिया जाए अन्यथा बीमा पालिसी की रिस्क प्रभावी नहीं होगी । वाहन की जारी बीमा पालिसी के अनुसार वाहन को निजी उपयोग के लिए ही प्रयोग में लिया जाना चाहिए था परन्तु उक्त दुर्घटना वाहन को बतौर टैक्सी में काम में लिया जा रहा था । वाहन चालक के पास वाहन को चलाने के लिए वैध एवं प्रभावी लाइसेन्स नहीं था । यह तथ्य वाहन चालक की जानकारी में था । इस साक्षी की मुख्य परीक्षा से यह तथ्य साबित होता है कि वाहन संख्या आर जे 20 सी 6378 का बीमा कराया हुआ था एवं उक्त दुर्घटना दिनांक 17.5.2002 को बीमा प्रभावी था । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह बताया है कि प्रथम पक्षकार बीमाकर्ता यानि बीमा कंपनी है व दूसरा पक्षकार बीमाधारक है । प्रदर्श एन. ए. 1 में पालिसी तृतीय पक्ष के लिए वैध है । पालिसी में सिर्फ ड्राइवर का क्लॉज लिखा हुआ है व वाहन उपयोग की सीमाएं लिखी हैं । इसके अलावा अन्य कोई शर्त नहीं लिखी है । पालिसी के साथ शर्तों का जो फारमेट लगाया गया है इस पर किसी भी बीमा कंपनी के अधिकारी के हस्ताक्षर नहीं हैं । यह पालिसी प्रदर्श एन. ए. 1 पर प्रभावी होगी । यह नहीं लिखा है लेकिन यह उनका प्रेसक्राईब्ड फार्मेट है । प्रदर्श एन. ए. 1 कवर नोट के आधार पर तैयार की गई

थी । यह सही है कि कवर नोट पर कोई शर्त नहीं लिखी है । प्रदर्श एन. ए. 1 पालिसी उसके द्वारा तैयार की हुई नहीं है, ना ही उसके हस्ताक्षर हैं इस पर हस्ताक्षर नमोनारायण मीणा के हैं । यह सही है कि प्रदर्श एन. ए. 1 पर नमोनारायण मीणा के हस्ताक्षर बतौर जारीकर्ता मूल पालिसी पर नहीं है । प्रदर्श एन. ए. 1 पर टाटा सूमो में बैठे व्यक्तियों की रिस्क कवर होने की बात नहीं लिखी है । यह पालिसी प्रदर्श एन. ए. 1 में सी टू डी भाग में लिखी तारीख 4.2.2002 को जारी की गई है समय नहीं लिखा है । प्रदर्श एन. ए. 1 में वाहन को दुरुस्त हालत में रखकर काम में लिया जाएगा । ऐसा नहीं लिखा है जो सवारियां उसमें बैठी थीं वह वाहन स्वामी से संबंधित नहीं थीं । वाहन स्वामी स्वयं उनके साथ नहीं था और वे वाहन स्वामी के निवास शहर से बहुत दूर घूमने गए थे । ड्राइवर भी उनके परिवार का सदस्य नहीं था जिससे यह जाहिर होता है कि वाहन को किराए पर उपयोग में लिया जा रहा था । उसने उक्त जवाब पत्रावली के तथ्यों के आधार पर दिया है । इस दुर्घटना में जितनी सवारियां बची थीं उनमें से किसी के बयान नहीं लिए और न ही कोई अनुसंधान करवाया ।

इस प्रकरण में विपक्षी संख्या 2 जो एन. डब्ल्यू. 1 के रूप में परीक्षित हुआ है उसने भी यात्रियों का प्रीमियम अर्थात् वाहन में सवार यात्रियों का प्रीमियम बीमा कंपनी को अदा नहीं करना बताया है एवं इस वाहन में सवार व्यक्ति धारा 147 एम. वी. ऐक्ट के तहत तृतीय पक्षकार की परिभाषा में नहीं आ सकते हैं । अतः बीमा कंपनी ऐसे प्रकरण में क्षतिपूर्ति के लिए बीमा संविदा की शर्तों का उल्लंघन होने से उत्तरदायी नहीं मानी जा सकती है परन्तु वाहन का बीमा था इसलिए बीमा कंपनी का प्राथमिक दायित्व वाहन से संबंधित दुर्घटना जो हुई है उसके संबंध में आश्रितता व क्षतिग्रस्त व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति अदा करने तक सीमित रहता है भले ही बाद में जो इसके लिए दायित्वाधीन व्यक्ति हो उनसे वह राशि वसूल कर सकती है । हस्तगत प्रकरण में वाहन स्वामी ने जो विपक्षी सं. 1 जिसे बाद में विलोपित कर दिया गया था वही वाहन का चालक था । उस प्रेम प्रकाश का ड्राइविंग लाइसेन्स प्रस्तुत नहीं किया गया है जिसके संबंध में वाहन स्वामी की इस प्रतिरक्षा को नहीं माना जा सकता है कि वाहन स्वामी द्वारा वाहन चालक को रखते समय पर्याप्त सावधानी

रखी गई थी । प्रकरण में चन्द्रशेखर सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी था । यह तथ्य स्पष्ट है । अतः एन. डब्ल्यू. 1 ने यदि वाहन चालक का डी. एल. नहीं देखा व बिना डी. एल. देखे चन्द्रशेखर के कहने पर विपक्षी सं. 2 अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता । विपक्षी सं. 2 के लिए यह विकल्प उपलब्ध था कि वह इस संबंध में कोई इकरार विपक्षी सं. 1 अथवा स्वर्गीय चन्द्रशेखर से निष्पादित करवाता जिससे यह प्रमाणित होता कि वाहन पूर्ण जोखिम पर स्वर्गीय चन्द्रशेखर ले जा रहा था । अतः यह भी स्पष्ट है कि विपक्षी सं. 1 प्रेम प्रकाश, विपक्षी सं. 2 के अधीन व नियंत्रण में कार्यरत था । अतः हस्तगत प्रकरण में बीमा पालिसी की शर्तों का निश्चित रूप से उल्लंघन हुआ है जिसके लिए विपक्षी सं. 2 उत्तरदायी है एवं वाहन चालक के पास कोई लाइसेन्स नहीं होना व बीमा पालिसी की शर्तों का उल्लंघन करने के कारण बीमा संविदा की शर्तों का उल्लंघन हुआ है । ऐसी स्थिति में इंश्योरेन्स कंपनी को दायित्वाधीन नहीं माना जा सकता है एवं बीमा कंपनी इस प्रकरण में अपनी प्रतिरक्षा को प्रमाणित करने में सफल रही है । अतः इस विवाद्यक सं. 3 का विनिश्चय बीमा कंपनी विपक्षी सं. 3 के पक्ष में किया जाता है परन्तु प्राथमिक रूप से बीमा कंपनी मृतक व आहत के आश्रितों एवं आहतों को भुगतान करने के अपने प्राथमिक दायित्व से बच नहीं सकती है हालांकि बाद में जो भी भुगतान उसके द्वारा किया जाएगा वह अप्रार्थी सं. 2 से अर्थात् मालिक वाहन टाटा सूमो से वसूल करने की अधिकारिणी होगी ।"

10. विद्वान् अधिकरण द्वारा अपने निर्णय में अंकित किए गए उपरोक्त वर्णित निष्कर्ष से, मैं पूर्णतया सहमत हूं । विद्वान् अधिकरण ने न्यायिक विनिश्चय 2014 ए. सी. जे. पेज 1254 (एस. सी.) फईम अहमद एवं अन्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेन्स कंपनी लि. एवं अन्य का अवलंब लेते हुए यह सही रूप से माना है कि यदि पालिसी की शर्तों का भंग भी पाया जाता है तो इंश्योरेन्स कंपनी का दायित्व नहीं भी माना जाए तो भी इंश्योरेन्स कंपनी सर्वप्रथम जिनके साथ दुर्घटना हुई व उस दुर्घटना के दिन क्लेम (दावा) करने वाले अधिकृत व्यक्तियों को भुगतान करने के दायित्व से नहीं बच सकती है परन्तु यदि इस राशि को जो पक्ष दुर्घटना के लिए दायित्वाधीन है उससे वसूल करने का भी अधिकार बीमा कंपनी को रहेगा । उक्त विधि दृष्टांत के अवलोकन के पश्चात् विधि की यही स्थिति स्पष्ट होती है कि यदि पालिसी की शर्तों का किसी प्रकार से उल्लंघन है तो उसके लिए बीमा कंपनी को दायित्वाधीन नहीं ठहराया जा सकता परन्तु

सीमित वाहन के संबंध में क्लेमेन्ट (दावाकर्ता) के क्लेम (दावा) के भुगतान का दायित्व सर्वप्रथम बीमा कंपनी पर होगा एवं बाद में बीमा कंपनी उस राशि को उसके लिए सही रूप से दायित्वाधीन ठहराए गए व्यक्ति से वसूल करने की अधिकारी रहेगी । विद्वान् अधिकरण ने अपने निर्णय में यह सही रूप से माना है कि इस मामले में वाहन में सवार यात्रियों का प्रीमियम बीमा कंपनी को अदा नहीं करना बताया है एवं इस वाहन में सवार व्यक्ति धारा 147 एम. वी. ऐक्ट के तहत तृतीय पक्षकार की परिभाषा में नहीं आ सकते हैं । अतः बीमा कंपनी ऐसे प्रकरण में क्षतिपूर्ति के लिए बीमा संविदा की शर्तों का उल्लंघन होने से उत्तरदायी नहीं मानी जा सकती है परन्तु वाहन का बीमा था इसलिए बीमा कंपनी का प्राथमिक दायित्व वाहन से संबंधित दुर्घटना जो हुई है उसके संबंध में आश्रितता व क्षतिग्रस्त व्यक्तियों को क्षतिपूर्ति अदा करने तक सीमित रहता है भले ही बाद में जो इसके लिए दायित्वाधीन व्यक्ति हो उनसे वह राशि वसूल कर सकती है । हस्तगत प्रकरण में वाहन स्वामी ने जो विपक्षी सं. 1 जिसे बाद में विलोपित कर दिया गया था वही वाहन का चालक था । उस प्रेम प्रकाश का ड्राइविंग लाइसेन्स प्रस्तुत नहीं किया गया है जिसके संबंध में वाहन स्वामी की इस प्रतिरक्षा को नहीं माना जा सकता है कि वाहन स्वामी द्वारा वाहन चालक को रखते समय पर्याप्त सावधानी रखी गई थी । प्रकरण में चन्द्रशेखर सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी था । यह तथ्य स्पष्ट है । अतः एन. ए. डब्ल्यू. 1 ने यदि वाहन चालक का डी. एल. नहीं देखा व बिना डी. एल. देखे चन्द्रशेखर के कहने पर विपक्षी सं. 2 अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता । विपक्षी सं. 2 के लिए यह विकल्प उपलब्ध था कि वह इस संबंध में कोई इकरार विपक्षी सं. 1 अथवा स्वर्गीय चन्द्रशेखर से निष्पादित करवाता जिससे यह प्रमाणित होता कि वाहन पूर्ण जोखिम पर स्वर्गीय चन्द्रशेखर ले जा रहा था । अतः यह भी स्पष्ट है कि विपक्षी सं. 1 प्रेम प्रकाश, विपक्षी सं. 2 के अधीन व नियंत्रण में कार्यरत था । अतः यह भी स्पष्ट है कि विपक्षी सं. 1 प्रेम प्रकाश, विपक्षी सं. 2 के अधीन व नियंत्रण में कार्यरत था । अतः हस्तगत प्रकरण में बीमा पालिसी की शर्तों का निश्चित रूप से उल्लंघन हुआ है जिसके लिए विपक्षी सं. 2 उत्तरदायी है एवं वाहन चालक के पास कोई लाइसेन्स नहीं होना व बीमा पालिसी की शर्तों का उल्लंघन करने के कारण बीमा संविदा की शर्तों का उल्लंघन हुआ है ऐसी स्थिति में इंश्योरेन्स कंपनी को दायित्वाधीन नहीं माना जा सकता है एवं बीमा कंपनी इस प्रकरण में अपनी प्रतिरक्षा को प्रमाणित करने में सफल रही है अतः इस विवाद्यक सं. 3 का विनिश्चय बीमा

कंपनी विपक्षी सं. 3 के पक्ष में किया जाता है परन्तु प्राथमिक रूप से बीमा कंपनी मृतक व आहत के आश्रितों एवं आहतों को भुगतान करने के अपने प्राथमिक दायित्व से बच नहीं सकती है हालांकि बाद में जो भी भुगतान उसके द्वारा किया जाएगा वह अप्रार्थी सं. 2 से अर्थात् मालिक वाहन टाटा सूमो से वसूल करने की अधिकारिणी होगी ।

11. अपीलाधीन निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर भी पहुंचा हूं कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करने के उपरान्त विवाद्यक सं. 4 का भी निर्णय सही रूप से किया है एवं क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) को उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । मेरे मत में, विद्वान् अधिकरण का निर्णय पूर्णतया विधिसम्मत है, जिसमें हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं है ।

12. अतः अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 3397/2014, 3392/2014, 3393/2014, 3395/2014, 3396/2014, 3398/2014 एवं बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 3392/2014, 3393/2014, 3395/2014 एवं 3396/2014 निरस्त की जाती है । बीमा कंपनी की ओर से प्रस्तुत अपील संख्या 3392/2014, 3393/2014, 3395/2014 एवं 3396/2014 के साथ संलग्न स्थगन प्रार्थनापत्र के अन्तर्गत पारित स्थगन आदेश को निरस्त करते हुए उक्त स्थगन प्रार्थना पत्र भी निरस्त किए जाते हैं ।

13. बीमा कंपनी के विद्वान् अधिवक्ता श्री विमल शर्मा ने इस न्यायालय के समक्ष यह प्रार्थना की है कि वे इन मामलों में पारित निर्णय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती देना चाहते हैं, इसलिए इस आदेश की क्रियान्विति को दो माह की अवधि के लिए स्थगित रखा जाए । उनकी प्रार्थना न्यायसंगत है । अतः इस निर्णय की क्रियान्विति आज से दो माह की अवधि के लिए स्थगित रहेगी । उक्त अवधि के पश्चात् क्लेमेन्ट्स (दावाकर्ताओं) विधि अनुसार उन्हें दिलाई गई राशि को प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र रहेंगे ।

याचिका का निपटारा किया गया ।

मही./क.

धमेश्वर

बनाम

गीश पति और अन्य

तारीख 28 मई, 2015

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 59 और 63 तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 67 और 68] – द्वितीय अपील – विल निष्पादित होना – विल का असम्यक् प्रभाव, मिथ्या व्यपदेशन और प्रपीड़न के आधार पर चुनौती देना – विल को प्रेम और स्नेह के वशीभूत होकर निष्पादित करना – विलकर्ता का विल करते समय स्वस्थचित्त और विवेकशील होना – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि विलकर्ता, विल निष्पादित करते समय पूर्णरूपेण सक्षम, स्वस्थचित्त और विवेकशील था तथा उसने प्रेम और स्नेहवश विल निष्पादित किया था तो ऐसे विल को असम्यक् प्रभाव, मिथ्या व्यपदेशन और प्रपीड़न के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है और ऐसा विल युक्तियुक्त और विधिमान्य होगा ।

वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-वादी ने प्रत्यर्थी-प्रतिवादी अर्थात् गीश पति और प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के विरुद्ध घोषणा करने के लिए और पारिणामिक अनुतोष के रूप में स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री के लिए एक वाद फाइल किया गया है । वादी के अनुसार श्रीमती द्रुमति देवी ने प्रतिवादी श्री गीश पति के पक्ष में तारीख 15 जून, 1985 को विल प्रदर्श डी-2/ए निष्पादित नहीं किया था । वर्ष 1985 में द्रुमति देवी की आयु 78 वर्ष थी । प्रतिवादी सं. 1 ने अधीनस्थ राजस्व स्टाफ से दुरभि-संधि करके और वादी तथा प्रोफार्मा प्रतिवादियों के बिना जानकारी के स्वर्गीय श्रीमती द्रुमति देवी के हिस्से के बारे में अपने पक्ष में नामांतरण अनुप्रमाणन प्राप्त कर लिया था । उसे इस बारे में जानकारी जनवरी, 1994 के माह में हुई । विल अरजिस्ट्रीकृत है । श्रीमती द्रुमति देवी एक बूढ़ी, अशिक्षित और साधारण महिला थी । उन्होंने कभी भी वादी और अन्य प्रोफार्मा प्रतिवादियों को वाद-संपत्ति में अपने हिस्से के बारे में हकदार बनाने की इच्छा या मंशा जाहिर नहीं की थी । विल का निष्पादन, असम्यक् प्रभाव, मिथ्या-व्यपदेशन और प्रपीड़न का परिणाम था । तारीख 15 जून, 1985 का विल, अकृत

और शून्य था । उसने प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री की भी ईप्सा की है । वाद भूमि का सविस्तार वर्णन, वादपत्र के पैराग्राफ सं. 1(ए) और 1(बी) में किया गया है । वाद का प्रतिवादी सं. 1 द्वारा विरोध किया गया । उसके अनुसार श्रीमती द्रुमति देवी पूर्णरूपेण सक्षम और संवेदनशील महिला थी । उन्होंने उसके द्वारा उनके प्रति की गई सेवाओं के बदले में उसके पक्ष में एक विल निष्पादित किया था । इसके पश्चात्, तारीख 15 जून, 1985 के विल के आधार पर नामांतरण भी अनुप्रमाणित करा लिया गया था । राजस्व प्रविष्टियां विल के अनुसरण में की गईं थीं । वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया था । विद्वान् उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, न्यायालय सं. 3, मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 9 सितंबर, 1994 और तारीख 24 फरवरी, 1999 को विवाद्यक विरचित किए गए थे । विद्वान् उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, न्यायालय सं. 3, मंडी, हिमाचल प्रदेश ने तारीख 31 मार्च, 1999 को वाद डिक्री कर दिया था । प्रतिवादी सं. 1 गीश पति ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, मंडी, हिमाचल प्रदेश के समक्ष तारीख 31 मार्च 1999 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल की । उन्होंने तारीख 1 जून, 2002 को अपील मंजूर कर ली थी । अतएव, यह नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई है । न्यायालय द्वारा इस नियमित द्वितीय अपील को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – साक्षियों के कथनों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह प्रकट होता है कि विल, तारीख 15 जून, 1985 का है । यह डीले राम द्वारा लिखित था । विल की अन्तर्वस्तुओं को द्रुमति को पढ़कर सुनाया गया था और स्पष्टीकृत किया गया था । उसने उस पर अपने अंगूठे का निशान लगाया था । इसके पश्चात्, पार्श्व साक्षी, हीमन और हेत राम ने भी उस पर हस्ताक्षर किए । प्रतिवादी साक्षी 1, अपनी माता की देखभाल करता था । वादी ग्राम के बाहर था । अंतिम दाह-संस्कार प्रतिवादी सं. 1 द्वारा किया गया था । द्रुमति, विल निष्पादन के समय पर अपने होश-हवास में थी । न्यायालय यह पहले ही उल्लिखित कर चुका है कि वादी, साक्षी के रूप में उपस्थित नहीं हुआ है । उसने श्री श्याम लाल के पक्ष में अपना विशेष मुख्तारनामा निष्पादित किया है । किन्तु, श्री घनश्याम, अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित होते हुए स्वयं को वादी का विशेष मुख्तारनामा के रूप में दावा किया है । वादी ने भी सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 और आदेश 41 के नियम 33 के अधीन एक आवेदन फाइल किया है, यह सिद्ध

करने के लिए कि श्याम लाल पुत्र श्री सरदारु राम, निवासी भलवानी जो श्याम लाल **उर्फ** घनश्याम लाल पुत्र सरदारु राम, निवासी ग्राम भलवानी के रूप में भी जाना जाता था । यह बाद में गढ़ी हुई बात लगती है । आवेदन मात्र विधिक कमी को पूरा करने के लिए फाइल किया गया था । शपथपत्र का साक्ष्य के रूप में परिशीलन नहीं किया जा सकता है । यद्यपि, यह उपधारणा की जा सकती है कि श्याम लाल पुत्र श्री सरदारु राम को श्याम लाल **उर्फ** घनश्याम लाल के रूप में जाना जाता है, आवेदन यथाशीघ्र फाइल किए जाने चाहिए थे, इसके अलावा, वादी ने भी सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल किया है जिसे पहले ही नामंजूर किया जा चुका है । वादी के विद्वान् काउंसेल श्री संजीव कुठियाल ने न्यायालय का ध्यान प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए की ओर दिलाया है । उनके अनुसार, तारीख का कॉलम है, किन्तु, उसमें तारीख उल्लिखित नहीं है । तथापि, तारीख 15 जून, 1985, प्रतिवादी साक्षी 2 हेत राम के हस्ताक्षरों के नीचे उल्लिखित है । उसके बाद, उन्होंने यह दलील दी कि पार्श्व साक्षियों ने विभिन्न स्याही का प्रयोग किया है । किन्तु, मात्र यह तथ्य कि पार्श्व साक्षियों ने विभिन्न स्याही का प्रयोग किया है, से ही विल संदेहास्पद नहीं हो जाता है । उसके बाद, उन्होंने यह दलील दी कि विल के दाहिनी ओर का कॉलम सं. 2 खाली है । इससे कोई भिन्नता नहीं होती है । विल प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए में भी इस कॉलम के नीचे हीमन ने हेत राम के साथ पार्श्व साक्षियों के रूप में अपने हस्ताक्षर किए हैं और दोनों पार्श्व साक्षियों के पते विनिर्दिष्ट तौर पर विल के बाईं ओर दिए गए हैं । विल, तारीख 15 जून, 1985 को निष्पादित हुआ था । नामांतरण का अनुप्रमाणन वर्ष 1986 में किया गया था और सिविल वाद वर्ष 1994 में फाइल किया गया है । यह विश्वास करने योग्य नहीं है कि भाई अर्थात् वादी को तारीख 15 जून, 1985 की विल के अनुसरण में राजस्व अभिलेखों में की गई प्रविष्टियों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी । प्रथम अपील न्यायालय ने मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों का सही तौर पर मूल्यांकन किया है । विल का रजिस्ट्रीकरण नहीं होना, इसे संदेहास्पद नहीं बनाता है । विल को कठोरतः भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के उपबंधों के अनुसार निष्पादित किया गया है । तद्नुसार, विधि के सारवान् प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं । (पैरा 15, 16 और 17)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2002 की नियमित द्वितीय अपील सं. 328.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री संजीव कुठियाल, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से सुश्री देवयानी शर्मा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय अपील, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, मंडी द्वारा 1999 के सिविल अपील सं. 43 में पारित तारीख 1 जून, 2002 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निर्देशित है ।

2. इस नियमित द्वितीय अपील का न्यायनिर्णयन करने के लिए आवश्यक तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी-वादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "वादी" कहा गया है) ने प्रत्यर्थी-प्रतिवादी अर्थात् गीश पति और प्रोफार्मा प्रत्यर्थी-प्रतिवादी (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "प्रतिवादियों" कहा गया है) के विरुद्ध घोषणा करने के लिए और पारिणामिक अनुतोष के रूप में स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री के लिए एक वाद फाइल किया गया है । वादी के अनुसार श्रीमती द्रुमति देवी ने प्रतिवादी श्री गीश पति के पक्ष में तारीख 15 जून, 1985 को विल प्रदर्श डी. 2/ए निष्पादित नहीं किया था । वर्ष 1985 में द्रुमति देवी की आयु 78 वर्ष थी । प्रतिवादी सं. 1 ने अधीनस्थ राजस्व स्टाफ से दुरभि-संधि करके और वादी तथा प्रोफार्मा प्रतिवादियों के बिना जानकारी के स्वर्गीय श्रीमती द्रुमति देवी के हिस्से के बारे में अपने पक्ष में नामांतरण अनुप्रमाणन प्राप्त कर लिया था । उसे इस बारे में जानकारी जनवरी, 1994 के माह में हुई । विल अरजिस्ट्रीकृत है । श्रीमती द्रुमति देवी एक बूढ़ी, अशिक्षित और साधारण महिला थी । उन्होंने कभी भी वादी और अन्य प्रोफार्मा प्रतिवादियों को वाद-संपत्ति में अपने हिस्से के बारे में हकदार बनाने की इच्छा या मंशा जाहिर नहीं की थी । विल का निष्पादन, असम्यक् प्रभाव, मिथ्या-व्यपदेशन और प्रपीड़न का परिणाम था । तारीख 15 जून, 1985 का विल, अकृत और शून्य था । उसने प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री की भी ईप्सा की है । वाद भूमि का सविस्तार वर्णन, वादपत्र के पैराग्राफ सं. 1(ए) और 1(बी) में किया गया है ।

3. वाद का प्रतिवादी सं. 1 द्वारा विरोध किया गया । उसके अनुसार श्रीमती द्रुमति देवी पूर्णरूपेण सक्षम और संवेदनशील महिला थी । उन्होंने उसके द्वारा उनके प्रति की गई सेवाओं के बदले में उसके पक्ष में एक विल

निष्पादित किया था । इसके पश्चात्, तारीख 15 जून, 1985 के विल के आधार पर नामांतरण भी अनुप्रमाणित करा लिया गया था । राजस्व प्रविष्टियां विल के अनुसरण में की गई थीं ।

4. वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया था । विद्वान् उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, न्यायालय सं. 3, मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 9 सितंबर, 1994 और तारीख 24 फरवरी, 1999 को विवाद्यक विरचित किए गए थे । विद्वान् उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, न्यायालय सं. 3, मंडी, हिमाचल प्रदेश ने तारीख 31 मार्च, 1999 को वाद डिक्री कर दिया था । प्रतिवादी सं. 1 गीश पति ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, मंडी, हिमाचल प्रदेश के समक्ष तारीख 31 मार्च 1999 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल की । उन्होंने तारीख 1 जून, 2002 को अपील मंजूर कर लिया था । अतएव, यह नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई है ।

5. यह नियमित द्वितीय अपील, तारीख 24 जुलाई, 2002 को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्नों पर स्वीकार कर ली गई थी :–

> "1. क्या दस्तावेज प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए, अरजिस्ट्रीकृत विल का समुचित अर्थान्वयन और निर्वचन करने के उपरांत हिताधिकारी/ प्रतिपादक के पक्ष में निष्पादित विल की विधिमान्यता की उपधारणा उद्भूत की जा सकती है ?
>
> 2. क्या विद्वान् निचले न्यायालयों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों का विनिर्दिष्टतया अभि. सा. 1 श्याम लाल **उर्फ** घनश्याम, अभि. सा. 2 सत्या देवी, प्रतिवादी साक्षी 2 हेत राम, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए अरजिस्ट्रीकृत विल, प्रदर्श पी. ए. विशेष मुख्तारनामा का गलत परिशीलन और गलत अर्थान्वयन किया है ?
>
> 3. क्या यह प्रश्न कि क्या प्रतिपादक द्वारा निष्पादित विल वसीयतकर्ता का अंतिम विल होने के नाते भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 67 और 68 तथा भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 59 और 63 के भी अधीन अधिरोपित विधि की शर्तों के अधीन अनुप्रमाणित किया गया है, विनिर्दिष्टतया, जबकि दस्तावेज की सत्यता और विधिमान्यता को चुनौती दी गई है ?
>
> 4. क्या न्यायालय विल के संबंध में प्रतिवादी द्वारा विशिष्ट विवाद्यक के भार निर्वहन के पश्चात् खंडन वादी को स्वयं साक्षी के रूप में उपस्थित होने का अवसर देने से इनकार कर सकता है और

क्या न्यायालय के लिए समुचित है कि वह अवसर देने से इनकार करने के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के उपबंधों के अधीन प्रतिवादी द्वारा ऐसा निर्वहन करने के भार के खंडन में साक्ष्य देने की ईप्सा करने के लिए आवेदन खारिज कर सकता है ?

5. क्या भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 57 के उपबंध की संतुष्टि मामले के तथ्यों से होती है जब विल की संगतता वसीयत कर्ता के वसीयती क्षमता मानसिक दशा सिद्ध की जा सकती है और क्या विल को सही या गलत अभिनिर्धारित किया जा सकता है ?"

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री संजीव कुठियाल ने यह जोरदार तर्क दिया कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए, एक अरजिस्ट्रीकृत विल है । उसके बाद उन्होंने यह दलील दी कि विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों का गलत परिशीलन और गलत अर्थान्वयन किया है । उनके अनुसार, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 67 और 68 के अधीन तथा भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 59 और 63 के अधीन आज्ञापक शर्तों का अनुपालन नहीं हुआ है । उन्होंने यह भी दलील दी कि उसके मुवक्किल द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन प्रस्तुत आवेदन को गलत तौर पर विनिश्चित किया गया है । उनके अनुसार श्रीमती द्रुमति देवी अभिकथित विल निष्पादन के समय, तारीख 15 जून, 1985 को 78 वर्ष से अधिक आयु की थी ।

7. प्रत्यर्थी सं. 1 के विद्वान् काउंसेल सुश्री देवयानी ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा पारित तारीख 1 जून, 2002 के निर्णय और डिक्री का समर्थन किया है ।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिवचनों तथा अभिलेखों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया ।

9. चूंकि विधि के सभी सारवान् प्रश्न एक-दूसरे से संबंधित और जुड़े हुए हैं, इसलिए साक्ष्यों की चर्चा की पुनरावृत्ति से बचने के लिए अवधारण के लिए इन पर एक साथ विचार किया जाएगा ।

10. तारीख 15 जून, 1985 का विल प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए को डीले राम द्वारा लिखा गया था । हीमन और हेत राम पार्श्व साक्षी के रूप में उपस्थित हुए हैं । वादी साक्षी के रूप में उपस्थित नहीं हुआ । श्री घनश्याम

अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित हुआ । विशेष मुख्तारनामा श्री श्याम लाल पुत्र श्री सरदारु राम के पक्ष में निष्पादित हुआ था न कि अभि. सा. 1 घनश्याम के पक्ष में निष्पादित हुआ था । वादपत्र, वादी द्वारा हस्ताक्षरित था ।

11. अभि. सा. 1 घनश्याम ने विशेष मुख्तारनामा प्रदर्श पी. ए. प्रस्तुत किया । उसके अनुसार, द्रुमति देवी की आयु 80 वर्ष थी । वह एक बूढ़ी, अशिक्षित और साधारण महिला थी । उसकी देखभाल उसके दोनों पुत्रों अर्थात् वादी और प्रतिवादी सं. 1 ने की थी । विल, जाली और काल्पनिक है । अपनी प्रतिपरीक्षा में उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि धमेश्वर काजा की ओर रहता था । उसने, उसके पक्ष में विशेष मुख्तारनामा प्रदर्श पी. ए. निष्पादित किया है । द्रुमति की मृत्यु वर्ष 1984-85 में हुई थी । वह अपनी माता की मृत्यु के 1-1/2-2 वर्ष पश्चात् अपने गांव आया था ।

12. अभि. सा. 2 सत्या देवी, धमेश्वर की पत्नी है । उसने यह परिसाक्ष्य दिया कि उसकी सास ने कोई विल निष्पादित नहीं किया है । उसके पति काजा में कार्य करते थे । उन्हें द्रुमति देवी की मृत्यु के आठ वर्षों पश्चात् विल की जानकारी हुई थी ।

13. प्रतिवादी सं. 1 गीश पति प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में उपस्थित हुआ । उसके अनुसार, उसकी माता की मृत्यु 25 अगस्त, 1985 को हुई थी । धमेश्वर, उसकी माता की मृत्यु के पश्चात् घर नहीं आया था । वह दो माह के पश्चात् आया था । वह काजा में रहता था । उसने यह भी कथन किया कि वह अपनी माता की देखभाल करता था । उसने उनका अंतिम दाह-संस्कार किया था । विल उसके पक्ष में निष्पादित हुआ था । विल का अनुप्रमाणन वर्ष 1986 में हुआ था । विल को घर में द्रुमति देवी द्वारा निष्पादित किया गया था । उस समय हेत राम और हीमन उपस्थित थे । अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि विल, डीले राम द्वारा लिखा गया था जो उसी गांव का था । उसकी माता उसके साथ रहती थी ।

14. प्रतिवादी साक्षी 2 हेत राम ने विल प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए को साबित किया है । उसने उस पर पार्श्व साक्षी के रूप में हस्ताक्षर किया था । विल, डीले राम द्वारा लिखा गया था । उसकी अंतर्वस्तुओं को उसे पढ़कर समझाया गया था और स्पष्टीकृत किया गया था । इसके पश्चात्, उसने, उस पर अपने अंगूठे का निशान लगाया था । हीमन, पार्श्व साक्षी घटनास्थल पर उपस्थित था । द्रुमति, विल निष्पादन के

समय पर अपने होश में थी । अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि विल, उसकी उपस्थिति में लिखा गया था । हीमन को उसने बुलाया था । प्रतिवादी साक्षी 3 दामोदर ने यह परिसाक्ष्य दिया कि प्रतिवादी सं. 1 अपनी माता की देखभाल करता था ।

15. साक्षियों के कथनों का विश्लेषण करने के पश्चात् यह प्रकट होता है कि विल, तारीख 15 जून, 1985 का है । यह डीले राम द्वारा लिखित था । विल की अन्तर्वस्तुओं को द्रुमति को पढ़कर सुनाया गया था और स्पष्टीकृत किया गया था । उसने उस पर अपने अंगूठे का निशान लगाया था । इसके पश्चात्, पार्श्व साक्षी, हीमन और हेत राम ने भी उस पर हस्ताक्षर किए । प्रतिवादी साक्षी 1, अपनी माता की देखभाल करता था । वादी ग्राम के बाहर था । अंतिम दाह-संस्कार प्रतिवादी सं. 1 द्वारा किया गया था । द्रुमति, विल निष्पादन के समय पर अपने होश-हवास में थी ।

16. न्यायालय यह पहले ही उल्लिखित कर चुका है कि वादी, साक्षी के रूप में उपस्थित नहीं हुआ है । उसने श्री श्याम लाल के पक्ष में अपना विशेष मुख्तारनामा निष्पादित किया है । किन्तु, श्री घनश्याम, अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित होते हुए स्वयं को वादी का विशेष मुख्तारनामा के रूप में दावा किया है । वादी ने भी सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 और आदेश 41 के नियम 33 के अधीन एक आवेदन फाइल किया है, यह सिद्ध करने के लिए कि श्याम लाल पुत्र श्री सरदारु राम, निवासी भलवानी जो श्याम लाल **उर्फ** घनश्याम लाल पुत्र सरदारु राम, निवासी ग्राम भलवानी के रूप में भी जाना जाता था । यह बाद में गढ़ी हुई बात लगती है । आवेदन मात्र विधिक कमी को पूरा करने के लिए फाइल किया गया था । शपथपत्र का साक्ष्य के रूप में परिशीलन नहीं किया जा सकता है । यद्यपि, यह उपधारणा की जा सकती है कि श्याम लाल पुत्र श्री सरदारु राम को श्याम लाल **उर्फ** घनश्याम लाल के रूप में जाना जाता है, आवेदन यथाशीघ्र फाइल किए जाने चाहिए थे, इसके अलावा, वादी ने भी सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 27 के अधीन विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल किया है जिसे पहले ही नामंजूर किया जा चुका है ।

17. वादी के विद्वान् काउंसेल श्री संजीव कुठियाल ने न्यायालय का ध्यान प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए की ओर दिलाया है । उनके अनुसार,

तारीख का कालम है, किन्तु, उसमें तारीख उल्लिखित नहीं है । तथापि, तारीख 15 जून, 1985, प्रतिवादी साक्षी 2 हेत राम के हस्ताक्षरों के नीचे उल्लिखित है । उसके बाद, उन्होंने यह दलील दी कि पार्श्व साक्षियों ने विभिन्न स्याही का प्रयोग किया है । किन्तु, मात्र यह तथ्य कि पार्श्व साक्षियों ने विभिन्न स्याही का प्रयोग किया है, से ही विल संदेहास्पद नहीं हो जाता है । उसके बाद, उन्होंने यह दलील दी कि विल के दाहिनी ओर का कालम सं. 2 खाली है । इससे कोई भिन्नता नहीं होती है । विल प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए में भी इस कालम के नीचे हीमन ने हेत राम के साथ पार्श्व साक्षियों के रूप में अपने हस्ताक्षर किए हैं और दोनों पार्श्व साक्षियों के पते विनिर्दिष्ट तौर पर विल के बाईं ओर दिए गए हैं । विल, तारीख 15 जून, 1985 को निष्पादित हुआ था । नामांतरण का अनुप्रमाणन वर्ष 1986 में किया गया था और सिविल वाद वर्ष 1994 में फाइल किया गया है । यह विश्वास करने योग्य नहीं है कि भाई अर्थात् वादी को तारीख 15 जून, 1985 की विल के अनुसरण में राजस्व अभिलेखों में की गई प्रविष्टियों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी । प्रथम अपील न्यायालय ने मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों का सही तौर पर मूल्यांकन किया है । विल का रजिस्ट्रीकरण नहीं होना, इसे संदेहास्पद नहीं बनाता है । विल को कठोरतः भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के उपबंधों के अनुसार निष्पादित किया गया है । तद्नुसार, विधि के सारवान् प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं ।

18. तद्नुसार, इसमें उपर्युक्त व्यक्त की गई मताभिव्यक्तियों और चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, इस नियमित द्वितीय अपील में कोई गुणागुण नहीं है और इसे खारिज किया जाता है ।

2015 की सी. एम. पी. संख्या 5439

19. इसमें उपर्युक्त रूप में की गई चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए इस आवेदन में कोई गुणागुण नहीं है और इसे खारिज किया जाता है ।

नियमित द्वितीय अपील खारिज की गई ।

क.

———————

राज रानी (श्रीमती)

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 30 नवम्बर, 2015

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 69 और हिमाचल प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 की धारा 3] – द्वितीय अपील – ऋण – ऋण के एवज में प्रश्नगत भूमि के एक भाग को बंधक में रखना – ऋण की वापसी करने में असफल रहना – बंधक भूमि के बजाय सम्पूर्ण प्रश्नगत भूमि का ऋण की वसूली करने के लिए विक्रय करना – अवैध, अकृत और मनमाना अभिनिर्धारित करना – यदि ऋण की वसूली में बंधक भूमि के अतिरिक्त भूमि का विक्रय किया जाता है तो यह अवैध, अकृत और मनमाना होगा क्योंकि बंधक भूमि से अधिक भूमि का विक्रय तभी किया जा सकता है जब अभिलेख पर यह दर्शित कर दिया जाता है कि सम्पूर्ण ऋण की वसूली मात्र बंधक भूमि से नहीं हो सकती है ।

वर्तमान मामले में, वादी, वर्ष 1991-92 की जमाबंदी, प्रदर्श पी-10 के अनुसार, ग्राम बावरा, तहसील और जिला सोलन में स्थित खाता/खतौनी सं. 21/23, खसरा सं. 223/149, 235/224/149 और 238/227/150, कीटा 3, माप 16 बिस्वा में प्रविष्ट वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है । उसने गृह निर्माण के लिए यूनियन बैंक द्वारा प्रायोजित "मध्यवर्गीय आय समूह गृह योजना" के अधीन 27,500/- रुपए का ऋण लिया था । उसने वाद भूमि खसरा सं. 238/227/150, में समाविष्ट 5 बिस्वा भूमि को बंधक में रखा था, जिसे सविस्तार बंधक विलेख प्रदर्श पी-2/प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/एफ के रूप में नीचे संपत्ति की अनुसूची में वर्णित किया गया है । उसके पक्ष में, इस प्रकार मंजूर ऋण की मंजूरी की गई थी और उसके द्वारा इसे स्वीकार किया गया था । उसने स्वयं अपनी जेब से 35,000/- रुपए का निवेश करते हुए, एक गृह का निर्माण किया था । प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने अवैध रूप से उसके विरुद्ध वसूली की कार्यवाहियां आरम्भ की थीं क्योंकि उसने ऋण रकम वापस करने से कभी भी इनकार नहीं किया था ।

उसके विरुद्ध इस प्रकार आरम्भ कार्यवाहियों में उसे कभी भी तामील नहीं किया गया और इसके प्रतिकूल सम्पूर्ण वादी भूमि के एक अच्छे भाग अर्थात् जो बंधक के अधीन 5 बिस्वा भूमि थी, की पूर्णतया जानकारी होते हुए, नीलामी कर ली गई थी । प्रतिवादी सं. 1 और 2 की मौन-सहमति से प्रतिवादी सं. 3 द्वारा पारित वाद भूमि के कब्जे के बारे में आदेश भी अवैध, अकृत और शून्य है, अतएव, यह घोषणा करने के लिए वाद फाइल किया कि वह वाद भूमि की कब्जे सहित स्वामी है और नीलामी के आदेश, जो प्रक्रिया के अधिक्रमण में पारित किए गए हैं, भी अवैध हैं और बिना किसी अधिकारिता के हैं । वाद संपत्ति में किसी भी तरह से हस्तक्षेप करने, बे-कब्जा करने और अन्य-संक्रामण करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करते हुए व्यादेश का पारिणामिक अनुतोष, जो भी हो, की भी ईप्सा की गई थी । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का मूल्यांकन करते हुए, विवाद्यक सं. 1 और 2 का उत्तर देते हुए, यह निष्कर्ष निकाला कि वादी, वाद भूमि की कब्जे सहित स्वामी है और यह कि उसने भारत संघ के पक्ष में कब्जा दिए बिना खसरा सं. 238/227/150 की भूमि में से 5 बिस्वा भूमि को बंधक में रखा था । उद्घोषणा की नीलामी का आदेश अवैध, अकृत और शून्य तथा बिना अधिकारिता के है, तथापि, उसके विरुद्ध विवाद्यक सं. 3 का उत्तर देते हुए, स्वीकार नहीं किया गया । वाद ग्रहण करने और विचारण करने तथा इसे बनाए रखने की अधिकारिता के बारे में, विवाद्यक सं. 4 और 5 का उत्तर प्रतिवादियों के विरुद्ध दिए गए । इसलिए, उद्घोषणा के लिए वाद और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के अनुतोष को खारिज कर दिया गया । वादी ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा विवाद्यक सं. 3 पर अभिलिखित निष्कर्षों से व्यथित और असंतुष्ट होते हुए, एक अपील फाइल की जबकि प्रतिवादी सं. 3 ने विवाद्यक सं. 1, 4 और 5 पर अभिलिखित निष्कर्षों से व्यथित होकर, विद्वान् निचले अपील न्यायालय के समक्ष प्रति आक्षेप फाइल किया । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अपील खारिज कर दिया । तथापि, विवाद्यक सं. 1, 4 और 5 पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को उलट दिया जबकि प्रतिवादी सं. 3 को वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित करते हुए, प्रति-दावे को डिक्री कर दिया । विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की वैधता और विधिमान्यता को इस न्यायालय के समक्ष, अन्य बातों के साथ ही इस आधार पर चुनौती दी गई है कि वह मामले के तथ्यों और विधि के प्रतिकूल है और यह भी कि

विवाद्यक सं. 1 और 2 पर निकाले गए निष्कर्ष कि वह वाद भूमि की कब्जे सहित स्वामी नहीं है, न केवल अवैध है अपितु अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर आधारित नहीं होने के नाते भी प्रतिकूल है । विद्वान् निचला अपील न्यायालय, अभिकथित तौर पर यह मूल्यांकन करने में असफल रहा है कि वाद भूमि की नीलामी करने में प्रतिवादी सं. 1 और 2 द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया अवैध थी और वादी के पीछे पारित नीलामी का आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का अधिक्रमण करता है । विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों, विशिष्टतया प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/जेड से डी. डब्ल्यू. 1/जेड 7, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 3/ए, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 5/ए, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 6/ए और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 6/बी के गलत मूल्यांकन और गलत परिशीलन करने का परिणाम है । अभिलेख पर के जमीनी आदेशों से यह पर्याप्त रूप से वर्णित होता है कि वादी या उसके मुख्तारनामे ने कभी भी नोटिस प्राप्त नहीं किया और किसी विद्यमान आदेश के अधीन कब्जे के वारंट को निष्पादित नहीं किया । हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम का इस मामले में अवलंब नहीं लिया जा सकता है, इसलिए, विद्यमान निचले अपील न्यायालय की ओर से की गई सभी कार्यवाहियां इस मामले में दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्षियों के प्रतिकूल है । न्यायालय द्वारा भागतः द्वितीय अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सत्य है कि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अपील के आधारों में उसी प्रकार के उद्भूत चुनौती के अधीन निर्णय और डिक्री के मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया । यहां तक वादपत्र में भी वाद भूमि की नीलामी में अपनाई गई प्रक्रिया को अवैध, अकृत और शून्य घोषित करने की ईप्सा की गई है, तथापि, मामले के इस पहलू में कोई सार नहीं है, इस कारण से कि संपत्ति की सूची के अनुसार, खसरा संख्या 238/227/150 में से 5 बिस्वा भूमि को ही ऋण रकम का पुनः संदाय सुनिश्चित करने के लिए वादी द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के पक्ष में बंधक रखा गया था । यदि बंधक विलेख के खंड 7 पर विचार करते हैं तो तद्द्वारा, ऋण किस्त के संदाय करने में व्यतिक्रम होने पर, परिसर अर्थात् ऋण रकम में से निर्मित गृह की नीलामी होनी थी जिसमें निस्संदेह न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित था । यदि संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 69 पर विचार करते हैं तो बंधक संपत्ति को इसमें नीचे वर्णित 3 परिस्थितियों में न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना विक्रय नहीं किया जा

सकता था । न्यायालय मात्र एक परिस्थिति अर्थात् खंड (ख) पर ही विचार करते हैं । उसके अनुसार, यदि बंधक विलेख अभिव्यक्त तौर पर न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना बंधक संपत्ति का विक्रय करने के लिए शक्ति प्रदत्त करता है और बंधकदार केवल सरकार है तो इसे न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना भी विक्रय किया जा सकता था । यद्यपि, यहां बंधकदार सरकार है, तथापि, बंधक विलेख में यह उपबंधित है कि परिसर को न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना विक्रय नहीं किया जा सकता है, तथापि, बंधक संपत्ति परिसर नहीं है किन्तु, पूर्वोक्त कथित भूमि है । इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि वादी ऋण रकम के बारे में, एक पैनी का भी पुनः संदाय करने में असफल रही है, जैसा कि उसने उदभूत किया है । इसलिए, निश्चित तौर पर वह बंधक विलेख के निबंधनों में एक व्यतिक्रमी है । हिमाचल प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 की धारा 3 में यह उपबंध है कि प्राधिकृत अधिकारी, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन वसूली के अन्य तरीकों से प्रतिकूल हुए बिना ऐसे व्यक्ति से बकाए रकम का उल्लेख करते हुए, एक प्रमाणपत्र कलक्टर को भेजेगा और यह निवेदन करते हुए कि ऐसी रकम खर्चों सहित या कोई अन्य रकम वसूल किया जाना है यदि यह भू-राजस्व का बकाया है । धारा 3 की उपधारा (2) में यह भी उपबंध है कि कलक्टर, उपधारा (1) के अधीन यथाउपबंधित प्रमाणपत्र प्राप्त करने पर राजस्व भूमि की बकाया के रूप में उसमें कथित ऋण रकम की वसूली करेगा । धारा 3 की उपधारा (4) में यह भी उपबंध है कि यदि बंधक संपत्ति राज्य सरकार के पक्ष में है तो प्रथमतः बंधक संपत्ति ऋणी से बकाए रकम की वसूली के लिए कार्यवाहियों में विक्रीत होगी और यदि संपत्ति के विक्रय की कार्यवाही बकाए रकम से कम है तो ऐसे व्यक्ति के अन्य संपत्ति के विरुद्ध अतिशेष रकम की वसूली के लिए कार्यवाहियां की जा सकती हैं । जहां तक बंधक संपत्ति की नीलामी की प्रक्रिया का संबंध है, इसका भी हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम के अधीन उपबंध किया गया है । जैसा कि, इसमें उपर्युक्त उल्लिखित है, खसरा संख्या 238/227/150 में समाविष्ट 5 बिस्वा भूमि का ही बंधक रखा गया था । इसलिए, हिमाचल प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, यह समाधान अभिलिखित किए बिना कि बंधक संपत्ति की नीलामी से वादी का दायित्व पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है तभी वादी की अन्य संपत्ति की नीलामी की जानी चाहिए । श्री धनी राम, ज्येष्ठ सहायक, कलक्टर

कार्यालय, सोलन द्वारा प्रस्तुत 1993 की अभिलेख वाद सं. 29 से यह प्रकट होता है कि सम्पूर्ण वाद भूमि का विक्रय किया जाना प्रस्थापित था । जबकि संपूर्ण वाद भूमि बंधक में नहीं रखी गई थी और इसमें से मात्र 5 बिस्वा भूमि ही ऋण के बदले में बंधक रखी गई थी, जैसा कि वादी द्वारा कथन किया गया है तो सम्पूर्ण वाद भूमि की नीलामी नहीं की जा सकती थी । अधिक-से-अधिक 5 बिस्वा बंधक भूमि का ही विक्रय किया जा सकता था और यदि हिमाचल प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 की धारा 3 की उपधारा (4) के निबंधनों में बकाए धन का पूर्ण भुगतान नहीं हो पाता है तो ही वादी की अन्य संपत्ति के विरुद्ध अतिशेष रकम की वसूली के लिए कार्यवाहियां की जा सकती थीं, सुस्पष्टतः उस संपत्ति से, जो बंधक नहीं थी । भूमि कथन के कालम सं. 5 में सम्पूर्ण वाद भूमि की माप 16 बिस्वा भूमि का उल्लेख किया गया है । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, सम्पूर्ण भूमि का बंधक संपत्ति अर्थात् बंधक विलेख के अनुसार, 5 बिस्वा भूमि की प्रथमतः नीलामी किए बिना विक्रय नहीं किया जा सकता था और यदि ऋण की रकम अभी भी बकाया रहती है तभी वादी की अन्य सम्पत्ति का विक्रय करने के लिए कार्यवाहियां की जा सकती थीं । इसलिए, आयुक्त द्वारा यह समाधान अभिलिखित किए बिना कि गृह निर्माण हेतु लिए गए ऋण रकम के एवज में बंधक भूमि अर्थात् 5 बिस्वा भूमि की नीलामी करने से बकाया ऋण रकम को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है, पारित आदेश गलत है । यहां यह उल्लेख करना लाभदायक है कि यद्यपि यह विश्वास किया गया है कि हिमाचल प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 इस मामले में लागू नहीं होते हैं और नीलामी भी न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना नहीं की जानी चाहिए थी, इसलिए, वादी को आगे आना चाहिए और उसके विरुद्ध आरम्भ वसूली कार्यवाहियों का विरोध करना चाहिए, क्योंकि उस पर उसकी पुत्री पूनम के माध्यम से आरम्भतः नोटिस तामील की गई थी और उसके पश्चात् उसके पति के माध्यम से तामील की गई थी और व्यक्तिगत तौर पर भी प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए के माध्यम से तामील की गई थी । जैसा कि इसमें उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, अपीलार्थी-वादी को न केवल व्यक्तिगत तौर पर सम्यक् रूप से नोटिस तामील की गई थी अपितु उसके पति और उसकी पुत्री के माध्यम से भी नोटिस तामील की गई थी । इसलिए, वह स्वयं यह नहीं कह सकती है कि न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना बंधक भूमि की नीलामी वैधतः कायम नहीं रखी जा सकती है । इससे

मात्र यह अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने नीलामी करने के लिए विहित सही प्रक्रिया का अनुसरण किया है, तथापि, संपूर्ण वाद भूमि का विक्रय न तो वैध है न ही तथ्यतः कायम रखे जाने योग्य है । वाद भूमि के एक भाग खसरा सं. 238/227/150 में समाविष्ट माप 5 बिस्वा भूमि का विक्रय और वह भी वादी को मंजूर ऋण की रकम का निवेश करते हुए निर्मित गृह की ही नीलामी की जा सकती थी । इसलिए, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित यह निष्कर्ष कि संपूर्ण वाद भूमि को सही ही बंधक रखा गया है, न तो वैध है न ही तथ्यतः कायम रखे जाने योग्य है और प्रतिकूल होने के नाते अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है । तथापि, प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने इसमें उपर्युक्त कथित कारणों को देखते हुए कोई प्रक्रियात्मक लोप कारित नहीं किया है । (पैरा 17, 18, 19, 20, 21, 23 और 24)

अब, यदि विधि के द्वितीय सारवान् प्रश्न पर विचार करते हैं तो इसमें यह उपर्युक्त रूप में पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि वादी पर वाद भूमि की नीलामी के लिए आरम्भ कार्यवाहियों के दौरान सम्यक् रूप से नोटिस तामील की गई थी, इसलिए, वह इस बारे में, कोई शिकायत नहीं कर सकती है न ही चुनौतीधीन निर्णय और डिक्री इस मुद्दे पर दूषित है । तद्नुसार, विधि के इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता है । यदि, विधि के प्रथम सारवान् प्रश्न पर विचार किया जाए तो विद्वान् निचला अपील न्यायालय प्रति-दावे की डिक्री करने और नीलामी क्रेता अर्थात् प्रतिवादी साक्षी 3 को सम्पूर्ण वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित करने में न्यायानुमत नहीं था, इस कारण से कि मात्र बंधक संपत्ति या अधिक-से-अधिक प्रतिवादी सं. 1 और 2 से "मध्यवर्गीय आय समूह गृह योजना" के रूप में ज्ञात योजना के अधीन लिए गए ऋण से वादी द्वारा निर्मित गृह की ही नीलामी की जा सकती थी । वादी की शेष संपत्ति की नीलामी सक्षम प्राधिकारी की अनुमति से ही की जा सकती थी, यह समाधान अभिलिखित करने के पश्चात् कि बंधक संपत्ति की नीलामी से वादी के दायित्व का निर्वहन करना पर्याप्त नहीं था । तथापि, इस प्रकार का समाधान अभिलिखित नहीं किया गया है और इसके प्रतिकूल सम्पूर्ण संपत्ति को नीलामी में प्रतिवादी सं. 3 को विक्रय कर दिया गया था, जो एक अवैध और मनमाना तरीका था । इसलिए, प्रतिवादी सं. 3 को सम्पूर्ण वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है । खसरा सं. 238/227/150 में समाविष्ट मात्र 5 बिस्वा भूमि, जो बंधक विलेख

प्रदर्श पी-2/डी., डब्ल्यू. 1/एफ द्वारा प्रतिवादी सं. 1 और 2 के पास बंधक रखी हुई थी, के विक्रय को ही वैध और विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है । प्रतिवादी सं. 3 के पक्ष में सम्पूर्ण वाद भूमि के विक्रय की पुष्टि और उसके आधार पर विक्रय प्रमाणपत्र के साथ ही नामांतरण का अनुप्रमाणन प्रमाणपत्र जारी करना पूर्णतः अवैध, मनमाना और बिना किसी आधार के है । परिणामतः, सम्पूर्ण वाद भूमि के कब्जे का परिदान भी अवैध और अविधिमान्य है । (पैरा 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1994]	(1994) 1 एस. सी. सी. 131 : **देशबंधु गुप्ता** बनाम **एन. एल. आनन्द और राजेन्द्र सिंह** ;	24
[1990]	ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 119 : **अम्बाती नरसैय्या** बनाम **एम. सुब्बा राव और एक अन्य** ।	26

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2003 की नियमित द्वितीय अपील सं. 540.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	श्री रजनीश के. लाल, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से	सर्वश्री डी. एस. नयन्ता और विरेन्दर वर्मा, अपर महाधिवक्ता के साथ पुष्पेन्दर जायसवाल, उप-महाधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से	श्री भूपिन्दर गुप्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ जनेश गुप्ता, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी – वादी ने इस न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील फाइल की है । वह, विद्वान् जिला न्यायाधीश, सोलन द्वारा 2003 की सिविल अपील संख्या 38-एस/13 में पारित तारीख 13 नवम्बर, 2003 के निर्णय और डिक्री से व्यथित है, जिसके द्वारा अपील खारिज कर दी गई थी और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा 2001/96 की सिविल वाद सं. 92/1 में पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि करते हुए, प्रति-आक्षेप

मंजूर कर लिए गए थे और परिणामस्वरूप विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा विवाद्यक सं. 1, 3 और 4 पर अभिलिखित निष्कर्ष उलट दिए गए थे ।

2. वादी, वर्ष 1991-92 की जमाबंदी, प्रदर्श पी-10 के अनुसार, ग्राम बावरा, तहसील और जिला सोलन में स्थित खाता/खतौनी सं. 21/23, खसरा सं. 223/149, 235/224/149 और 238/227/150, कीटा 3, माप 16 बिस्वा में प्रविष्ट वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है । उसने गृह निर्माण के लिए यूनियन बैंक द्वारा प्रायोजित "मध्यवर्गीय आय समूह गृह योजना" के अधीन 27,500/- रुपए का ऋण लिया था । उसने वाद भूमि खसरा सं. 238/227/150, में समाविष्ट 5 बिस्वा भूमि को बंधक में रखा था, जिसे सविस्तार बंधक विलेख प्रदर्श पी-2/प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/एफ के रूप में नीचे संपत्ति की अनुसूची में वर्णित किया गया है । उसके पक्ष में, इस प्रकार मंजूर ऋण की मंजूरी की गई थी और उसके द्वारा इसे स्वीकार किया गया था । उसने स्वयं अपनी जेब से 35,000/- रुपए का निवेश करते हुए, एक गृह का निर्माण किया था । प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने अवैध रूप से उसके विरुद्ध वसूली की कार्यवाहियां आरम्भ की थीं क्योंकि उसने ऋण रकम वापस करने से कभी भी इनकार नहीं किया था । उसके विरुद्ध इस प्रकार आरम्भ कार्यवाहियों में उसे कभी भी तामील नहीं किया गया और इसके प्रतिकूल सम्पूर्ण वादी भूमि के एक अच्छे भाग अर्थात् जो बंधक के अधीन 5 बिस्वा भूमि थी, की पूर्णतया जानकारी होते हुए, नीलामी कर ली गई थी । इसलिए, वाद भूमि की नीलामी की कार्यवाहियों और आदेश को निम्नलिखित आधार पर उसके द्वारा आक्षेपित किया गया है :–

> "(क) कि वादी ने नीलामी और रकम की वसूली के संबंध में कोई नोटिस जारी नहीं किया था,
>
> (ख) कि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को उनके पास बंधक रखी संपत्ति में बंधक के अलावा उसकी नीलामी करने का कोई अधिकार, हक और हित नहीं था,
>
> (ग) कि प्रतिवादी बंधक की सीमा तक ही संपत्ति विक्रय कर सकता था जो ऋण और ब्याज की रकम के बराबर है,
>
> (घ) कि प्रतिवादियों को सम्पूर्ण भूमि की नीलामी करने का कोई अधिकार, हक और हित नहीं था क्योंकि वाद भूमि का मूल्य उस समय 98,000/- रुपए के बराबर था, ऋण लिया गया था और सम्पूर्ण प्रक्रिया विधि के उपबंधों के प्रतिकूल है ।"

3. प्रतिवादी सं. 1 और 2 की मौन-सहमति से प्रतिवादी सं. 3 द्वारा पारित वाद भूमि के कब्जे के बारे में आदेश भी अवैध, अकृत और शून्य है, अतएव, यह घोषणा करने के लिए वाद फाइल किया कि वह वाद भूमि की कब्जे सहित स्वामी है और नीलामी के आदेश, जो प्रक्रिया के अधिक्रमण में पारित किए गए हैं, भी अवैध हैं और बिना किसी अधिकारिता के हैं । वाद संपत्ति में किसी भी तरह से हस्तक्षेप करने, बे-कब्जा करने और अन्य-संक्रामण करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करते हुए व्यादेश का पारिणामिक अनुतोष, जो भी हो, की भी ईप्सा की गई थी ।

4. लिखित कथन में, प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने यह स्वीकार करते हुए कि वादी, वाद भूमि की कब्जे सहित स्वामी थी और यह भी कि उसने 27,500/- रुपए का गृह ऋण लिया था, यह दलील दी कि जब वह ऋण रकम का संदाय करने में असफल रही थी, तब भूमि राजस्व के बकाए के रूप में उससे वसूली करने का आदेश दिया गया था । हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम के उपबंधों के अधीन उसके विरुद्ध कार्यवाहियां आरम्भ की गई थीं और अन्ततोगत्वा संपत्ति और उस पर निर्मित गृह को जब्त कर लिया गया था और उससे ऋण रकम की वसूली के लिए उसे नीलामी के लिए रखा गया । इस बात से इनकार किया है कि उस पर, उसके विरुद्ध आरम्भ वसूली कार्यवाहियों की तामीली नहीं की गई थी । इस एवज में, यह इंगित किया गया है कि उसके पति गोविन्द सिंह के माध्यम से सम्यक् रूप से तामीली की गई थी । प्रतिवादी सं. 3 को अभिकथित तौर पर नीलामी क्रेता होने के नाते, वाद सम्पत्ति पर कब्जा रखने का अधिकार है ।

5. प्रतिवादी सं. 3 ने अपनी ओर से फाइल पृथक् लिखित कथन में वाद को कायम रखने को प्रश्नगत किया है और गुणागुणों पर यह दलील दी है कि अब वह वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी है । उसके अगले बयान के अनुसार, चूंकि प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने वाद भूमि की नीलामी के बारे में, एक उद्घोषणा की है, इसलिए, उसने वाद भूमि क्रय करने के लिए ऊंची बोली लगाई है और वह वाद भूमि के कब्जे में है । इसलिए, वाद को खारिज किए जाने की ईप्सा की गई है ।

6. प्रत्युत्तर में, वादी ने लिखित कथन में, प्रतिकूल दलीलों को गलत होने के नाते इनकार किया है और वादपत्र में स्थापित अपने पक्षकथन को पुनः दोहराया है ।

7. पक्षकारों के अभिकथनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक

विरचित किए गए थे :–

(1) क्या वादी, वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी है, जैसा कि अभिकथित है ?

(2) क्या वादी ने भारत संघ को कब्जा दिए बिना खसरा सं. 238/227/150 में समाविष्ट 5 बिस्वा भूमि को बंधक में रखा था, जैसा कि अभिकथित है ?

(3) क्या प्रतिवादी सं. 1 और 2 द्वारा पारित नीलामी का आदेश अवैध, अकृत और शून्य है और बिना अधिकारिता है तथा विधि के उपबंधों के विरुद्ध है, जैसा कि अभिकथित है ?

(4) क्या इस न्यायालय को वर्तमान वाद ग्रहण करने और विचारण करने की अधिकारिता नहीं है, जैसा कि अभिकथित है ?

(5) क्या वादी का वाद कायम रखे जाने योग्य नहीं है, जैसा कि अभिकथित है ?

(6) अनुतोष ।

8. पक्षकारों ने इस प्रकार विरचित विवाद्यकों के सबूत में दस्तावेजी के साथ ही मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का मूल्यांकन करते हुए, विवाद्यक सं. 1 और 2 का उत्तर देते हुए, यह निष्कर्ष निकाला कि वादी, वाद भूमि की कब्जे सहित स्वामी है और यह कि उसने भारत संघ के पक्ष में कब्जा दिए बिना खसरा सं. 238/227/150 की भूमि में से 5 बिस्वा भूमि को बंधक में रखा था । उद्घोषणा की नीलामी का आदेश अवैध, अकृत और शून्य तथा बिना अधिकारिता के है, तथापि, उसके विरुद्ध विवाद्यक सं. 3 का उत्तर देते हुए, स्वीकार नहीं किया गया । वाद ग्रहण करने और विचारण करने तथा इसे बनाए रखने की अधिकारिता के बारे में, विवाद्यक सं. 4 और 5 का उत्तर प्रतिवादियों के विरुद्ध दिए गए । इसलिए, उद्घोषणा के लिए वाद और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के अनुतोष को खारिज कर दिया गया ।

9. वादी ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा विवाद्यक सं. 3 पर अभिलिखित निष्कर्षों से व्यथित और असंतुष्ट होते हुए, एक अपील फाइल की जबकि प्रतिवादी सं. 3 ने विवाद्यक सं. 1, 4 और 5 पर अभिलिखित निष्कर्षों से व्यथित होकर, विद्वान् निचले अपील न्यायालय के समक्ष प्रति आक्षेप फाइल किया । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अपील खारिज

कर दी । तथापि, विवाद्यक सं. 1, 4 और 5 पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को उलट दिया जबकि प्रतिवादी सं. 3 को वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित करते हुए, प्रति-दावे को डिक्री कर दिया ।

10. विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की वैधता और विधिमान्यता को इस न्यायालय के समक्ष, अन्य बातों के साथ ही इस आधार पर चुनौती दी गई है कि वह मामले के तथ्यों और विधि के प्रतिकूल है और यह भी कि विवाद्यक सं. 1 और 2 पर निकाले गए निष्कर्ष कि वह वाद भूमि की कब्जे सहित स्वामी नहीं है, न केवल अवैध है अपितु अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर आधारित नहीं होने के नाते भी प्रतिकूल है । विद्वान् निचला अपील न्यायालय, अभिकथित तौर पर यह मूल्यांकन करने में असफल रहा है कि वाद भूमि की नीलामी करने में प्रतिवादी सं. 1 और 2 द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया अवैध थी और वादी के पीछे पारित नीलामी का आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का अधिक्रमण करता है । विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों, विशिष्टतया प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/जेड से डी. डब्ल्यू. 1/जेड 7, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 3/ए, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 5/ए, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 6/ए और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 6/बी के गलत मूल्यांकन और गलत परिशीलन करने का परिणाम है । अभिलेख पर के जमीनी आदेशों से यह पर्याप्त रूप से वर्णित होता है कि वादी या उसके मुख्तारनामे ने कभी भी नोटिस प्राप्त नहीं किया और किसी विद्यमान आदेश के अधीन कब्जे के वारंट को निष्पादित नहीं किया । हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम का इस मामले में अवलंब नहीं लिया जा सकता है, इसलिए, विद्यमान निचले अपील न्यायालय की ओर से की गई सभी कार्यवाहियां इस मामले में दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्षियों के प्रतिकूल है ।

11. अपील, निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्नों पर स्वीकार की गई है :–

> "1. क्या विद्यमान जिला न्यायाधीश द्वारा विचारण न्यायालय के डिक्री को उलटते हुए और प्रति-दावे को डिक्री करते हुए, पारित निर्णय और डिक्री प्रतिकूल है क्योंकि मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्षियों विशिष्टतया प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/जेड से डी. डब्ल्यू. 1/जेड 7,

प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 3/ए, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 5/ए, प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 6/ए और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 6/बी तथा पी-3 से पी-9 के गलत परिशीलन पर आधारित है ?

2. क्या सिविल न्यायालय को वाद का विचारण करने की अधिकारिता थी, जब वादी की संपत्ति को अपीलार्थी को नोटिस दिए बिना नीलामी की गई थी और विक्रय के लिए प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना उसे अवसर दिया गया था ?

3. क्या वाद संपत्ति का भूमि राजस्व के बकाए की बंधक रकम की वसूली के लिए विक्रय किया जा सकता है और संपत्ति का अत्यधिक विक्रय न्यायानुमत है ?

4. क्या मध्य प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 1973 के उपबंध बंधक संपत्ति में लागू होते थे और संपत्ति को तहसीलदार, राजस्व (वसूली) द्वारा विक्रय किया जा सकता था ?"

12. विद्वान् काउंसेल श्री रजनीश के. लाल ने यह जोरदार दलील दी कि वाद भूमि का मात्र एक भाग अर्थात् 5 बिस्वा भूमि ही बंधक विलेख प्रदर्श पी-2/डी., डब्ल्यू. 1/एफ के द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के पक्ष में बंधक रखा गया था, इसलिए, संपूर्ण भूमि को नीलामी के लिए नहीं रखा जा सकता था । वाद भूमि की नीलामी, संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 69 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों के प्रतिकूल है क्योंकि श्री लाल के अनुसार, वाद भूमि को न्यायालय के हस्तक्षेप से ही विक्रय किया जा सकता था । वादी को कभी भी कारण बताओ नोटिस तामील नहीं किया गया था और इस प्रकार, उसके पीछे वसूली कार्यवाहियां आरंभ नहीं की जा सकती थीं । श्री लाल के अनुसार, नीलामी का आदेश अवैध है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का अधिक्रमण करता है । प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के पक्ष में बंधक भूमि से अधिक की नीलामी नहीं की जा सकती थी, यह अभिलिखित किए बिना कि बंधक भूमि से वादी द्वारा रकम पुनः संदाय करने के दायित्व का पूर्ण रूप से समाधान नहीं हो सकता था ।

13. दूसरी ओर, विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री डी. एस. नयन्ता ने बलपूर्वक यह दलील दी कि हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 23 के अधीन प्रक्रिया का वाद भूमि की नीलामी करते समय अनुसरण किया गया है । नोटिस प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/जेड. 3 के प्रतिनिर्देश करते हुए यह इंगित किया कि उसने उसे उस पर अपने हस्ताक्षर करते हुए स्वयं

प्राप्त किया था ।

14. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री भूपिन्दर गुप्ता ने प्रतिवादी-राज्य की ओर से अग्रेषित तर्कों का समर्थन करते हुए यह दलील दी कि प्रतिवादी सं. 3, एक सद्भाविक क्रेता है और सक्षम प्राधिकारी द्वारा विक्रय की पुष्टि होने पर वाद भूमि के कब्जे में रखा गया है, अतएव, वह उसके कब्जे सहित स्वामी है ।

15. विधि के सारवान् प्रश्न संख्या 3 और 4, हिताधिकारी द्वारा ऋण रकम के पुनः संदाय करने में व्यतिक्रम को ध्यान में रखते हुए, उसकी वसूली करने के लिए, हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम और लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 के अधीन विहित प्रक्रिया की प्रयोज्यता के बारे में है ।

16. इस संबंध में, प्रकाश में लाई गई शिकायत यह है कि बंधक विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/एफ के खंड 7 के निबंधनों में बंधक संपत्ति का न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना विक्रय नहीं किया जा सकता था, जैसा कि, संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 69 में अन्तर्विष्ट है । यह संयाचना की गई है कि बंधक विलेख और संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 के अधीन उल्लिखित शब्द "न्यायालय" का अभिप्राय सिविल न्यायालय से है न कि राजस्व न्यायालय से है । इसलिए, श्री लाल के अनुसार, वाद भूमि की नीलामी को बंधक विलेख के निबंधनों के प्रतिकूल अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए और यह संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 69 के अधीन दूषित होने के कारण अवैध और अविधिमान्य है ।

17. यह सत्य है कि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अपील के आधारों में उसी प्रकार के उद्भूत चुनौती के अधीन निर्णय और डिक्री के मामले के इस पहलू पर विचार नहीं किया । यहां तक वादपत्र में भी वाद भूमि की नीलामी में अपनाई गई प्रक्रिया को अवैध, अकृत और शून्य घोषित करने की ईप्सा की गई है, तथापि, मामले के इस पहलू में कोई सार नहीं है, इस कारण से कि संपत्ति की सूची के अनुसार, खसरा संख्या 238/227/150 में से 5 बिस्वा भूमि को ही ऋण रकम का पुनः संदाय सुनिश्चित करने के लिए वादी द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के पक्ष में बंधक रखा गया था ।

18. यदि बंधक विलेख के खंड 7 पर विचार करते हैं तो तद्द्वारा,

ऋण किस्त के संदाय करने में व्यतिक्रम होने पर, परिसर अर्थात् ऋण रकम में से निर्मित गृह की नीलामी होनी थी जिसमें निस्संदेह न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित था । यदि संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 69 पर विचार करते हैं तो बंधक संपत्ति को इसमें नीचे वर्णित 3 परिस्थितियों में न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना विक्रय नहीं किया जा सकता था । हम, मात्र एक परिस्थिति अर्थात् खंड (ख) पर ही विचार करते हैं । उसके अनुसार, यदि बंधक विलेख अभिव्यक्त तौर पर न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना बंधक संपत्ति का विक्रय करने के लिए शक्ति प्रदत्त करता है और बंधकदार केवल सरकार है तो इसे न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना भी विक्रय किया जा सकता था । यद्यपि, यहां बंधकदार सरकार है, तथापि, बंधक विलेख में यह उपबंधित है कि परिसर को न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना विक्रय नहीं किया जा सकता है, तथापि, बंधक संपत्ति परिसर नहीं है किन्तु, पूर्वोक्त कथित भूमि है । इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि वादी ऋण रकम के बारे में, एक पैनी का भी पुनः संदाय करने में असफल रही है, जैसा कि उसने उद्भूत किया है । इसलिए, निश्चित तौर पर वह बंधक विलेख के निबंधनों में एक व्यतिक्रमी है ।

19. हिमाचल प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 की धारा 3 में यह उपबंध है कि प्राधिकृत अधिकारी, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन वसूली के अन्य तरीकों से प्रतिकूल हुए बिना ऐसे व्यक्ति से बकाए रकम का उल्लेख करते हुए, एक प्रमाणपत्र कलक्टर को भेजेगा और यह निवेदन करते हुए कि ऐसी रकम खर्चों सहित या कोई अन्य रकम वसूल किया जाना है यदि यह भू-राजस्व का बकाया है । धारा 3 की उपधारा (2) में यह भी उपबंध है कि कलक्टर, उपधारा (1) के अधीन यथाउपबंधित प्रमाणपत्र प्राप्त करने पर राजस्व भूमि की बकाया के रूप में उसमें कथित ऋण रकम की वसूली करेगा । धारा 3 की उपधारा (4) में यह भी उपबंध है कि यदि बंधक संपत्ति राज्य सरकार के पक्ष में है तो प्रथमतः बंधक संपत्ति ऋणी से बकाए रकम की वसूली के लिए कार्यवाहियों में विक्रीत होगी और यदि संपत्ति के विक्रय की कार्यवाही बकाए रकम से कम है तो ऐसे व्यक्ति के अन्य संपत्ति के विरुद्ध अतिशेष रकम की वसूली के लिए कार्यवाहियां की जा सकती हैं ।

20. जहां तक बंधक संपत्ति की नीलामी की प्रक्रिया का संबंध है, इसका भी हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम के अधीन उपबंध किया गया है ।

21. जैसा कि, इसमें उपर्युक्त उल्लिखित है, खसरा संख्या 238/227/150 में समाविष्ट 5 बिस्वा भूमि का ही बंधक रखा गया था । इसलिए, हिमाचल प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, यह समाधान अभिलिखित किए बिना कि बंधक संपत्ति की नीलामी से वादी का दायित्व पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है तभी वादी की अन्य संपत्ति की नीलामी की जानी चाहिए । श्री धनी राम, ज्येष्ठ सहायक, कलक्टर कार्यालय, सोलन द्वारा प्रस्तुत 1993 की अभिलेख वाद सं. 29 से यह प्रकट होता है कि सम्पूर्ण वाद भूमि का विक्रय किया जाना प्रस्थापित था । जबकि संपूर्ण वाद भूमि बंधक में नहीं रखी गई थी और इसमें से मात्र 5 बिस्वा भूमि ही ऋण के बदले में बंधक रखी गई थी, जैसा कि वादी द्वारा कथन किया गया है तो सम्पूर्ण वाद भूमि की नीलामी नहीं की जा सकती थी । अधिक-से-अधिक 5 बिस्वा बंधक भूमि का ही विक्रय किया जा सकता था और यदि हिमाचल प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 की धारा 3 की उपधारा (4) के निबंधनों में बकाए धन का पूर्ण भुगतान नहीं हो पाता है तो ही वादी की अन्य संपत्ति के विरुद्ध अतिशेष रकम की वसूली के लिए कार्यवाहियां की जा सकती थीं, सुस्पष्टतः उस संपत्ति से, जो बंधक नहीं थी ।

22. आयुक्त, शिमला खंड, शिमला द्वारा पारित आदेश (अभिलेख का पेज 39) इस प्रकार है :–

> "विक्रय कथन के कालम सं. 5 में उल्लिखित भूमि संपत्ति का प्रस्थापित विक्रय उस सीमा तक मंजूर किया जाता है जिनसे ऋण की सम्पूर्ण रकम समायोजित हो सकती है ।"

23. भूमि कथन के कालम सं. 5 में सम्पूर्ण वाद भूमि की माप 16 बिस्वा भूमि का उल्लेख किया गया है । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, सम्पूर्ण भूमि का बंधक संपत्ति अर्थात् बंधक विलेख के अनुसार, 5 बिस्वा भूमि की प्रथमतः नीलामी किए बिना विक्रय नहीं किया जा सकता था और यदि ऋण की रकम अभी भी बकाया रहती है तभी वादी की अन्य सम्पत्ति का विक्रय करने के लिए कार्यवाहियां की जा सकती थीं । इसलिए, आयुक्त द्वारा यह समाधान अभिलिखित किए बिना कि गृह निर्माण हेतु लिए गए ऋण रकम के एवज में बंधक भूमि अर्थात् 5 बिस्वा भूमि की नीलामी करने से बकाया ऋण रकम को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है, पारित आदेश गलत है ।

24. यहां यह उल्लेख करना लाभदायक है कि यद्यपि यह विश्वास किया गया है कि हिमाचल प्रदेश लोक धन (बकाया की वसूली) अधिनियम, 2000 इस मामले में लागू नहीं होते हैं और नीलामी भी न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना नहीं की जानी चाहिए थी, इसलिए, वादी को आगे आना चाहिए और उसके विरुद्ध आरम्भ वसूली कार्यवाहियों का विरोध करना चाहिए, क्योंकि उस पर उसकी पुत्री पूनम के माध्यम से आरम्भतः नोटिस तामील की गई थी और उसके पश्चात् उसके पति के माध्यम से तामील की गई थी और व्यक्तिगत तौर पर भी प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए के माध्यम से तामील की गई थी । **देशबंधु गुप्ता** बनाम **एन. एल. आनन्द और राजेन्द्र सिंह**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयानुसार वर्तमान मामले में, लागू नहीं होते हैं, इस कारण से कि माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष मामले में अपीलार्थी-किराएदार को कभी नोटिस नहीं दिया था और विक्रय वारंट, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अधिक्रमण में निष्पादित किया गया था जबकि वर्तमान मामले में, जैसा कि इसमें उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, अपीलार्थी-वादी को न केवल व्यक्तिगत तौर पर सम्यक् रूप से नोटिस तामील की गई थी अपितु उसके पति और उसकी पुत्री के माध्यम से भी नोटिस तामील की गई थी । इसलिए, वह स्वयं यह नहीं कह सकती है कि न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना बंधक भूमि की नीलामी वैधतः कायम नहीं रखी जा सकती है । इससे मात्र यह अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने नीलामी करने के लिए विहित सही प्रक्रिया का अनुसरण किया है, तथापि, संपूर्ण वाद भूमि का विक्रय न तो वैध है न ही तथ्यतः कायम रखे जाने योग्य है । वाद भूमि के एक भाग खसरा सं. 238/227/150 में समाविष्ट माप 5 बिस्वा भूमि का विक्रय और वह भी वादी को मंजूर ऋण की रकम का निवेश करते हुए निर्मित गृह की ही नीलामी की जा सकती थी । इसलिए, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित यह निष्कर्ष कि संपूर्ण वाद भूमि को सही ही बंधक रखा गया है, न तो वैध है न ही तथ्यतः कायम रखे जाने योग्य है और प्रतिकूल होने के नाते अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है । तथापि, प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने इसमें उपर्युक्त कथित कारणों को देखते हुए कोई प्रक्रियात्मक लोप कारित नहीं किया है ।

25. अब, यदि विधि के द्वितीय सारवान् प्रश्न पर विचार करते हैं तो

---

[1] (1994) 1 एस. सी. सी. 131.

इसमें यह उपर्युक्त रूप में पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि वादी पर वाद भूमि की नीलामी के लिए आरम्भ कार्यवाहियों के दौरान सम्यक् रूप से नोटिस तामील की गई थी, इसलिए, वह इस बारे में, कोई शिकायत नहीं कर सकती है न ही चुनौतीधीन निर्णय और डिक्री इस मुद्दे पर दूषित है । तद्नुसार, विधि के इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता है ।

26. यदि, विधि के प्रथम सारवान् प्रश्न पर विचार किया जाए तो विद्वान् निचला अपील न्यायालय प्रति-दावे की डिक्री करने और नीलामी क्रेता अर्थात् प्रतिवादी साक्षी 3 को सम्पूर्ण वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित करने में न्यायानुमत नहीं था, इस कारण से कि मात्र बंधक संपत्ति या अधिक-से-अधिक प्रतिवादी सं. 1 और 2 से "मध्यवर्गीय आय समूह गृह योजना" के रूप में ज्ञात योजना के अधीन लिए गए ऋण से वादी द्वारा निर्मित गृह की ही नीलामी की जा सकती थी । वादी की शेष संपत्ति की नीलामी सक्षम प्राधिकारी की अनुमति से ही की जा सकती थी, यह समाधान अभिलिखित करने के पश्चात् कि बंधक संपत्ति की नीलामी से वादी के दायित्व का निर्वहन करना पर्याप्त नहीं था । तथापि, इस प्रकार का समाधान अभिलिखित नहीं किया गया है और इसके प्रतिकूल सम्पूर्ण संपत्ति को नीलामी में प्रतिवादी सं. 3 को विक्रय कर दिया गया था, जो एक अवैध और मनमाना तरीका था । इसलिए, प्रतिवादी सं. 3 को सम्पूर्ण वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है । खसरा सं. 238/227/150 में समाविष्ट मात्र 5 बिस्वा भूमि, जो बंधक विलेख प्रदर्श पी-2/डी., डब्ल्यू. 1/एफ द्वारा प्रतिवादी सं. 1 और 2 के पास बंधक रखी हुई थी, के विक्रय को ही वैध और विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है । प्रतिवादी सं. 3 के पक्ष में सम्पूर्ण वाद भूमि के विक्रय की पुष्टि और उसके आधार पर विक्रय प्रमाणपत्र के साथ ही नामांतरण का अनुप्रमाणन प्रमाणपत्र जारी करना पूर्णतः अवैध, मनमाना और बिना किसी आधार के है । परिणामतः, सम्पूर्ण वाद भूमि के कब्जे का परिदान भी अवैध और अविधिमान्य है । ऐसा ही, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **अम्बाती नरसैय्या** बनाम **एम. सुब्बा राव और एक अन्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । इसलिए, विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा इसके विपरीत अभिलिखित निष्कर्ष के कारण चुनौतीधीन निर्णय और डिक्री दूषित है । तद्नुसार, विधि के सारवान् प्रश्न सं. 1 का भी उत्तर दिया जाता है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 119.

27. इसमें उपर्युक्त कथित निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, अपील भागतः मंजूर की जाती है । परिणामतः, खसरा सं. 238/227/150 में समाविष्ट मात्र 5 बिस्वा भूमि का विक्रय ही वैध और विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है और जहां तक खसरा सं. 223/149 और 235/224/149 में समाविष्ट शेष वाद भूमि का संबंध है, का विक्रय अवैध, अकृत और शून्य अभिनिर्धारित किया जाता है । परिणामतः, राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियां अर्थात् वर्ष 1991-92 के लिए जमाबंदी, प्रदर्श पी-10, जिसमें खसरा सं. 223/149 और 235/224/149 में समाविष्ट वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी के रूप में प्रतिवादी सं. 3 को दर्शित किया गया है, को अवैध, अकृत और शून्य अभिनिर्धारित किया जाता है और यह वादी के अधिकारों पर आबद्धकर नहीं है । 5 बिस्वा भूमि का आनुपातिक मूल्य अवधारित किया जाता है और इसे बकाए ऋण रकम के पुनः संदाय के संबंध में समायोजित किया जाता है और जो ग्राह्य है और वादी को शेष विक्रय प्रतिफल, आज से दो माह के भीतर प्रतिवादी सं. 3 द्वारा वापस किया जाए, जिसमें असफल रहने पर 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से सम्पूर्ण रकम का उद्ग्रहण किया जाए । यदि, बकाया सम्पूर्ण रकम और ग्राह्य रकम का पूर्वोक्त कथित रूप में 5 बिस्वा भूमि के विक्रय से समाधान नहीं होता है तो प्रतिवादी सं. 1 और 2 को विधि के अनुसरण में बकाए रकम का उद्ग्रहण करने की स्वतंत्रता होगी । चुनौती के अधीन निर्णय और डिक्री को उपर्युक्त सीमा तक उपांतरित करने का आदेश दिया जाता है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

भागतः द्वितीय अपील मंजूर की गई ।

क.

———————

संसद् के अधिनियम

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997

(1997 का अधिनियम संख्यांक 24)

[28 मार्च, 1997]

[1][दूर-संचार सेवाओं को विनियमित करने, विवादों को न्यायनिर्णीत करने, अपीलों को निपटाने और दूर-संचार सेक्टर के सेवा प्रदाताओं और उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करने, दूर-संचार सेक्टर के सुव्यवस्थित विकास को संप्रवर्तित और सुनिश्चित करने के लिए भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण और दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण] की स्थापना का और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के अड़तालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 है ।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह 25 जनवरी, 1997 को प्रवृत्त हुआ समझा जाएगा ।

2. परिभाषाएं – (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(क) "नियत दिन" से वह तारीख अभिप्रेत है जिसको धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण स्थापित किया जाता है ;

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 2 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

[1][(कक) "अपील अधिकरण" से धारा 14 के अधीन स्थापित दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण अभिप्रेत है ;]

(ख) "प्राधिकरण" से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अभिप्रेत है ;

(ग) "अध्यक्ष" से धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन नियुक्त प्राधिकरण का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(घ) "निधि" से धारा 22 की उपधारा (1) के अधीन गठित निधि अभिप्रेत है ;

(ङ) "अनुज्ञप्तिधारी" से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे विनिर्दिष्ट सार्वजनिक दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) की धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन अनुज्ञप्ति प्राप्त है ;

[1][(डक) "अनुज्ञापक" से केन्द्रीय सरकार या तार प्राधिकरण अभिप्रेत है जो भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) की धारा 4 के अधीन कोई अनुज्ञप्ति प्रदान करता है ;]

(च) "सदस्य" से धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन नियुक्त प्राधिकरण का कोई सदस्य अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत अध्यक्ष और उपाध्यक्ष भी हैं ;

(छ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है ;

(ज) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(झ) "विनियम" से इस अधिनियम के अधीन प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियम अभिप्रेत हैं ;

(ञ) "सेवा प्रदाता" से [2][सेवा प्रदाता के रूप में सरकार] अभिप्रेत है और उसके अन्तर्गत अनुज्ञप्तिधारी भी है ;

(ट) "दूर-संचार सेवा" से किसी भांति की ऐसी सेवा (जिसके अन्तर्गत इलैक्ट्रानिक डाक, वाक डाक, आंकड़े सेवाएं, श्रव्य टैक्स सेवाएं,

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 3 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।

[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 3 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

वीडियो टैक्स सेवाएं, रेडियो पेजिंग और सेलुलर चल टेलीफोन सेवाएं हैं) अभिप्रेत हैं जो उपभोक्ताओं को चिह्नों, प्रतीकों, लेखन, बिंबों और ध्वनियों के किसी पारेषण या अभिग्रहण अथवा तार, रेडियो, दृश्य या अन्य वैद्युत चुम्बकीय साधनों द्वारा किसी प्रकार की आसूचना के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती है किन्तु इसके अन्तर्गत प्रसारण सेवाएं नहीं हैं :

[1][परंतु केन्द्रीय सरकार अन्य सेवा को जिसके अन्तर्गत प्रसारण सेवाएं भी हैं, दूर-संचार सेवा होना अधिसूचित कर सकेगी ।]

(2) उन शब्दों और पदों के, जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं और परिभाषित नहीं हैं किन्तु भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) में या भारतीय बेतार तार यांत्रिकी अधिनियम, 1933 (1933 का 17) में परिभाषित हैं, वही अर्थ हैं जो उन अधिनियमों में हैं ।

(3) इस अधिनियम में किसी ऐसी विधि के प्रति निर्देश का, जो जम्मू-कश्मीर राज्य में प्रवृत्त नहीं है, उस राज्य की बाबत यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस राज्य में तत्स्थानी विधि के, यदि कोई हो, प्रति निर्देश है ।

अध्याय 2

भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण

3. प्राधिकरण की स्थापना और निगमन – (1) ऐसी तारीख से जो केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, नियत करे, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए एक प्राधिकरण की स्थापना की जाएगी जिसे भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण कहा जाएगा ।

(2) प्राधिकरण पूर्वोक्त नाम का शाश्वत् उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा वाला निगमित निकाय होगा जिसे इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जंगम और स्थावर दोनों ही प्रकार की संपत्ति का अर्जन, धारण और व्ययन करने की और संविदा करने की शक्ति होगी तथा वह उक्त नाम से वाद लाएगा या उस पर वाद लाया जाएगा ।

[2][(3) प्राधिकरण एक अध्यक्ष, और दो से अनधिक पूर्णकालिक सदस्यों और दो से अनधिक अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बनेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाएंगे ।]

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 3 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।
[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 4 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

(4) प्राधिकरण का प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में होगा ।

[1][**4. अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति के लिए अर्हताएं** – प्राधिकरण का अध्यक्ष और अन्य सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाएंगे जिन्हें दूर-संचार, उद्योग, वित्त, लेखाकर्म, विधि, प्रबंध या उपभोक्ता मामलों का विशेष ज्ञान और वृत्तिक अनुभव है :

परंतु कोई व्यक्ति जो सरकार की सेवा में है, या रहा है, सदस्य के रूप में तभी नियुक्त किया जाएगा जब ऐसे व्यक्ति ने भारत सरकार के सचिव या अपर सचिव का पद या अपर सचिव और सचिव का पद या केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार में कोई समतुल्य पद तीन वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए धारण किया हो ।]

5. अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की पदावधि, सेवा की शर्तें, आदि – (1) किसी व्यक्ति को अध्यक्ष या सदस्य के रूप में नियुक्त करने से पूर्व, केन्द्रीय सरकार अपना यह समाधान कर लेगी कि उस व्यक्ति का कोई ऐसा वित्तीय या अन्य हित नहीं है जिससे ऐसे सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो ।

[2][(2) अध्यक्ष और अन्य सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त यथा अधिसूचित उस तारीख से जिसको वे अपने पद ग्रहण करते हैं तीन वर्ष से अनधिक अवधि के लिए या 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, जो भी पूर्वतर हो, पद धारण करेंगे ।

(3) भारतीय दूर-संचार विनियामक (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ के दिन, प्राधिकरण के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त कोई व्यक्ति और सदस्य के रूप में नियुक्त और उस रूप में पद धारण कर रहा प्रत्येक अन्य व्यक्ति ऐसे प्रारंभ से ठीक पूर्व अपने पद रिक्त कर देंगे और ऐसा अध्यक्ष तथा ऐसे अन्य सदस्य अपनी पदावधि की या किसी अन्य सेवा संविदा की समयपूर्व समाप्ति के लिए तीन मास के वेतन और भत्ते से अनधिक प्रतिकर का दावा करने के लिए हकदार होंगे ।]

(4) सरकारी कर्मचारी को, [2][अध्यक्ष या पूर्णकालिक सदस्य के रूप में उसका चयन] होने पर, [2][यथास्थिति, अध्यक्ष या पूर्णकालिक सदस्य के रूप में पद ग्रहण करने] से पूर्व सेवा से निवृत्त होना होगा ।

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 5 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

(5) अध्यक्ष और [1][पूर्णकालिक सदस्यों] को संदेय वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी, जो विहित की जाएं ।

(6) अध्यक्ष या किसी सदस्य के वेतन, भत्तों और उसकी सेवा की अन्य शर्तों में, उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

[1][(6क) अंशकालिक सदस्य ऐसे भत्ते प्राप्त करेंगे जो विहित किए जाएं] ।

(7) उपधारा (2) [2]*** में किसी बात के होते हुए भी, कोई सदस्य,–

(क) केंद्रीय सरकार को कम-से-कम तीन मास की लिखित सूचना देकर अपना पद त्याग सकेगा ; या

(ख) धारा 7 के उपबंधों के अनुसार अपने पद से हटाया जा सकेगा ।

[3][(8) अध्यक्ष और पूर्णकालिक सदस्य, उस तारीख से जिसको वे इस प्रकार पद पर नहीं रह गए हैं, दो वर्ष की अवधि के लिए केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन के सिवाय,–

(क) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई नियोजन ; या

(ख) दूर-संचार सेवा के कारबार में किसी कंपनी में कोई नियुक्ति, स्वीकार नहीं करेंगे] ।

(9) अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य के पद पर हुई कोई रिक्ति, उस तारीख से जिसको ऐसी रिक्ति होती है, तीन मास की अवधि के भीतर भरी जाऐगी ।

[4]* * * * *

6. अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की शक्तियां – (1) अध्यक्ष को प्राधिकरण के कार्यकलापों के संचालन में साधारण अधीक्षण और निदेश देने की शक्तियां होंगी और वह प्राधिकरण के अधिवेशनों की अध्यक्षता करने के अतिरिक्त, प्राधिकरण

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।
[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 द्वारा (24-1-2000 से) लोप किया गया ।
[3] 2014 के अधिनियम सं. 20 की धारा 2 द्वारा (28-5-2014 से) प्रतिस्थापित ।
[4] 2000 के अधिनियम सं. 20 की धारा 7 द्वारा लोप किया गया ।

की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा और ऐसी अन्य शक्तियों और कृत्यों का निर्वहन करेगा जो विहित की जाएं ।

(2) केन्द्रीय सरकार सदस्यों में से किसी एक को प्राधिकरण का उपाध्यक्ष नियुक्त कर सकेगी जो अध्यक्ष की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा जो प्राधिकरण द्वारा विहित किए जाएं या उसे प्रत्यायोजित किए जाएं ।

7. कतिपय परिस्थितियों में सदस्य का पद से हटाया जाना और निलंबन – (1) केन्द्रीय सरकार किसी ऐसे सदस्य को पद से हटा सकेगी,–

(क) जिसे दिवालिया न्यायनिर्णीत किया गया है ; या

(ख) जिसे किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है जिसमें केन्द्रीय सरकार की राय में, नैतिक अधमता अन्तर्वलित है ; या

(ग) जो शारीरिक या मानसिक रूप से सदस्य के रूप में कार्य करने अयोग्य हो गया है ; या

(घ) जिसने ऐसा वित्तीय या अन्य हित अर्जित कर लिया है जिससे सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल रूप से प्रभाव पड़ने की संभावना है ; या

(ङ) जिसने अपनी स्थिति का ऐसा दुरुपयोग किया है जिससे उसके पद पर बने रहने से लोक हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

[1][(2) ऐसा कोई सदस्य उपधारा (1) के खंड (घ) या खंड (ङ) के अधीन अपने पद से तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि उसे मामले में सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर न दे दिया गया हो ।]

8. अधिवेशन – (1) प्राधिकरण ऐसे समय और स्थानों पर अधिवेशन करेगा और अपने अधिवेशनों में कार्य करने के संबंध में (जिसके अंतर्गत ऐसे अधिवेशनों में गणपूर्ति है) प्रक्रिया के ऐसे नियमों का पालन करेगा, जो विनियमों द्वारा उपबंधित किए जाएं ।

(2) अध्यक्ष या यदि वह किसी कारण से प्राधिकरण के अधिवेशन में उपस्थित होने में असमर्थ है तो उपाध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति में उस

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 7 द्वारा प्रतिस्थापित ।

अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों द्वारा अपने में से चुना गया कोई अन्य सदस्य, उस अधिवेशन की अध्यक्षता करेगा ।

(3) प्राधिकरण के किसी अधिवेशन में उसके समक्ष आने वाले सभी प्रश्नों का विनिश्चय उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के बहुमत द्वारा किया जाएगा और मत बराबर होने की दशा में, अध्यक्ष का या उसकी अनुपस्थिति में अध्यक्षता करने वाले व्यक्ति का, द्वितीय या निर्णायक मत होगा ।

(4) प्राधिकरण अपने अधिवेशनों में कार्य करने के लिए विनियम बना सकेगा ।

9. रिक्तियों, आदि से प्राधिकरण की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना – प्राधिकरण का कोई कार्य या कार्यवाही केवल इस आधार पर अविधिमान्य नहीं होगी कि –

(क) प्राधिकरण में कोई रिक्ति है या उसके गठन में कोई त्रुटि है ; या

(ख) प्राधिकरण के सदस्य के रूप में कार्य करने वाले किसी व्यक्ति की नियुक्ति में कोई त्रुटि है ; या

(ग) प्राधिकरण की प्रक्रिया में कोई ऐसी अनियमितता है, जो मामले के गुणागुण पर प्रभाव नहीं डालती है ।

10. प्राधिकरण के अधिकारी और अन्य कर्मचारी – (1) प्राधिकरण ऐसे अधिकारियों और उतने कर्मचारियों को नियुक्त कर सकेगा जो वह इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के दक्षतापूर्ण निर्वहन के लिए आवश्यक समझे ।

(2) उपधारा (1) के अधीन नियुक्त प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो [1][विहित] की जाएं :

[2][परंतु दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ से पूर्व, प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्तों तथा सेवा की अन्य शर्तों की बाबत बनाया गया कोई विनियम, धारा 35 की उपधारा (2) के खंड (गक) के अधीन बनाए गए नियमों के अधिसूचित होने पर तत्काल प्रभाव से प्रवर्तन में नहीं रह जाएगा ।]

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 8 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 8 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।

अध्याय 3

प्राधिकरण की शक्तियां और कृत्य

11. प्राधिकरण के कृत्य – [1][(1) भारतीय तार अधिनियम, 1885, (1885 का 13) में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण के कृत्य निम्नलिखित होंगे,–

(क) निम्नलिखित विषयों के संबंध में स्वप्रेरणा से या अनुज्ञापक के अनुरोध पर सिफारिशें करना, अर्थात् :–

(i) नए सेवा प्रदाता के प्रवेश की आवश्यकता और उसका समय निर्धारण ;

(ii) सेवा प्रदाता की अनुज्ञप्ति के निबंधन और शर्तें ;

(iii) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों के अननुपालन के लिए अनुज्ञप्ति का प्रतिसंहरण ;

(iv) दूर-संचार सेवाओं के प्रचालन में प्रतियोगिता को सुकर बनाने और दक्षता वृद्धि के लिए उपाय करना जिससे कि ऐसी सेवाओं की अभिवृद्धि को सुकर बनाया जा सके ;

(v) सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं में प्रौद्योगिक सुधार ;

(vi) नेटवर्क में उपयोग किए गए उपस्कर के निरीक्षण के पश्चात् सेवा प्रदाताओं द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपस्कर की किस्म ;

(vii) दूर-संचार प्रौद्योगिकी के विकास के लिए और दूर-संचार उद्योग के संबंध में साधारणतया अन्य विषय के लिए उपाय ;

(viii) उपलब्ध परिदृश्य का दक्षतापूर्ण प्रबंधन ;

(ख) निम्नलिखित कृत्यों का निर्वहन करना, अर्थात् :–

(i) अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करना ;

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 9 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

(ii) दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ से पूर्व प्रदान की गई अनुज्ञप्ति के निबंधनों और शर्तों में किसी बात के होते हुए भी सेवा प्रदाताओं के बीच अन्तः सम्बद्धता के निबंधन और शर्तें नियत करना ;

(iii) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच तकनीकी संगतता और प्रभावी अन्तःसंबंध सुनिश्चित करना ;

(iv) सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार सेवाएं उपलब्ध कराने से व्युत्पन्न उसकी आमदनी को बांटने संबंधी व्यवस्था का विनियमन करना ;

(v) सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवा की क्वालिटी के मानक अधिकथित करना और सेवा की क्वालिटी सुनिश्चित करना तथा सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई गई ऐसी सेवा का आवधिक सर्वेक्षण करना जिससे कि दूर-संचार सेवा के उपभोक्ताओं के हितों को संरक्षित किया जा सके ;

(vi) विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच दूर-संचार के स्थानीय और लम्बी दूरी वाले सर्किट उपलब्ध कराने के लिए समयावधि अधिकथित करना और सुनिश्चित करना ;

(vii) अन्तःसम्बन्धित करारों का और सभी ऐसे अन्य विषयों के ऐसे रजिस्टर रखना जो विनियमों में उपबंधित किए जाएं ;

(viii) खंड (vii) के अधीन रखे गए रजिस्टर को ऐसी फीस के संदाय पर और ऐसी अन्य अपेक्षाओं के अनुपालन पर जो विनियमों में उपबंधित की जाएं, जनता के किसी व्यक्ति के निरीक्षण के लिए खुला रखना ;

(ix) सर्वव्यापी सेवा बाध्यताओं का प्रभावी अनुपालन सुनिश्चित करना ;

(ग) ऐसी सेवाओं के संबंध में फीस और अन्य प्रभार ऐसी दरों पर उद्गृहीत करना जो विनियमों द्वारा अवधारित की जाएं ;

(घ) ऐसे अन्य कृत्यों का निर्वहन करना जिनके अन्तर्गत ऐसे प्रशासनिक और वित्तीय कृत्य भी हैं, जो उसे केन्द्रीय सरकार द्वारा सौंपे जाएं या जो इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए

आवश्यक हों :

परंतु इस उपधारा के खंड (क) में विनिर्दिष्ट प्राधिकरण की सिफारिशें केन्द्रीय सरकार पर आबद्धकर नहीं होंगी :

परंतु यह और कि केन्द्रीय सरकार किसी सेवा प्रदाता को जारी की जाने वाली नई अनुज्ञप्ति की बाबत इस उपधारा के खंड (क) के उपखंड (i) और उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट विषयों की बाबत प्राधिकरण से सिफारिशों की ईप्सा करेगी और प्राधिकरण अपनी सिफारिशें उस तारीख से, जिसको केन्द्रीय सरकार सिफारिशों की ईप्सा करती है, 60 दिन की अवधि के भीतर अग्रेषित करेगा :

परंतु यह भी कि प्राधिकरण केन्द्रीय सरकार से ऐसी जानकारी या दस्तावेज, जो इस उपधारा के खंड (क) के उपखंड (i) और उपखंड (ii) के अधीन सिफारिश किए जाने के प्रयोजन के लिए आवश्यक हों, प्रस्तुत करने के लिए अनुरोध कर सकेगा और केन्द्रीय सरकार ऐसे अनुरोध की प्राप्ति से सात दिन की अवधि के भीतर ऐसी जानकारी का प्रदाय करेगी :

परंतु यह भी कि यदि दूसरे परंतुक में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर या ऐसी अवधि के भीतर जो केन्द्रीय सरकार और प्राधिकरण के बीच आपस में करार पाई जाए, प्राधिकरण से कोई सिफारिश प्राप्त नहीं होती है तो केन्द्रीय सरकार किसी सेवा प्रदाता को अनुज्ञप्ति जारी कर सकेगी :

परंतु यह भी कि यदि केन्द्रीय सरकार प्राधिकरण की उस सिफारिश पर विचार करने पर प्रथमदृष्ट्या इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि ऐसी सिफारिश स्वीकार नहीं की जा सकती या उसमें उपांतरण आवश्यक हैं, तो वह सिफारिश को प्राधिकरण को वापस पुनर्विचार के लिए निर्दिष्ट कर सकेगी और प्राधिकरण ऐसे निर्देश की प्राप्ति से पंद्रह दिन की अवधि के भीतर सरकार द्वारा किए गए निर्देश पर विचार करने के पश्चात् अपनी सिफारिश केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित कर सकेगा और सिफारिश के, यदि कोई हो, प्राप्त होने के पश्चात् केन्द्रीय सरकार अंतिम विनिश्चय करेगी ।]

(2) भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण, समय-समय पर, आदेश द्वारा, उन दरों को राजपत्र में अधिसूचित कर सकेगा, जिन पर भारत में और भारत के बाहर दूर-संचार सेवाएं इस अधिनियम के अधीन उपलब्ध कराई जाएंगी, जिनके

अंतर्गत वे दरें भी हैं, जिन पर संदेशों को भारत के बाहर किसी देश को पारेषित किया जाएगा :

परंतु प्राधिकरण एक समान दूर-संचार सेवाओं की बाबत भिन्न-भिन्न व्यक्तियों या व्यक्तियों के वर्ग के लिए भिन्न-भिन्न दरें अधिसूचित कर सकेगा और जहां पूर्वोक्त रूप में भिन्न-भिन्न दरें नियत की जाती हैं वहां प्राधिकरण उसके लिए कारण अभिलिखित करेगा ।

(3) प्राधिकरण, [1][उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन] अपने कृत्यों का निर्वहन करते समय, भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टता या नैतिकता के विरुद्ध कृत्य नहीं करेगा ।

(4) प्राधिकरण अपनी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करते समय पारदर्शिता सुनिश्चित करेगा ।

12. जानकारी मांगने, अन्वेषण करने आदि की प्राधिकरण की शक्तियां – (1) जहां प्राधिकरण के लिए ऐसा करना समीचीन है वहां वह लिखित आदेश द्वारा, –

(क) किसी सेवा प्रदाता से किसी भी समय लिखित रूप में अपने कार्यकलाप से संबंधित ऐसी जानकारी या स्पष्टीकरण मांग सकेगा जो प्राधिकरण अपेक्षा करे ; या

(ख) किसी सेवा प्रदाता के कार्यकलाप से संबंधित कोई जांच करने के लिए एक या अधिक व्यक्तियों को नियुक्त कर सकेगा ; और

(ग) किसी सेवा प्रदाता की लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों का निरीक्षण करने के लिए अपने अधिकारियों या कर्मचारियों में से किसी को निदेश दे सकेगा ।

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन किसी सेवा प्रदाता के कार्यकलापों के संबंध में कोई जांच की गई है वहां,–

(क) यदि ऐसा सेवा प्रदाता सरकार का कोई विभाग है तो सरकारी विभाग का प्रत्येक अधिकारी ;

(ख) यदि ऐसा सेवा प्रदाता कोई कंपनी है तो प्रत्येक निदेशक,

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 9 द्वारा (24-1-2000 से) प्रतिस्थापित ।

प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी ; या

(ग) यदि ऐसा सेवा प्रदाता कोई फर्म है तो प्रत्येक भागीदार, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी ; या

(घ) ऐसा प्रत्येक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों का निकाय जिसका खंड (ख) और खंड (ग) में उल्लिखित व्यक्तियों में से किसी के साथ कारबार अनुक्रम में संबंध रहा था,

जांच करने वाले प्राधिकरण के समक्ष अपनी अभिरक्षा या नियंत्रण में की ऐसी सभी लेखा बहियां या अन्य दस्तावेज, जो ऐसी जांच की विषय-वस्तु से संबंधित है, पेश करने के लिए और प्राधिकरण को, यथास्थिति, उससे संबंधित, ऐसा विवरण या जानकारी भी जिसकी उससे अपेक्षा की जाए, ऐसे समय के भीतर जो विनिर्दिष्ट किया जाए, देने के लिए आबद्ध होगा ।

(3) प्रत्येक सेवा प्रदाता ऐसी लेखा बहियां या अन्य दस्तावेज रखेगा जो विहित किए जाएं ।

(4) प्राधिकरण को सेवा प्रदाताओं को ऐसे निदेश देने की शक्ति होगी, जो वह सेवा प्रदाताओं द्वारा उचित कृत्यकरण के लिए आवश्यक समझे ।

13. निदेश देने की प्राधिकरण की शक्ति – (1) प्राधिकरण, धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए, सेवा प्रदाताओं को, समय-समय पर, ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह आवश्यक समझे :

[1][परंतु धारा 12 की उपधारा (4) के अधीन या इस धारा के अधीन कोई निदेश, धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) में विनिर्दिष्ट विषयों के सिवाय जारी नहीं किया जाएगा ।]

[2][**अध्याय 4**

अपील अधिकरण

14. अपील अधिकरण की स्थापना – केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा,–

(क) (i) अनुज्ञापक या किसी अनुज्ञप्तिधारी के बीच ;
(ii) दो या अधिक सेवा प्रदाताओं के बीच ;
(iii) सेवा प्रदाता और उपभोक्ताओं के समूह के बीच,

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 10 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।
[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 11 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।

किसी विवाद को न्यायनिर्णीत करने के लिए, दूर-संचार विवाद समाधान और अपील अधिकरण नामक अपील अधिकरण की स्थापना कर सकेगी :

परंतु इस खंड की कोई बात निम्नलिखित से संबंधित विषयों की बाबत लागू नहीं होगी–

(क) एकाधिकार व्यापारिक व्यवहार, अवरोधक व्यापारिक व्यवहार और अनुचित व्यापारिक व्यवहार जो एकाधिकार तथा अवराधेक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969 (1969 का 59) की धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार आयोग की अधिकारिता के अधीन है ;

(ख) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68) की धारा 9 के अधीन स्थापित उपभोक्ता विवाद प्रतितोष पीठ या किसी उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग या राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग के समक्ष चलाने योग्य किसी व्यक्तिगत उपभोक्ता विवाद प्रतितोष का परिवाद ;

(ग) भारतीय तार अधिनियम, 1885 (1885 का 13) की धारा 7ख की उपधारा (1) में निर्दिष्ट तार प्राधिकारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच विवाद ;

(ख) इस अधिनियम के अधीन प्राधिकरण के किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई और उसका निपटारा करना ।

14क. विवाद के निपटारे के लिए आवेदन और अपील अधिकरण को अपील – (1) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या कोई स्थानीय प्राधिकरण या कोई व्यक्ति 14 के खंड (क) में निर्दिष्ट किसी विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए अपील अधिकरण को आवेदन कर सकेगा ।

(2) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या कोई स्थानीय प्राधिकरण या प्राधिकरण के किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति अपील अधिकरण को अपील कर सकेगा ।

(3) उपधारा (2) के अधीन प्रत्येक अपील उस तारीख से, जिसको प्राधिकरण द्वारा दिए गए निदेश या किए गए आदेश या विनिश्चय की प्रति केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकरण या किसी व्यथित व्यक्ति को प्राप्त होती है तीस दिन के भीतर की जा सकेगी और वह ऐसे प्ररूप में, ऐसी रीति में सत्यापित और ऐसी फीस के साथ होगी जो विहित

की जाए :

परंतु अपील अधिकरण उक्त अवधि के अवसान के पश्चात् भी किसी अपील को ग्रहण कर सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि उस अवधि के भीतर इसके फाइल न किए जाने के पर्याप्त कारण थे ।

(4) अपील अधिकरण, उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन या उपधारा (2) के अधीन किसी अपील के प्राप्त होने पर, विवाद या अपील के पक्षकारों को सुने जाने का अवसर दिए जाने के पश्चात् उसके ऊपर ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जिसे वह ठीक समझे ।

(5) अपील अधिकरण, यथास्थिति, विवाद या अपील के पक्षकारों और प्राधिकरण को उसके द्वारा किए गए प्रत्येक आदेश की प्रति भेजेगा ।

(6) उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन या उपधारा (2) के अधीन की गई अपील पर उसके द्वारा यथासंभव शीघ्रता से कार्रवाई की जाएगी और उसके द्वारा, यथास्थिति, आवेदन या अपील की प्राप्ति से नब्बे दिन की अवधि के भीतर आवेदन या अपील का अंतिम रूप से निपटारा किए जाने का प्रयास किया जाएगा :

परंतु जहां ऐसे आवेदन या अपील का निपटारा उक्त नब्बे दिन की अवधि के भीतर नहीं किया जा सकता है वहां अपील अधिकरण उक्त अवधि के भीतर किसी आवेदन या अपील के निपटारा नहीं किए जाने के कारणों को लेखबद्ध करेगा ।

(7) अपील अधिकरण उपधारा (1) के अधीन किए गए किसी आवेदन में किसी विवाद या उपधारा (2) के अधीन प्राधिकरण के किसी निदेश या आदेश या विनिश्चय के विरुद्ध की गई अपील की वैधता या औचित्य या सत्यता का परीक्षण करने के प्रयोजन के लिए, स्वप्रेरणा से या अन्यथा ऐसे आवेदन या अपील के निपटारे से सुसंगत अभिलेखों को मंगाएगा और ऐसे आदेश करेगा, जो वह ठीक समझे ।

14ख. अपील अधिकरण की संरचना –(1) अपील अधिकरण अध्यक्ष और दो से अनधिक सदस्यों से मिलकर बनेगा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा नियुक्त किए जाएंगे ।

(2) अपील प्राधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों का चयन केन्द्रीय सरकार द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से किया जाएगा ।

(3) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए,–

(क) अपील अधिकरण की अधिकारिता उसकी न्यायपीठों द्वारा प्रयोग की जा सकेगी ;

(ख) किसी न्यायपीठ का गठन अपील अधिकरण का अध्यक्ष ऐसे अधिकरण के एक या दो सदस्यों से करेगा, जिसे अध्यक्ष ठीक समझे ;

(ग) अपील अधिकरण की न्यायपीठें सामान्यतया नई दिल्ली और ऐसे अन्य स्थानों पर अधिविष्ट होंगी, जो केन्द्रीय सरकार, अपील अधिकरण के अध्यक्ष के परामर्श से अधिसूचित करे ;

(घ) केन्द्रीय सरकार उन क्षेत्रों को अधिसूचित करेगी जिनके संबंध में अपील अधिकरण की प्रत्येक न्यायपीठ अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकेगी ।

(4) उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, अपील अधिकरण का अध्यक्ष, ऐसे अधिकरण के किसी सदस्य को एक न्यायपीठ से दूसरी न्यायपीठ में स्थानान्तरित कर सकेगा ।

(5) यदि किसी मामले या विषय की सुनवाई के किसी प्रक्रम पर अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य को यह प्रतीत होता है कि मामला या विषय ऐसी प्रकृति का है कि वह दो सदस्यों वाली न्यायपीठ द्वारा सुना जाना चाहिए, तो ऐसा मामला या विषय अध्यक्ष द्वारा ऐसी न्यायपीठ को स्थानान्तरित किया जा सकेगा, जिसे अध्यक्ष ठीक समझे ।

14ग. अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति के लिए अर्हताएं – (1) अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए कोई व्यक्ति तभी अर्हित होगा जब वह,–

(क) अध्यक्ष की दशा में, उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति है या रहा है ;

(ख) सदस्य की दशा में, जिसने भारत सरकार में सचिव का पद या केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार में कोई समतुल्य पद दो वर्ष से अन्यून अवधि के लिए धारण किया हो या ऐसा व्यक्ति जो प्रौद्योगिकी, दूर-संचार उद्योग, वाणिज्य या प्रशासन के क्षेत्र में विशेष अनुभव रखता हो ।

14घ. पदावधि – अपील अधिकरण का अध्यक्ष और प्रत्येक अन्य सदस्य ऐसी तारीख से जिसको वह अपना पद ग्रहण करता है तीन वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए उस रूप में पद धारण करेगा :

परंतु कोई अध्यक्ष या अन्य सदस्य,–

(क) अध्यक्ष की दशा में, सत्तर वर्ष की आयु ;

(ख) किसी अन्य सदस्य की दशा में, पैंसठ वर्ष की आयु,

प्राप्त करने के पश्चात् पद धारण नहीं करेगा ।

14ङ सेवा के निबंधन और शर्तें – अपील अधिकरण के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं :

परंतु अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य के वेतन और भत्तों या सेवा के अन्य निबंधन और शर्तों में नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

14च. रिक्तियां – यदि अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य के पद में अस्थायी अनुपस्थिति से भिन्न किसी अन्य कारण से कोई रिक्ति किसी भी कारण हो जाती है तो केन्द्रीय सरकार किसी अन्य व्यक्ति को उस रिक्ति को भरने के लिए इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार नियुक्त करेगी और कार्यवाही उस प्रक्रम से, जब रिक्ति भर दी जाती है, अपील अधिकरण के समक्ष चालू रखी जा सकेंगी ।

14छ. पद से हटाया जाना और त्यागपत्र – (1) केन्द्रीय सरकार अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य को पद से हटा सकेगी जो,–

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया गया हो ; या

(ख) किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है जिसमें केन्द्रीय सरकार की राय में, नैतिक अधमता अंतर्वलित है ; या

(ग) अध्यक्ष या सदस्य के रूप में कार्य करने में शारीरिक या मानसिक रूप से अयोग्य हो गया है ; या

(घ) जिसने ऐसा वित्तीय या अन्य हित अर्जित कर लिया है जिससे अध्यक्ष या किसी सदस्य के उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है ; या

(ङ) जिसने अपने पद का ऐसा दुरुपयोग किया है जिससे उसके पद पर बने रहने से लोक हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, अपील अधिकरण के अध्यक्ष या किसी सदस्य को उस उपधारा के खंड (घ) या खंड (ङ) में विनिर्दिष्ट आधारों पर उसके पद से तभी हटाया जाएगा जब उच्चतम न्यायालय ने केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त निर्दिष्ट किए जाने पर, ऐसी प्रक्रिया के अनुसार, जिसे वह इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, जांच किए जाने पर यह रिपोर्ट दे दी हो कि अध्यक्ष या सदस्य को ऐसे आधार या आधारों पर हटा दिया जाना चाहिए ।

(3) केन्द्रीय सरकार उपधारा (2) के अधीन अपील अधिकरण के ऐसे अध्यक्ष या किसी सदस्य को जिसकी बाबत उच्चतम न्यायालय को निर्देश किया गया है तभी निलंबित कर सकेगी जब केन्द्रीय सरकार ने ऐसे निर्देश पर उच्चतम न्यायालय से रिपोर्ट प्राप्त होने पर आदेश पारित किया हो ।

14ज. अपील अधिकरण के कर्मचारिवृन्द – (1) केन्द्रीय सरकार अपील अधिकरण के लिए ऐसे अधिकारियों और कर्मचारियों की व्यवस्था करेगी जो वह ठीक समझे ।

(2) अपील अधिकरण के अधिकारी और कर्मचारी, अध्यक्ष के साधारण अधीक्षण के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करेंगे ।

(3) अपील अधिकरण के अधिकारियों और कर्मचारी के वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

14झ. न्यायपीठों के बीच कार्य का वितरण – जहां न्यायपीठों का गठन हो गया है, वहां अपील अधिकरण का अध्यक्ष, समय-समय पर अधिसूचना द्वारा, न्यायपीठों के बीच अपील अधिकरण के कार्य के वितरण का उपबंध कर सकेगा और मामलों का भी उपबंध कर सकेगा जिनको प्रत्येक न्यायपीठ द्वारा निपटाया जाएगा ।

14ञ. मामलों को अन्तरण करने की अध्यक्ष की शक्ति – किसी भी पक्षकार के आवेदन पर और पक्षकारों को सूचना देने के पश्चात् तथा पक्षकारों में से ऐसे पक्षकारों की जिनकी वह सुनवाई करना चाहता है, सुनवाई करने के पश्चात् या ऐसी सूचना दिए बिना स्वप्रेरणा से, अध्यक्ष एक न्यायपीठ के समक्ष लंबित किसी मामले को निपटाए जाने के लिए किसी अन्य न्यायपीठ में अंतरण कर सकेगा ।

14ट. बहुमत द्वारा विनिश्चय किया जाना – यदि किसी ऐसी न्यायपीठ, जो दो सदस्यों से मिलकर बनी है, के सदस्यों में किसी प्रश्न पर मतभेद है, तो वे ऐसे प्रश्नों का, जिन पर उनमें मतभेद है, उल्लेख करेंगे और अपील अधिकरण के अध्यक्ष को निर्दिष्ट करेंगे जो स्वयं प्रश्न या प्रश्नों पर सुनवाई करेगा और ऐसे प्रश्न या प्रश्नों का उस बहुमत के, जिन्होंने मामले की सुनवाई की है जिसके अन्तर्गत वे भी हैं जहां इसे प्रथम बार सुना गया था, अनुसार विनिश्चय किया जाएगा ।

14ठ. सदस्यों आदि का लोक सेवक होना – अपील अधिकरण का अध्यक्ष, सदस्य और अन्य अधिकारी तथा कर्मचारी भारतीय दंड संहिता, (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक होंगे ।

14ड. लंबित मामलों का अन्तरण – इस अधिनियम के अधीन अधिकरण की स्थापना से ठीक पहले अधिकरण से समक्ष विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए लंबित सभी आवेदन उस तारीख को ऐसे अधिकरण को अन्तरित हो जाएंगे :

परंतु अध्याय 4 के उपबंधों के अधीन न्यायनिर्णीत किए जाने वाले सभी विवाद जो दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के ठीक पूर्व विद्यमान थे तब तक अधिकरण द्वारा उस अध्याय में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार न्यायनिर्णीत किए जाते रहेंगे जब तक कि इस अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण की स्थापना नहीं हो जाती :

परंतु यह और कि प्रथम परंतुक में निर्दिष्ट सभी मामले प्राधिकरण द्वारा अपील अधिकरण को धारा 14 के अधीन उसके स्थापित किए जाने पर अन्तरित हो जाएंगे ।

14ढ. अपीलों का अन्तरण – (1) दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2000 के प्रारंभ से ठीक पूर्व उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित सभी अपीलें, अपील अधिकरण को धारा 14 के अधीन उसकी स्थापना पर अन्तरित हो जाएंगी ।

(2) जहां उच्च न्यायालय से उपधारा (1) के अधीन कोई अपील अन्तरित की जाती है, वहां –

(क) उच्च न्यायालय, ऐसे अन्तरण के पश्चात् यथाशीघ्र ऐसी अपील के अभिलेख अपील अधिकरण को अग्रेषित करेगा ; और

(ख) अपील अधिकरण, ऐसे अभिलेखों के प्राप्त होने पर, ऐसी

अपीलों का उस प्रक्रम से, जिस पर वह ऐसे अन्तरण से पूर्व थे या किसी अन्य पूर्वतर प्रक्रम से या नए सिरे से, जो भी अपील अधिकरण ठीक समझे, कार्रवाई करेगा ।

15. सिविल न्यायालय की अधिकारिता न होना – किसी सिविल न्यायालय की ऐसे किसी वाद या कार्यवाहियों को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी जिनकी बाबत अपील अधिकरण इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन अवधारित करने के लिए सशक्त है और इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त किसी शक्ति के अनुसरण में की गई या की जाने वाली कार्रवाई की बाबत किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकरण द्वारा व्यादेश प्रदान नहीं किया जाएगा ।

16. अपील अधिकरण की प्रक्रिया और शक्तियां – (1) अपील अधिकरण, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में अधिकथित प्रक्रिया द्वारा आबद्ध नहीं होगा, किन्तु नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त करेगा और इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए अपील अधिकरण को स्वयं की प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति होगी ।

(2) अपील अधिकरण को, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए निम्नलिखित विषयों की बाबत वही शक्तियां होंगी, जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय किसी सिविल न्यायालय में निहित हैं, अर्थात् :–

(क) किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा उसकी शपथ पर परीक्षा करना ;

(ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;

(घ) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) की धारा 123 और धारा 124 के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या दस्तावेज या ऐसे अभिलेख की प्रति या दस्तावेज मांगना ;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ;

(च) अपने विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करना ;

(छ) किसी आवेदन को त्रुटि के कारण खारिज करना या उसका एकपक्षीय रूप से विनिश्चय करना ; और

(ज) त्रुटि के कारण किसी आवेदन के खारिज करने के आदेश को या अपने द्वारा एकपक्षीय रूप से पारित किए गए किसी आदेश को अपास्त करना ; और

(झ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाए ।

(3) अपील अधिकरण के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही भारतीय दंड संहिता, (1860 का 45) की धारा 193 और धारा 228 के अर्थ में तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 196 के प्रयोजनों के लिए न्यायिक कार्यवाहियां समझी जाएंगी और अपील अधिकरण दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

17. विधिक प्रतिनिधित्व का अधिकार – आवेदक या अपीलकर्ता अपील अधिकरण के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए या तो स्वयं हाजिर हो सकेगा या एक या अधिक चार्टर्ड अकाउंटेंट या कंपनी सचिवों या लागत अकाउंटेंटों को या विधि व्यवसायों को या अपने अधिकारियों में से किसी अधिकारी को प्राधिकृत कर सकेगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए,–

(क) "चार्टर्ड अकाउंटेंट" से चार्टर्ड अकाउंटेंट अधिनियम, 1949 (1949 का 38) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ख) में यथा परिभाषित ऐसा चार्टर्ड अकाउंटेंट अभिप्रेत है, जिससे उस अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय प्रमाणपत्र अभिप्राप्त किया है ;

(ख) "कंपनी सचिव" से कंपनी सचिव अधिनियम, 1980 (1980 का 32) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ग) में यथा परिभाषित ऐसा कंपनी सचिव अभिप्रेत है, जिसने उस अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय प्रमाणपत्र अभिप्राप्त किया है ;

(ग) "लागत अकाउंटेंट" से लागत और संकर्म अकाउंटेंट

अधिनियम, 1959 (1959 का 23) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ख) में यथा परिभाषित ऐसा कोई लागत अकाउंटेंट अभिप्रेत है, जिसने उस अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय प्रमाणपत्र अभिप्राप्त किया है ;

(घ) "विधि व्यवसायी" से कोई अधिवक्ता, वकील या उच्च न्यायालय का कोई अटार्नी अभिप्रेत है और जिसके अन्तर्गत व्यवसायरत प्लीडर भी है ।

18. उच्चतम न्यायालय को अपील – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, अपील अधिकरण के किसी आदेश के विरुद्ध जो अन्तर्वर्ती आदेश नहीं है, उस संहिता की धारा 100 में निर्दिष्ट किसी एक या अधिक आधारों पर उच्चतम न्यायालय को अपील होगी ।

(2) अपील अधिकरण द्वारा पक्षकारों की सहमति से किए गए किसी विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी ।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील, उस विनिश्चय या आदेश की तारीख से जिसके विरुद्ध अपील की गई है, नब्बे दिन की अवधि के भीतर की जाएगी :

परन्तु उच्चतम न्यायालय, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी समय से अपील करने में पर्याप्त हेतुक से निवारित हो गया था तो नब्बे दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

19. अपील अधिकरण द्वारा पारित आदेश का डिक्री के रूप में निष्पाद्य होना – (1) इस अधिनियम के अधीन अपील अधिकरण द्वारा पारित कोई आदेश, अपील अधिकरण द्वारा सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में निष्पाद्य होगा और इस प्रयोजन के लिए अपील अधिकरण को सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां प्राप्त होंगी ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी अपील अधिकरण, उसके द्वारा किए गए किसी आदेश को स्थानीय अधिकारिता रखने वाले किसी सिविल न्यायालय को संप्रेषित कर सकेगा और ऐसा सिविल न्यायालय वह आदेश इस प्रकार निष्पादित करेगा मानो वह उस न्यायालय द्वारा दी गई डिक्री हो ।

20. अपील अधिकरण के आदेश का पालन करने में जानबूझकर की गई असफलता के लिए शास्ति – यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर अपील अधिकरण के आदेश का पालन करने में असफल रहता है तो वह जुर्माने से जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा और दूसरे या पश्चात्वर्ती अपराध की दशा में, जुर्माने से जो दो लाख रुपए तक हो सकेगा और उल्लंघन जारी रहने की दशा में, अतिरिक्त जुर्माने से जो ऐसे प्रत्येक दिन के लिए जिसके दौरान ऐसा व्यतिक्रम जारी रहता है, अतिरिक्त जुर्माने से जो दो लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।]

अध्याय 5

वित्त, लेखा और संपरीक्षा

21. केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान – केन्द्रीय सरकार, संसद् द्वारा विधि द्वारा इस निमित्त किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात् प्राधिकरण को ऐसी धनराशियों का अनुदान जो अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्तों और प्रशासनिक व्ययों के लिए, जिनके अन्तर्गत प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय या उनके संबंध में वेतन, भत्ते और पेंशन हैं, अपेक्षित हैं, दे सकेगी ।

22. निधि – (1) भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण साधारण निधि के नाम से एक निधि का गठन किया जाएगा और उसमें निम्नलिखित जमा किए जाएंगे, अर्थात् :–

(क) प्राधिकरण द्वारा इस अधिनियम के अधीन प्राप्त सभी अनुदान, फीस और प्रभार ; और

(ख) प्राधिकरण द्वारा ऐसे अन्य स्रोतों से, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विनिश्चित किए जाएं, प्राप्त सभी राशियां ।

(2) निधि का उपयोजन निम्नलिखित की पूर्ति के लिए किया जाएगा, अर्थात् :–

(क) अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा प्रशासनिक व्यय, जिसके अंतर्गत प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय या उनके संबंध में वेतन, भत्ते और पेंशन हैं ; और

(ख) इस अधिनियम द्वारा प्राधिकृत उद्देश्यों के संबंध में और प्रयोजनों के लिए व्यय ।

23. लेखा और संपरीक्षा – (1) प्राधिकरण, उचित लेखे और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा तथा लेखाओं का वार्षिक विवरण ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो केन्द्रीय सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) प्राधिकरण के लेखाओं की संपरीक्षा, भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर, जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं, की जाएगी और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय प्राधिकरण द्वारा भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

[1][**स्पष्टीकरण** – शंकाओं के निराकरण के लिए यह घोषित किया जाता है कि प्राधिकरण द्वारा, धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) और उपधारा (2) तथा धारा 13 के अधीन उसके कृत्यों के निर्वहन में किए गए विनिश्चय, अपील अधिकरण को अपील योग्य मामले होने के कारण, इस धारा के अधीन संपरीक्षा के अधीन नहीं होंगे ।]

(3) भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के, और प्राधिकरण के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के, उस संपरीक्षा के संबंध में वही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार होंगे जो साधारणतया, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में हैं, और उसे विशिष्टतया, बहियां, लेखा से संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागजपत्र पेश किए जाने की मांग करने और प्राधिकरण के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित प्राधिकरण के लेखे, उसकी संपरीक्षा रिपोर्ट के साथ प्रति वर्ष केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित किए जाएंगे और वह सरकार उन्हें संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

24. विवरणियां, आदि का केन्द्रीय सरकार को दिया जाना – (1) प्राधिकरण केन्द्रीय सरकार को ऐसे समय पर और ऐसे प्ररूप में, तथा ऐसी रीति से जो विहित की जाए या जो केन्द्रीय सरकार निदेश दे, दूर-संचार सेवाओं के संवर्धन और विकास के लिए किसी प्रस्थापित या विद्यमान कार्यक्रम के संबंध में ऐसी विवरणियां और विवरण तथा विशिष्टियां देगा जो

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 12 द्वारा (24-1-2000 से) अंतःस्थापित ।

केन्द्रीय सरकार समय-समय पर अपेक्षा करे ।

(2) प्राधिकरण, प्रत्येक वर्ष में एक बार वार्षिक रिपोर्ट ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय पर जो विहित किया जाए, तैयार करेगा जिसमें पूर्ववर्ती वर्ष के दौरान उसके क्रियाकलापों का संक्षिप्त विवरण होगा और रिपोर्ट की प्रतियां केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित की जाएंगी ।

(3) उपधारा (2) के अधीन प्राप्त रिपोर्ट की एक प्रति, प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।

अध्याय 6

प्रकीर्ण

25. निदेश देने की केन्द्रीय सरकार की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, समय-समय पर, प्राधिकरण को ऐसे निदेश दे सकेगी जिन्हें वह भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टता या नैतिकता के हित में आवश्यक समझे ।

(2) पूर्वगामी उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, प्राधिकरण, अपनी शक्तियों के प्रयोग या अपने कृत्यों के पालन में, नीति के प्रश्नों पर ऐसे निदेशों से आबद्ध होगा जो केन्द्रीय सरकार उसे समय-समय पर लिखित रूप में दे :

परन्तु इस उपधारा के अधीन, प्राधिकरण को कोई निदेश दिए जाने के पूर्व, जहां तक साध्य हो, अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जाएगा ।

(3) कोई प्रश्न नीति का है या नहीं, इस बारे में केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय अंतिम होगा ।

26. प्राधिकरण के सदस्यों, अधिकारियों और कर्मचारियों का लोक सेवक होना – प्राधिकरण के सभी सदस्य, अधिकारी और अन्य कर्मचारी, जब वे इस अधिनियम के किसी उपबंध के अनुसरण में कार्य कर रहे हों या जब उनका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित हो, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझे जाएंगे ।

27. अधिकारिता का वर्जन – किसी सिविल न्यायालय को किसी ऐसे मामले की बाबत जिसका अवधारण करने के लिए इस अधिनियम द्वारा

या उसके अधीन प्राधिकरण सशक्त है, अधिकारिता नहीं होगी ।

28. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के अधीन सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही, केन्द्रीय सरकार के या प्राधिकरण के अथवा केन्द्रीय सरकार के किसी अधिकारी या प्राधिकरण के किसी सदस्य, अधिकारी या अन्य कर्मचारियों के विरुद्ध नहीं होगी ।

29. प्राधिकरण के निदेशों के उल्लंघन के लिए शास्ति – (1) यदि कोई व्यक्ति प्राधिकरण के निदेशों का अतिक्रमण करता है तो ऐसा व्यक्ति जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा और दूसरे या पश्चात्वर्ती अपराध की दशा में जुर्माने से, जो दो लाख रुपए तक का हो सकेगा और उल्लंघन जारी रहने की दशा में, अतिरिक्त जुर्माने से, जो ऐसे प्रत्येक दिन के लिए जिसके दौरान व्यतिक्रम जारी रहता है, दो लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

30. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है, वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को इस अधिनियम में उपबंधित किसी दंड का भागी नहीं बनाएगी, यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध, उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध या किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का

दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजना के लिए,–

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम है ; और

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

31. सरकारी विभागों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, सरकार के किसी विभाग द्वारा किया जाता है वहां उक्त विभाग का प्रधान उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा जब तक कि वह यह साबित नहीं कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक्, तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध सरकार के किसी विभाग द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध विभाग के प्रधान से भिन्न किसी अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है, वहां ऐसा अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

32. धन और आय पर कर से छूट – धन-कर अधिनियम, 1957 (1957 का 27), आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) या धन, आय, लाभ या अभिलाभ पर कर से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य अधिनियमिति में किसी बात के होते हुए भी, प्राधिकरण अपने व्युत्पन्न धन, आय, लाभ या अभिलाभ की बाबत धन-कर, आय-कर, या किसी अन्य कर का संदाय करने का दायी नहीं होगा ।

33. प्रत्यायोजन – प्राधिकरण, साधारण या विशेष लिखित आदेश द्वारा, प्राधिकरण के किसी सदस्य, अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति को, ऐसी शर्तों के, यदि कोई हों, अधीन रहते हुए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाएं, इस अधिनियम के अधीन अपनी ऐसी शक्तियों और कृत्यों का

(अध्याय 4 के अधीन विवाद का निपटारा करने और धारा 36 के अधीन विनियम बनाने की शक्ति को छोड़कर) जो वह आवश्यक समझे, प्रत्यायोजित कर सकेगा ।

34. अपराधों का संज्ञान – (1) कोई भी न्यायालय इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के अधीन दंडनीय किसी अपराध संज्ञान प्राधिकरण द्वारा किए गए परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं ।

(2) मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग के न्यायालय से अवर कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचार नहीं करेगा ।

35. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 5 की उपधारा (5) के अधीन अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा अन्य शर्तें,

[1][(कक) धारा 5 की उपधारा (6क) के अधीन अंशकालिक सदस्यों को संदेय भत्ते ;]

(ख) धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन अध्यक्ष की शक्तियां और कृत्य ;

(ग) धारा 7 की उपधारा (2) के अधीन जांच करने की प्रक्रिया ;

[1][(गक) धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन प्राधिकरण के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें ;]

(घ) ऐसी लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों का प्रवर्ग जिनका धारा 12 की उपधारा (3) के अधीन रखा जाना अपेक्षित है ;

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 13 द्वारा अंतःस्थापित ।

[1][(घक) धारा 14क की उपधारा (3) के अधीन प्ररूप, उसके सत्यापन की रीति और फीस ;

(घख) धारा 14ङ के अधीन अपील अधिकरण के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(घग) धारा 14ज की उपधारा (3) के अधीन अपील अधिकरण के अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा की अन्य शर्तें ;

(घघ) धारा 16 की उपधारा (2) के खंड (झ) के अधीन विहित की जाने के लिए अपेक्षित सिविल न्यायालय की कोई अन्य शक्ति ;]

(ङ) वह अवधि जिसके भीतर धारा 15 की उपधारा (1) के अधीन कोई आवेदन किया जाएगा ;

(च) वह रीति जिससे धारा 23 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के लेखे रखे जाएंगे ;

(छ) वह समय जिसके भीतर और वह प्ररूप जिसमें तथा वह रीति जिससे धारा 24 की उपधारा (1) और उपधारा (2) के अधीन केन्द्रीय सरकार को विवरणियां और रिपोर्टें दी जाएगी ;

(ज) कोई अन्य विषय, जिसे विहित किया जाना है या जो विहित किया जाए अथवा जिसकी बाबत नियमों द्वारा उपबंध किया जाना है ।

36. विनियम बनाने की शक्ति – (1) प्राधिकरण, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए, ऐसे विनियम बना सकेगा जो इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों से संगत हों ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे विनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों का समय तथा स्थान और ऐसे अधिवेशनों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, जिसके अन्तर्गत कार्य करने के लिए आवश्यक

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 13 द्वारा अंतःस्थापित ।

गणपूर्ति भी है ;

(ख) धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन प्राधिकरण के अधिवेशनों में कार्य करना ;

[1]* * * * * * *

(घ) वे विषय जिनकी बाबत धारा 11 की उपधारा (1) के [2][खंड (ख) के उपखंड (vii) के अधीन] प्राधिकरण द्वारा रजिस्टर रखा जाएगा ;

(ङ) फीस का उद्ग्रहण और ऐसी अन्य अपेक्षाएं अधिकथित करना जिनके पूरा करने पर धारा 11 की उपधारा (1) के [2][खंड (ख) के उपखंड (viii) के अधीन] रजिस्टर की प्रति प्राप्त की जा सकेगी ;

(च) धारा 11 की उपधारा (1) के [2][खंड (ग) के अधीन] फीस और अन्य प्रभारों का उद्धरण ।

37. नियमों और विनियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम और प्रत्येक विनियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करन के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम या विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम या विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

38. कतिपय विधियों का लागू होना – इस अधिनियम के उपबंध, भारतीय तार अधिनियम, 1985 (1985 का 13) और भारतीय बेतार तार यांत्रिकी अधिनियम, 1933 (1933 का 17) के उपबंधों के अतिरिक्त होंगे

---

[1] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 14 द्वारा लोप किया गया ।

[2] 2000 के अधिनियम सं. 2 की धारा 14 द्वारा प्रतिस्थापित ।

और विशिष्टतया इस अधिनियम की कोई बात किसी ऐसी अधिकारिता, शक्तियों और कृत्यों पर प्रभाव नहीं डालेगी जिनका प्रयोग या पालन ऐसे प्राधिकरण की अधिकारिता के भीतर आने वाले किसी क्षेत्र के संबंध में तार प्राधिकरण द्वारा किया जाना अपेक्षित है ।

39. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है, तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो उस कठिनाई का दूर करने के लिए आवश्यक प्रतीत हों :

परंतु इस धारा के अधीन ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से दो वर्ष की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

40. निरसन और व्यावृत्ति – (1) भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अध्यादेश, 1997 (1997 का अध्यादेश संख्यांक 11) इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते भी, उक्त अध्यादेश के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई इस अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी ।

———————